पंचमूर्ति

प्रकाशक की ओर से

'पंचमूर्ति' बंगाल के विख्यात कथाकार श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय के 'पंचपुत्तली' का हिन्दी अनुवाद है। बंगला में यह पुस्तक अत्यधिक लोकप्रिय है।

ताराशंकर बाबू आदर्शवादी कथाकार हैं। प्रायः इनकी सभी रचनाओंमें विविध रूप से राष्ट्रीयता प्रस्फुटित हुई है। इन्होंने ग्राम्य-जीवन को अपनी रचनाओं का आधार बनाया है और निम्न तथा मध्यम श्रेणी के लोगों के सुख-दुःख, प्रेम-विरह तथा पारिवारिक जीवन आदि का सजीव एवं स्वाभाविक चित्रण करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। यही कारण है कि आज बंगला साहित्य में ताराशंकर बाबू सर्वश्रेष्ठ कथाकार माने जाते हैं। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है और अधिकांश के चलचित्र भी बन चुके हैं।

हम चाहते हैं कि भारत के इस विख्यात कथाकार के ग्रन्थों को हिंदी-संसार भी पढ़ कर लाभ उठावे और इसी उद्देश्य से हमने इनके ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की योजना बनायी है। आशा है, हिन्दी-संसार हमारी इस योजना से लाभ उठायेगा।

रामसकल सिंह एम० ए०
संचालक
अशोक पुस्तक मन्दिर

१ सितम्बर, १९५७

पंचमूर्ति

श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय

अशोक पुस्तक-मन्दिर
१६३, महात्मा गान्धी रोड,
कलकत्ता—७

प्रकाशक
श्री परशुराम सिंह 'गौतम'
अशोक पुस्तक-मन्दिर
१६३, महात्मा गान्धी रोड,
कलकत्ता-७

प्रथम संस्करण
सितम्बर, १६५७
मूल्य चार रुपये

अनुवादक
श्री वेणी माधव सिंह

आवरण चित्रकार
नरेन्द्रचन्द्र बनर्जी

मुद्रक—
अशोक आर्ट प्रेस
२७, मल्लिक स्ट्रीट,
कलकत्ता—७

प्रथम पर्व

एक

मलिन की माँ रोते-रोते लड़की के पास दौड़ी आयी। मलिन की माँ का नाम है पंकजिनी और उसकी लड़की का मनोरमा। वह पंकजिनी के गाँव से तीन कोस के फासले पर रहती है। एक बाजार गाँव या शहर—जो भी कहा जाय—उसके एक किनारे पर वेश्याओं के मुहल्ले में वह रहती है। वह भी उन्हीं में से एक है। माँ का रोना सुन कर वह झटपट निकल आयी। क्या हुआ?

मलिन कहीं भाग गया है। वह तेरह-चौदह वर्ष का एक मुँहचोर डरपोक लड़का है। वह भूत-प्रेत, साँप-बिसखपरे से नहीं डरता, डरता है मनुष्य से। वह किसी के साथ बात नहीं कर सकता, विवश होकर बोलने पर वह भूमि की ओर दृष्टि रख कर इतने धीरे से बोलता है कि उसका स्वर तो सुनाई पड़ता है किन्तु शब्द नहीं सुना जाता। मनुष्यों के इस राज्य में वह बालक कहाँ खो गया?

पंकजिनी विलख-विलख कर रो रही थी, मैं जान गयी थी रे—मैं उसी दिन जान गयी थी—

उसके मुँह और नेत्रों से असीम विरक्ति फूट उठी। सन्ध्या हो रही है। सन्ध्या होते ही आनन्द-सन्धानी लोग रास्ते में दिखाई पड़ने लगे। वे क्षण भर आनन्द करने आयेंगे, रुलाई सुनने पर कौन आयेगा! उसने

विरक्ति में भर कर कहा—सन्ध्या समय रोओ मत बाबा। रोना सुन कर कोई नहीं आयेगा। समझेंगे कोई मर गया है।

पंकजिनी बोली—यही सत्य है रे! यही सत्य है! मैं जानती हूँ; उस तालाब के पानी ने उसे खींच लिया है। वहाँ की मूर्ति—

बाधा देकर मनोरमा ने कहा—और भी कुछ। मलिन तैरना जानता है, जल में क्यों डूबेगा? मैं कहती हूँ कि वह उसी कारीगर के घर गया है, तुम देख लेना। किन्तु रोओ मत।

मनोरमा जानती है, इसी आयु में जान गयी है कि जीवन सहज में नहीं जाता। जब तक शक्ति रहती है, वह प्राणपण से मृत्यु के साथ संग्राम करता है। वे दोनों भाई-बहन बचपन में तालाब में बहुत तैरते थे। मलिन खेल-खेल में दो-तीन बार उसे पार कर जाता था। वह थोड़ा कड़े स्वर में ही बात कहती गयी। पंकजिनी चुप नहीं हुई, किन्तु मृदु कण्ठ स्वर से बिलख-बिलख कर रोने लगी। उसी तालाब ने उसे खींच लिया है। वह राक्षसी तालाब है रे! राक्षसी!

*   *   *   *

ऐसी ही किम्बदन्ती है। लड़िया तालाब अनेक समय से अभिशप्त तालाब है। राक्षसी।

यह अद्भुत तालाब 'लड़िया' बहुत समय तक सूखा पड़ा रहा। यह किसी समय बहुत बड़ा था। बहुत प्राचीनकाल में यह शायद किसी राजा के बाग का सरोवर था। यहाँ उस समय एक हिन्दू राजा का राज्य था। उस समय इस सरोवर में रानियाँ नहाया करतीं, मोरपंखी नावों में विहार करतीं; दूध के समान श्वेतरंग वाले राजहंस पंक्ति बाँध

कर तैरते और चारों ओर अगणित लाल कमल खिलते। तुर्कों के आक्रमण से यह राज्य नष्ट हो गया। युद्ध का सम्बाद पाकर रानियाँ इस तालाब में कूद कर मर गयीं। शायद इसीलिये जल विषैला हो गया है। एक फकीर ने इस सरोवर का व्यवहार करने से नवाब को मना कर दिया। इससे नवाबों ने इस तालाब पर ध्यान नहीं दिया। इसके बाद नवाब फकीर बन गये। राज्य-जमीदारी दूसरों के हाथ चली गयी। तालाब पड़ा ही रह गया। धीरे-धीरे भरते-भरते वह एक घास का जंगल बन गया। उसमें मनुष्य की छाती तक ऊँची घास पैदा होती। इतनी घनी कि स्थानीय मुसलमानों के दो हाथ- ढाई हाथ के पाँच-सात घोड़े बारहो मास सबेरे से सन्ध्या तक घास चरते रहते, किन्तु दिखाई न पड़ते। ठीक बीच में बीस हाथ लम्बाई और पन्द्रह हाथ चौड़ाई में थोड़ा जल रहता, और उसमें पैदा होतीं बड़ी-बड़ी माँगुर और कवई मछलियाँ। इसके कई सौ वर्ष बाद देवीग्राम के अमृतबाबू ने इस अद्भुत तालाब को खुदवा कर अथाह जलवाले सरोवर में बदलने का निश्चय किया। उन्होंने बहुत पहले से ही उसे खरीद लिया था, किन्तु बहुत किम्बदन्तियों और संस्कारों के कारण खुदवाने का साहस नहीं हुआ। किन्तु एक स्वप्न देखने से साहस बँधा। उन्होंने लगातार कई दिनों तक स्वप्न देखा कि यह अद्भुत तालाब सरोवर बन कर काले जल से भर गया है।

उस समय अमृतबाबू की अवस्था बड़ी उन्नति पर थी। यहाँ जिस गृहस्थ की आय वर्ष में एक हजार रुपये हो, वह बड़ा आदमी समझा जाता है। उस समय सन् उन्नीस सौ तेरह-चौदह ईस्वी थी, प्रथम महायुद्ध में धान था दस-बारह आने मन, चावल रुपये में पन्द्रह-सोलह सेर, कपड़े का जोड़ा सवा रुपये, डेढ़ रुपये। कलियुग के अश्वमेध-दुर्गापूजा में भी सौ-

डेढ़ सौ रुपये ही खर्च होते। किफायत की पूजा नहीं, नियमपूर्वक गाजे-बाजे के साथ षोडशोपचार भोग लगा कर, विसर्जन के दिन बारूद की आतिशबाजी छोड़ कर पूजा इतने में ही हो जाती।

इसीलिये लोग अमृतबाबू की असली आय का अनुमान न लगा कर कहते—लखपति अमृतबाबू। किन्तु अमृतबाबू के पास कई लाख रुपये थे ; उनकी वार्षिक आय ही थी लगभग एक लाख रुपये। जब मनुष्य की अवस्था उन्नत होती है तो लक्ष्मी की कृपा से उसका साहस भी बढ़ जाता है। स्वप्न से साहस पाकर अमृतबाबू ने वह तालाब खुदवाया। खोदते समय उसमें एक पत्थर की टूटी मूर्ति मिली। वह देव मूर्ति नहीं, देवी मूर्ति थी। आधा मुँह टूटा, हाथ टूटा, पाँव टूटा, केवल बचा है छाती से लेकर कमर तक का अंश। लोगों ने अनुमान किया कि यही मूर्ति उस हिन्दू राजा की उपास्य देवी थी। मूर्ति-विरोधी मुसलमानों ने उसे तोड़ कर इस तालाब में फेंक दिया। किन्तु किस देवी की मूर्ति है, इसका निर्णय कोई न कर सका। अमृतबाबू ढोल-दमामे बजवा कर वह मूर्ति अपनी ठाकुरवाड़ी में ले गये। किन्तु यह निश्चय न कर सके कि इस टूटी मूर्ति को, जिसका यह भी ठीक नहीं है कि किस देवी की है, क्या करें। किसी ने कहा म्यूजियम में दे दी जाय, किसी ने राय दी, गंगा में विसर्जन कर दी जाय, किसी ने कहा—आपने पाँच देवताओं की प्रतिष्ठा की है, इसे भी एक मन्दिर के बरामदे में रख दीजिये, एक ओर पड़ी रहेगी। किसी ने कहा—गाँव के षष्ठीतल्ले में भेज दें। बंगाल के गाँवों में षष्ठीतल्ले में टूटी मूर्तियों का ढेर रहता है। किन्तु अमृतबाबू को कोई राय न जँची। इसी बीच उन्होंने एक रात हठात् स्वप्न देखा—उनकी ठाकुरवाड़ी में महालक्ष्मी

की पूजा हो रही है। वह मूर्ति उसी लड़िया तालाब से निकली है। सवेरे उन्होंने घोषणा की–यह महालक्ष्मी की मूर्ति है। वे महालक्ष्मी की प्रतिष्ठा करेंगे। कारीगर बुलाकर नयी मूर्ति तैयार करायेंगे। उसके पास यह भी रहेगी। किन्तु स्वजन-बन्धु यहाँ तक कि अमृतबाबू की स्त्री ने भी कहा–नहीं। ऐसा नहीं होगा। हठ करके कुछ ' नहीं करना चाहिये। स्थानीय पण्डितों ने कहा—एक विचार से महालक्ष्मी राधा हैं, दूसरे विचार से महाकाली। किन्तु जो मूर्ति आप देख रहे हैं, वह है कमल-कामिनी की मूर्ति। कमलासन पर विराजमान हैं—हाथी सूँड़ में जल भरा घड़ा लेकर नहला रहे हैं। इसलिये हम कहते हैं कि संकल्प लेकर चार वर्ष तक मिट्टी की मूर्ति बनवा कर पूजा कीजिये। इसके बाद यदि सह जाय तो सफेद पत्थर की मूर्ति बनवा कर प्रतिष्ठा कीजियेगा।

वैसा ही हुआ। निश्चय हुआ कि आश्विन की पूर्णिमा को कमल-कामिनी की पूजा होगी।

अमृतबाबू ने कृष्णनगर से एक कुशल कारीगर बुलवाया। वह मूर्ति तैयार करेगा। कटवा से गाड़ी पर चार गाड़ी गंगा की मिट्टी आयी। उन्होंने कुछ उठा न रखा। उधर 'लँड़िया' तालाब की खुदाई होने से उसमें अथाह जल भर गया। उसका नया नाम रखा गया कालीदह! कालीदह में ही माँ कमलकामिनी रूप से बास करती थीं। उसी तालाब से कलश आयेगा, उसी में माँ का निरंजन होगा।

कृष्णनगर का कारीगर साधारण प्रतिमा बनानेवाला कारीगर नहीं है। वह एक प्रसिद्ध व्यक्ति और श्रेष्ठ पुरुष है। अमृतबाबू स्वयं और अन्य सम्भ्रान्त व्यक्ति जिस आसन पर बैठते हैं, उसी पर उसे भी बिठाया।

उन्होंने कहा—शुद्धाचार से प्रतिमा बनानी होगी, इसके लिये मैंने रेशमी वस्त्र लाकर रखा है। लीजिये।

उसके रहने का स्थान उन्होंने अपने नाट्यमन्दिर के सामने जो पंक्तिबद्ध पक्के मकान हैं, उन्हीं में से एक में कर दिया। कृष्णनगर के शिल्पी को भी यह सब बहुत पसन्द आया। अमृतबाबू पसन्द आये, उनकी भक्ति पसन्द आयी, देवकीर्ति देख कर मुग्ध हो गया। जैसा ही देव मन्दिर है वैसा ही नाट्य-आँगन, चमत्कार! कृष्णनगर के पुण्यश्लोक महाराजाओं के विशाल कलामय नाट्यमन्दिर उसने देखे हैं, और भी बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के नाट्य मन्दिर उसके देखे हुए हैं। उन सबके साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती और करनी उचित भी नहीं है, किन्तु अमृतबाबू की देवकीर्ति जैसी कीर्ति राजा-महाराजाओं को छोड़कर अन्यत्र अधिक नहीं है। उसने आनन्दपूर्वक मूर्ति-निर्माण का भार लिया। बढ़ई बुलवा कर ढाँचा तैयार कराया। इसके बाद पहली मिट्टी देकर कृष्णनगर चला गया और दूसरी मिट्टी देने के लिये दो शिष्यों को साथ लेकर लौटा। केवल दूसरी मिट्टी नहीं एकदम रंग कर के ही जायगा। उसके साथ हर तरह का सामान था; लकड़ी का, बखारी के नाना आकार की मिट्टी की मूर्तियों के पालिश करने के यन्त्र, कितने प्रकार के लकड़ी के साँचे, मुँह के साँचे, एक बक्स में केवल रंग और कूँचियाँ और छोटे-छोटे रंग घोलने के पात्र। कई शीशियों में तारपीन, गोंद, तूत और भी कितनी चीजें।

दूसरी मिट्टी का काम प्रारम्भ हो गया। कबन्ध के समान अधूरी मूर्ति लेपन से, हाथ में उंगली लगाने से और मुँह बैठाने से पूरी होने लगी। दोनों शिष्य मिट्टी लगाते हैं, और वह उन यंत्रों में से कोई हाथ में लेकर

चलाता जाता है। वह तिरछे रूप से बखारी की छुरी की तरह यंत्र चलाता है। प्रतिमा के अवयव निर्दोष रूप और सुषमा से भर उठे हैं बाल की रेखायें भी एक के बाद दिखाई देती हैं। उसकी निपुणता देख कर विस्मित होना पड़ता है। वह कुछ देर काम करता है फिर कुछ दूर हट कर नाना तरह की भंगियों से देखता है। फिर पास जाकर हाथ की छुरी से दोष दूर करता है। वह मीठे स्वर से गुनगुनाता रहता है—

अमृत पूर्ण चन्द्र कर खण्डित

किंवा माँजा है गोरामुख।

कभी-कभी कवि कंकन चण्डी का वर्णन अपने आप दुहराता है। इसी बीच उसने कण्ठस्थ कर लिया है।

विकसित कमलदल पर बैठी हैं महालक्ष्मी, दोनों ओर दो सफेद हाथी हैं। वे सूँड़ उठा कर उनमें दो कलसी जल लेकर माँ को स्नान कराते हैं।

राजहंस जैसा सुन्दर रव—चरण में रुनझुन बजता नूपुर
दस नख हैं दस चन्द्र समान चमकते।
पंकज दर्प दलन है करती—जावक वेष्ठित मन को हरती
अंगुलि जैसे चम्पक पुष्प दमकते॥
विम्बक वन्धु अधर है लोहित, शरदचन्द्र सम बदन सुशोभित
सुन्दर आँखें हैं कुरंग मद हरतीं।
प्रातःकाल सूर्य की शोभा—सिरपर राजित सुन्दर टीका
तन द्युति है जग जन मन वश करती॥
रमणी परम क्षीण कटि सुन्दर कुच शोभित जैसे दो भूधर
मनहर पीन नितम्ब देश है उसका।

सवेरे-शाम लड़कों की भीड़ होती है, गाँव के लड़के चारों ओर खड़े होकर उसका काम करना देखते हैं। उनकी आँखों में असीम विस्मय भर जाता है। उनके कौतूहल का अन्त नहीं रहता। लोभ का भी अन्त नहीं। वखारी और काठ के यंत्र बड़ी सावधानी से रखे जाते हैं। कोई ठीक नहीं कि कौन कब हड़प ले। लड़कों के नियंत्रण के लिये अमृतबाबू ने एक कर्मचारी नियुक्त कर दिया है। वह सवेरे से बैठता है और पुकारा करता है ---सब दूर हटो। दूर हटो ऐ छोकरो! ऐ लड़को! जाओ यहाँ से।

कारीगर हँसता है। उन्हीं के ठाकुर, उन्हीं की पूजा। प्रतिमा में पहली मिट्टी लगाने के दिन से विसर्जन तक वे तन-मन अर्पण कर बैठे रहते हैं। वह बोलता है---रहो, रहो। चले मत जाओ। दूर हट कर देखो।

नौ बजते ही वे सब अपने स्कूल में चले जाते हैं। जो दो-चार उस समय रह जाते हैं, उनमें अधिकांश बालिकायें होती हैं। वे अधिक आगे नहीं बढ़तीं।

बारह बजने पर कारीगर काम बन्द कर देता है। कर्मचारी भी चला जाता है। लड़कों में भी कोई नहीं रहता। कारीगर स्नान करता है। स्नान-उपासना के बाद दो घण्टे विश्राम करता है। ठाकुरबाड़ी भी भोग लगने के बाद बन्द हो जाती है। फिर काम आरम्भ होता है चार बजे और चलता है रात्रि के आठ बजे तक। कारीगर नियम से ढाई बजे उठता है उठने के बाद हाथ-मुँह धोकर मूर्ति के सामने खड़ा होकर केवल देखता है। उसके हाथ में एक टुकड़ा महीन सूखा हुआ कपड़ा रहता है, उसीसे बीच-बीच में प्रतिमा के अंग पोंछा करता है। यह उसके जीवन भर का अभ्यास है। शिष्य उस समय भी सोये रहते हैं। ठाकुरवाड़ी भी निस्तब्ध रहती है।

दूसरी मिट्टी के समय दोपहर में ही पहले दिन उसकी दृष्टि पड़ी मलिन की माँ के मलिन पर, देखा—जन-हीन साँय-साँय करती हुई ठाकुरवाड़ी में उसी प्रतिमा के सामने बैठा है दस-ग्यारह वर्ष का एक लड़का, सुन्दर लड़का। गोरा कहना ठीक नहीं, उसका रंग है सोने के समान; नाक वंशी के समान; दोनों नेत्र छोटे, किन्तु बड़े ही उज्जवल और तीक्ष्ण। किन्तु कहीं कुछ है, जिसके कारण मन नहीं भरता। सब अंगों में जैसे एक श्रीहीनता है। जिस प्रकार अद्भुत तालाब के कीचड़ में से निकाली हुई पत्थर की देव मूर्ति को बहुत धोने-पोंछने पर भी उसके सब अंगों से कीचड़ का आभास निकलता रहता है, ठीक उसी प्रकार उस बालक की भी दशा है। कपड़े-लत्ते भी ठीक वैसे ही मलिन और गन्दे हैं।

किन्तु बालक अत्यन्त शान्त है। उसके समस्त अंगों में विचित्र स्तब्धता है, हिलता नहीं, आँखों की पलकें नहीं पड़तीं, स्थिर होकर बैठा रहता है। केवल देखता है।

कृष्णनगर के कारीगर पाल की भौंहें सिकुड़ गयीं; उसने कहा—क्यों लड़के, ठाकुर देखने आया है? बालक मुँह से नहीं बोला, उसने लज्जा से गर्दन हिला कर उत्तर दिया,—हाँ।

देवी की प्रतिमा की ओर दृष्टि डाल कर उसे देखते-देखते उसने फिर पूछा—स्कूल नहीं गये? किन्तु कुछ उत्तर नहीं मिला। उत्तर न मिलने पर जब उसने गर्दन घुमा कर देखा, वह उत्तर दे रहा है। गर्दन हिला कर ही कह रहा है,—नहीं।

— तुम्हारा नाम क्या है?

—मलिन। बालक ने अत्यन्त मीठे स्वर में उत्तर दिया।

—मलिन ? यथा नाम तथा गुण ! मलिन कौन ?

इस बार उसने कहा—मलीन्द दास ।

ओह ! मणीन्द्र । मणीन्द्र से मलीन्द, उससे मलिन । यह अच्छा है । खूब मिलता है उसकी अवस्था से । कारीगर को आश्चर्य नहीं हुआ । यह किसी दरिद्र और साधन-भ्रष्ट ब्राह्मण, कायस्थ या वैद्य के घर का लड़का है । मणीन्द्र को मलीन्द कहते हैं । उससे हुआ है मलिन; किन्तु जान पड़ता है कि उसकी मलिनता के आवरण में असली मणित्व नहीं है । असल में काँच की तरह मालूम पड़ता है; बिल्लौरी भी होसकता है ।

प्रथम शरद् की धूप तीन बजने पर भी दहक रही है ।

नाट्य-मन्दिर के बड़े-बड़े गोल-गोल खम्भों के सिरों पर असंख्य कबूतर रहते हैं । वे स्तब्धता भंग कर गुटरगूँ करते हुए सम्मिलित-ध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं, किन्तु बाहर के वायुमण्डल में वे अब भी पंख खोल कर नहीं निकलते । परन्तु वह बाहर-भीतर मलिन बालक इसी धूप में आया है । घर में मना करनेवाला कोई नहीं, नहीं, भाग आया है । किन्तु खूब उद्धत तो नहीं जान पड़ता । मुँह देखकर उसने मुँह फेर कर देखा । हाँ, अत्यन्त शान्तमुख । स्थिर दृष्टि से मूर्ति देख रहा है, उस दृष्टि में न जाने क्या है ! कौतूहलवश उसने अधिक परिचय जानने की चेष्टा की । मनुष्य के स्वरूप जानने के लिये परिचय प्रतिमा के पीछे के चालचित्र के समान है । उसने पूछा—

—तुम्हारे कौन-कौन हैं ?

—माँ, बहिन ।

—पिताजी ?

बालक ने गर्दन हिलायी—नहीं।

—नहीं ? तभी। स्कूल क्यों नहीं जाते ?

भूमि पर एक लकड़ी से कई चिह्न खींचते-खींचते कई बार इधर-उधर अकारण गर्दन हिलाते-डुलाते बोला—मैं स्कूल में नहीं पढ़ता।

—क्यों ?

इस बार वह तेजी से गर्दन हिलाने लगा। पाल हँस पड़ा, पढ़ने का नाम लेते ही लड़के चंचल हो उठते हैं। खूब गर्दन हिलाकर लड़के ने कहा—नहीं पढ़ता। इतना कहकर वह चला गया। दूसरे दिन उठते ही उसे देख पाया—उस दिन वह उस छायेदार झोपड़ी में ही सो गया है। खूब गहरी नींद में है। थोड़ा हँसने के बाद वह भी प्रतिमा के मुँह की ओर देख मग्न हो गया। वह मन में ध्यान-मंत्र का जाप कर रहा था—"पद्मासनस्थां, ध्यायेच्च श्रियं त्रैलोक्यमातरम्। गौरवर्णाम् सुरूपाञ्च सर्वाभरणभूषिताम्।"

उसकी मग्नता टूट गयी ठाकुरवाड़ी के पुजारी और रसोइयों की चिल्ल-पों से। वे इसी समय दोपहर में सोने के बाद उठते हैं। चार बजे के बाद उठकर वे नित्य थोड़ी चिल्ल-पों शुरू करते हैं। बिना सिलसिले की बातें इधर-उधर से संध्या के आकाश में तारों के निकलने के समान निकला करती हैं—गोपेश ! नौकरानी बर्तन माँज गयी है, उठाकर रखो।

इसके बाद थोड़ी स्तब्धता ; इसके बाद हुक्का पीने का शब्द; इसके पश्चात् गुनगुनाना। इसके बाद ही अकस्मात् उदास स्वर में कोई पुकार उठता—हे गोविन्द ! जय गोविन्द !

इसके बाद ही सुनाई पड़ता है—ठाकुर, चाय का जल हो गया।

सबको पुकारो। नहीं तो इसमें मेरा दोष नहीं । हाँ।

—उठ रे! उठ रे! उठ रे!

इसी प्रकार की चिल्ल-पों अकस्मात् एक समय कलरव में परिणत हो जाती है। नित्य की यही रीति है। आज भी वही कलरव उठा। कलरव से कारीगर को एकाग्रता टूट गयी; उसकी दृष्टि प्रतिमा से हट गयी। गमछे से मुँह पोंछकर स्टूल पर बैठ गया और एक चुटकी नस्य सूँघी। अकस्मात् बालक की याद आयी। कहाँ, नहीं है तो! उस समय जाग कर वह चला गया था। किन्तु इससे उसके मन में कोई लहर नहीं उत्पन्न हुई। वह अपने काम में फिर मग्न हो गया।

कारीगर को तीसरे दिन उस बालक का विचित्र परिचय मिला। उसकी नींद एक गोलमाल के कारण नियत समय से पहले ही टूट गयी। उसका घर ठाकुरवाड़ी के फाटक पर ही है। उसके बन्द दरवाजे के ठीक दूसरी ओर कोई जान पड़ता है कि अमृतबाबू का कोई चपरासी-दरवान—जोर से किसी की ताड़ना कर रहा है—मारो थप्पड़, हरामजादे का दाँत टूट जाय। चोरी करने आया था। यहाँ चोरी! बदमाश, चोट्टा। इसके बाद गालियों की बौछार! चोर, इसके बाद माँ-बहिन के नामपर गालियाँ।

इसके बाद कई आदमियों के एक साथ हँसने की ध्वनि सुनायी पड़ी। यह सुनकर वह उठकर भी न उठा। उठने पर यदि इसके सामने ही ऐसी अश्लील गालियाँ दें, तो उसे बड़ी लज्जा लगेगी। रहने दो। किन्तु ऐसा भी नहीं हुआ। उसे उठना ही पड़ा। रहने दो। सुनाई पड़ा ठाकुरवाड़ी का रसोइया हरिहर कह रहा है—इसके शरीर में काला पहाड़ का रक्त

है। अन्त में ठाकुरवाड़ी की चोरी ! और क्या चुराया है ? कारीगर को बुलाओ तो। सब चीजें मिला-जुलाकर देख लें। देखलें उनके औजार-टौजार ठीक हैं कि नहीं।

इसलिये उसे उठना पड़ा। गले की आवाज सुन दरवाजा खोलकर बाहर निकला। उसने देखा कि ठाकुरबाड़ी के पुजारो, रसोइये और एक दरवान के घेरे में वही लड़का सिर नीचा किये खड़ा है। उसका बाँया कान लाल हो गया है। गाल पर थप्पड़ उभड़ आया है। बालक खूब गोरा है, इसलिये थप्पड़ के चिह्न खूब लाल हो गये हैं। किन्तु आश्चर्य ! वह रोता नहीं है, केवल अस्थिर के समान हिलता और गर्दन हिलाता है। उसको देखते ही रसोइया हरिहर बोला—यही कारीगर उठे हैं। इस हरामजादे लड़के की करतूत देखिये। यह सब चुराये लिये भाग रहा था।

दरवान के हाथ से टूटी मूर्ति का एक टुकड़ा लेकर उसने उसके सामने रखा और थोड़ी गंगा की मिट्टी। उसी तालाब में मिली हुई टूटी मूर्ति के बहुत से टुकड़ों में से एक टुकड़ा। बहुत छोटा नहीं। और उसी टुकड़े में ही सिर से लेकर पैर तक प्रायः एक पूरी मूर्ति है। असली मूर्ति के सिर की ओर शून्यचारिणी माल्यवाहिका दिव्यांगना की मूर्ति है। ये सब एक जगह एकत्र रखी हैं। ये बेकार हैं। इनका असली मूर्ति से सम्बन्ध भी नहीं है; किन्तु फेंकी भी नहीं गयी हैं। दरवान बोला—ठाकुरबाड़ी के दक्षिण ओर घेरे के पास ही रास्ते के किनारेवाले तालाब में वह हाथ-मुँह धोने गया था हठात् ठाकुरबाड़ी के भीतर के घेरे को पार कर रास्ते पर कुछ धम से गिर पड़ा। शब्द सुनते ही वह दौड़ा आया।

पहले गिरा था गंगा-मिट्टी का ढेला। इसके बाद उसके सामने ही शब्द करती हुई यह मूर्ति गिरी। वह पूछने ही वाला था कि कौन है? किन्तु ठीक उसी समय दो हाथ घेरे के सिरे पर दिखाई पड़े, वह चिल्लाया नहीं, वरन् उन हाथों के मालिक की प्रतीक्षा में दीवार से सट कर खड़ा हो गया। जब लड़का घेरा पार कूद कर नीचे गिरा तो झट उसका गला पकड़ लिया।

कारीगर को बहुत आश्चर्य नहीं हुआ। मूर्ति उनके लोभ की वस्तु है ही, और मिट्टी भी। उसी को लेकर अपटु हाथों से कुछ गढ़ने की चेष्टा करेगा। आदिकाल से सभी बालक ऐसा ही करते आये हैं; सृष्टि बनाकर स्रष्टा बनने की साध मनुष्य में चिरन्तन है। वह थोड़ा हँसकर बोला—रख दो, उसे जहाँ वह थी। वरन् टुकड़ों को सामने से हटा कर कहीं अच्छी तरह रख दो; अगर रखना चाहो। ये किसी काम में नहीं आयेंगी। और उसे छोड़ दो, लड़का है।

लड़का है! फाटक बन्द था। बेटा, घेरा फाँद कर आया और घेरा फाँद कर भाग रहा था। यह लड़का है! अनन्त पुजारी बोल उठा।

यही तो, यह बात उसे कभी याद नहीं पड़ी। दोपहर में तो फाटक बन्द ही रहता है। तब तो रोज घेरा फाँद कर ही आया है, गया है। अनन्त पुजारी कहते ही गये, इसका गुण तो आप नहीं जानते। पहले अपनी प्रतिमा देखिये। बतलाइये प्रतिमा पर इसने कोई कारीगरी तो नहीं की?

इसका अर्थ? चौंक पड़ा कारीगर योगेश पाल।

अनन्त बोला—इसका स्वभाव है काठ-कोयला नहीं, खड़िया नहीं,

एक झाड़ू की कूँची का सिरा लेकर यहाँ-वहाँ टेढ़े-सीधे चिह्न बनाना। पक्के घाट की दीवारों पर, पेड़ों की छालों पर, जहाँ भी हो, जगह मिलने से ही बस। चूने की सफेद दीवार मिलने पर तो कहना ही क्या! चित्र बना देगा। आजकल फिर प्रतिमा पर कारीगरी करने लगा है। यही पिछली बार जगद्धात्री पूजा के पहले कारीगर प्रतिमा रंग कर चला गया, रात बीतने पर ही पूजा थी, बेटे ने कहीं से आकर उसे चित्र-विचित्र कर दिया। जगद्धात्री की प्रतिमा के दोनों ओर दो सखियाँ चामर हाथ में लिये रहती हैं, उनके सिर में स्याही पोत कर बेटे ने केश की बहार दिखला दी। बाबू की नौकरानी देखकर चिल्लायी, तो बेटा रंगे हाथों पकड़ा गया। उस समय फिर कारीगर बुलाया गया। उसने पुराना रंग हटाकर नया रंग लगाया, तब काम चला। इसका विश्वास नहीं है।

सचमुच विश्वास नहीं है। लड़कों का यही स्वभाव है। योगेशपाल ने झटपट जाकर प्रतिमा का आवरण हटा दिया। तेज नजर से देखा, किन्तु किसी कारीगरी का चिह्न न पा निश्चित होकर बोला—नहीं। उसने कुछ नहीं किया है। उसको इस बार छोड़ दो। फिर ऐसा नहीं करेगा। क्यों रे करेगा?

विचित्र लड़का है! मुँह से नहीं बोलता, उसी तरह हिलता है और अर्थहीन भाव से गर्दन हिलाता है। योगेश पाल ने समझ लिया कि यह चंचलता का लक्षण है। किन्तु उसकी दृष्टि स्थिर क्यों है? पलकें क्यों नहीं पड़तीं? नीचे भी नहीं देखता। उसे इससे आश्चर्य हुआ! यह सहज क्षमता तो नहीं है!

हरिहर बोला—आप उससे कुछ कहला लीजिये तो देखूँ। वह किसी प्रकार भी मुँह नहीं खोलेगा।

हँस कर पाल ने कहा—छोड़ दो, छोड़ दो। मैं कहता हूँ वह फिर ऐसा नहीं करेगा। किन्तु किसका लड़का है? देखता हूँ रोज भरी दोपहरी में आकर बैठा रहता है। विशेष बोलता-चालता नहीं। देखने में खूब शान्त ज्ञान पड़ता है।

दो

अनन्त ने परिचय दिया। कारीगर काम में लगा है। अनन्त बैठ कर कहता जाता है। उसके शिष्य अभी नहीं जगे थे।

पंकजिनी का लड़का है—नाम है मलिन। पंकजिनी के रूप में उच्च वर्ण का आभास है, किन्तु चरित्र का रंग है स्याही पुता। सूर्य की गर्मी की तेज धूप से शरीर का रंग जल कर ताँबे की तरह हो गया है। प्रवृत्ति की आग में जल कर स्वभाव के विषय की लपट से हृदय का रंग नीला हो जाता है। पंकजिनी वास्तव में किस जाति की है, इसे कोई नहीं जानता। पंकजिनी स्वयं कहती है, भाग्य! बाबा भाग्य! अच्छी ही जाति की थी, किन्तु सब धो-पोंछ गया है, अब हूँ वैष्णवी। वह कहते-कहते कहती है—'ब्राह्मण, बाबा ब्राह्मण। फिर मीठे स्वर से कहती है—छोटी आयु में विधवा हो जाने पर एक आदमी के साथ भाग आयी। उसे लेकर वैष्णवी हो गयी। वह स्त्री अत्यन्त मूर्खा है अथवा बहुत लज्जाहीना है। वह दस-

ग्यारह वर्ष पहले यहाँ आयी। उस समय देश में अकाल पड़ा था। अन्न के लिये हाहाकार मच गया था। अमृतबाबू ने अन्नसत्र खोल दिया था। अन्न की आशा से देश-देशान्तर से अभाव वालों का दल जुट गया। उन्हीं में पंकजिनी भी थी। उसका हाथ पकड़े हुए थी एक लड़की, एक लड़का और गोद में डेढ़-दो वर्ष का एक बच्चा, यही मलिन। लड़की का नाम मनो और दूसरे लड़के का फने। लड़की थी आठ वर्ष की और फने पाँच-छः वर्ष का। दोनों देखने में उल्लू के समान थे। उनके सारे शरीर पर छोटी जाति की छाप थी, किन्तु गोद का बच्चा था जैसे कमल का फूल। पंकजिनी का चेहरा अच्छा था, रूप था और आज भी है। किन्तु उससे भी मलिन का चेहरा नहीं मिलता। उस समय पंकजिनी के पास रूप के साथ ही यौवन भी था। उस समय उसकी आयु ही क्या थी? तीस के नीचे ही, छब्बीस-सत्ताईस।

अनन्त बोला—समझते हैं न कारीगर जी, इन दोनों के रहने से संसार में दया-माया थोड़ी अधिक मिलती है। अच्छे-बुरे का कुछ विचार किये बिना ही कहता हूँ, संसार में स्त्री का एक आकर्षण है। उसी आकर्षण से मन खिंचता है। उसी आकर्षण से थोड़ी अधिक दया-माया मिलती है, और पुरुषों से अधिक मिलती है स्त्रियों द्वारा। युवती स्त्री, रूप है, गोद-काँख में दो-तीन लड़के-लड़कियाँ। अहा! दो उसे आश्रय! अमृत बाबू की गृहिणी ने उसे देख कर और वैष्णव स्त्री जान कर ठाकुरबाड़ी में ही बर्तन माँजने का काम दिया। उन्होंने कहा, यहाँ रहने पर ही पाँच आदमी पाँच बातें पूछेंगे। पाँच आदमियोंने पूछा भी था। मैंने भी पूछा था। उसी समय उसने जाति की बात कही थी। घर की बात

कहते-कहते उसने कहा था—जिसके भाग्य में विधवा होना बदा है, उसके दुबारा विवाह करने से क्या होगा ? है न पण्डितजी ? मैंने कहा—हाँ, यह तो है। पंकजिनी बोली—यही देखिये न, पहले विधवा हुई सोलह वर्ष में। छाती की आग ने पागल कर दिया। उस आग में जाति नहीं देखी, कुल नहीं देखा, ससुराल के हलवाहे के साथ घुली-मिली। एक दिन रात के समय उस छोटी जाति वाले के साथ चली आयी। वह अच्छा आदमी था, किन्तु मेरे भाग्य में न रहा, छः वर्ष बाद छटपटा कर मर गया। मन ही मन हिसाब कर बोली,—उस समय फने मेरी गोद में था,—डेढ़ वर्ष का, घुटनों चलता था और मनो थी चार साल की। एक को कन्धे पर और एक को गोद में लेकर गाँजा पीकर वह नाचता था। आँगन में शीशे का टुकड़ा गिरा था, उसी से बायें पैर का अँगूठा कट गया। वह भी अधिक नहीं। थोड़ा, एक छटाँक के लगभग खून निकला। मैंने कहा—दूब-घास पीस कर लगा लो। उसने कहा—धत्। पंकजिनी ने आँखें पोंछ कर हँसते हुए कहा,—सब हैं भाग्य की बात। इसके अलावा मैं क्या कहूँ, पण्डितजी। वही कटी उँगली रात में फूल गयी और साथ में ज्वर। बस, शाम होते-होते उँगली मछली के सिर के समान फूल गयी, घुटने तक चमड़ा सूज गया और ज्वर बढ़ने से शरीर की गर्मी हो गयी आग के समान। जैसे धान डालने पर भुन जाय, ऐसे ही। फिर न जाने क्या कह कर एक दम धनुष के समान टेढ़ा हो गया। उसी से मर गया। जैसे सिर पटक कर मरा। चार वर्ष की लड़की डेढ़ वर्ष का लड़का लेकर कठिनाइयों में पड़ गयी, मलिन अभागा उस समय हुआ नहीं था, पेट में था। ओफ ! वह भी कैसी कठिनाइयाँ ! क्या

कहूँ ! फिर भी किसी प्रकार तीन वर्ष बीते। फिर एक बार चारों ओर अन्धकार। भाग आयी।

अनन्त बोला—डेढ़ वर्ष का यह लड़का घाट पर बैठ कर धूल-मिट्टी लेकर खेलता; उस समय बोलता न था। रोता नहीं था, मुँह बाये देखा करता। कारीगर महाशय, मैं यह सब सुन कर हक्का-बक्का हो गया। मैंने पूछा, इस लड़के की आयु कितनी है ? चार वर्ष ? पंकजिनी को इसका भी ख्याल नहीं। बोली— वही होगी पण्डितजी। यही तो डेढ़ दो वर्ष होगी। मामला समझिये ! केवल मुझसे ही नहीं, सभी से ऐसा ही कहती। पकड़ी भी गयी। उससे भी लज्जा नहीं आयी। यह वही लड़का है। बेटे को समझ-बूझ है। पढ़ाने पर पढ़ जाता। किन्तु इसी कारण से पाठशाला में नहीं लिया गया। यह बेटा भी उस रास्ते नहीं गया। कहना है—सब लड़के अनाप-शनाप बकते हैं। अनाप-शनाप माने समझते हैं न ? उसकी ही माँ का दिया हुआ उसके जन्म के सन् का हिसाब। बाप का नाम ! हजार होने पर भी बुद्धि तो है न ? उसके बाद यही दशा। अकेला घूमता फिरेगा, दिन नहीं, दोपहर नहीं, रात नहीं, भय नहीं, डर नहीं, तीनों लोकों को नापता फिरेगा। फिर वही अभ्यास—जहाँ-तहाँ टेढ़ा-मेढ़ा खींचता रहेगा। नौकर-खानसामे का काम नहीं करेगा। हमारे बाबू के अतिथि-भवन में साहब सूबा आते हैं। वहाँ जाति-पांति का विचार नहीं, थोड़ा चमक-दमक से ही काम चल सकता है। लड़के को बुला कर लगा दिया गया, किन्तु वह वहाँ से भाग गया—इसको कौन भगायेगा ?

हँसकर अनन्त बोला—इसका भाई पाँच-सात घर में जल भर देता है, इसकी माँ चार-पाँच घरों में बर्तन माँजती है, मसाला पीसती है। उसकी

बहिन चली गयी है, इस रेल जंक्शन के शहर में ; नाम लिखा कर वेश्या हो गयी है। माँ-भाई यहीं रहते हैं। लड़का दो दिन यहाँ रहता है, दो दिन बहिन के पास चला जाता है। फिर यही काम।

हठात् अनन्त बोल उठा—आप समझ नहीं सकते कि यह कितना बद-जात है। अभी कहा है इसके शरीर में काला पहाड़ का रक्त है। यदि यह झूठा हो तो क्या कहूँ कारीगर जी। इसको ठाकुर देवता पर बड़ा क्रोध है। समझते हैं न, प्रतिमा विसर्जन के समय यह ताक में लगा रहता है। जब प्रतिमा जल में पड़ेगी, यह भी जल में कूदेगा, प्रतिमा के जल में गिरते ही यह डुबकी लगायेगा और उसे तोड़ कर सिर उठा लायेगा। उसकी माँ के घर में गया हूँ कारीगर जी। पंकजिनी अच्छी नहीं है। यहाँ आकर भी उसका स्वभाव नहीं बदला है। समझते हैं न!

मुँह की पीक फेंक कर अनन्त ने आक्षेप करते हुए कहा—और क्या कहूँ? सच्ची बात! पंकजिनी के पक्ष में कहने की कोई बात नहीं है। दरिद्रता के कारण पेट की ज्वाला से जो स्त्री भिखारिणी हुई, उसने एक मुट्ठी भीख के बदले मनुष्य की दया से अन्नपात्र पाया। सहज ही जीवन बिताने का अवसर पाकर भी उसने स्वस्थ मन से अपने को प्रतिष्ठित नहीं कर पाया। पंकजिनी जब पहले भिखारिणी बन कर गाँव में आयी, उस समय आयु में ही यौवन था, शरीर में नहीं। भोजन न मिलने के कारण वह दुबलेपन की सीमा पार कर एक प्रकार से सूख गयी थी, केवल मुँह पर एक मीठी छाप थी। ठाकुरवाड़ी में गृहिणी ने नौकरी दी। बर्तन भाँड़े माँजेगी, नाट्य-मन्दिर झाड़ेगी, वेतन मिलेगा दो रुपये। कपड़ा मिलेगा, खाना मिलेगा और मिलेगा तीनों बच्चों को पत्तल पर भात।

और पास ही बाबुओं का एक मिट्टी का घर है, उसमें रहेगी। दो महीने बीतने न बीतने उसके शरीर में ज्वार आया, यौवन लौटा। अनन्त बोला—शरीर सुधरा, तेल जल से बहार आयी। केशों में कंघी से और सिर में सिन्दूर लगाकर पंकजिनी ने बहार पर चिकनाई बढ़ायी। उसकी चाल-ढाल देखकर जबाब हो गया। इससे पंकजिनी को भय नहीं लगा। उसने गाँव के बाजार में एक घर भाड़े पर ले लिया। तीन चार घरों में बरतन माँजने और मसाला पीसने का काम करने लगी। मनो की उम्र थी आठ-नौ वर्ष, उसको भी एक घर में बच्चा खेलाने का काम मिला। सब जुगाड़ हो गया। जो सन्ध्या समय उसके घर जाते, उन्होंने सब ठीक-ठाक कर दिया। लोग कहते हैं, कि पंकजिनी की वह आदत अब भी है। लड़की युवती हो जाने पर नाम लिखा कर वेश्या बन गयी है। वह घर से चली गयी है, इसका कारण भी पंकजिनी है। उसी ने लड़की को वह राह दिखायी है। समझते हैं न, पंकजिनी के घर जाने पर बदनामी होती है। तो भी मैं बीच-बीच में—उस रास्ते से जाते हुए—एक क्षण के लिये खड़ा हो जाता हूँ। आँगन में खड़े-खड़े बात-चीत कर चला आता हूँ। आँगन में से ही दिखाई देता है—घर के भीतर खूटियों में वे सब सिर सजाये हुए हैं।

कारीगर ने कहा—बड़ा विचित्र लड़का है! मुँह देखकर तो बड़ा शान्त जान पड़ता है।

—हाँ। वह शान्त भी है और, बदजात भी। जान पड़ता है कि अनन्त पण्डित के मन में संशय उत्पन्न हुआ, विचित्र चरित्रवाले मलिन के—दोनों ओर दो विरोधी चरित्रों के दो लाल-नीले प्रकाश उसके मानसिक नेत्रों के सामने जल उठते हैं।

वह थोड़ा चुप रहने के बाद बोला—वह शान्त न रहे तो क्या करें कहिये ? किस मुँह से बात करे ? उसे इतना ज्ञान तो है ही। उसी लज्जा से स्कूल नहीं गया। वहाँ सब जाति और बाप की बात पूछते हैं। भद्र लोगों के बालकों के स्कूल में न सही, यहाँ जो नाइट स्कूल है, उसमें भी नहीं जाता।

कारीगर आकाश की ओर देखता रहा। शायद वह भी इसका उत्तर ढूँढ़ रहा था। लड़का शान्त है या बुरा ? उत्तर नहीं मिला। तो भी बोला—

—जो हो, उसे आज छोड़ दो।

उस दिन उन्होंने उसे छोड़ दिया था।

कई दिन बाद। उस दिन कृष्णनगर का कारीगर प्रतिमा में रंग रहा था। हठात् लड़कों के गोलमाल से आकृष्ट होकर जो कुछ देखा, उससे उसके विस्मय की सीमा न रही।

लड़के चिल्ला रहे थे—वही! वही! वही! वही झाँक रहा है!

—क्या है ?

—मलिन। हरामजादा मलिन। पेड़ पर चढ़ कर बैठे-बैठे देख रहा है।

—वही है! वही है!

वही तो! ठाकुरवाड़ी के घेरे के उस ओर एक लम्बे-बड़े अर्जुन पेड़ की घनी पत्तियों में लड़का बैठा हुआ है। देख लेने पर धीरे-धीरे सरक रहा है। कारीगर का सारा शरीर सिहर उठा। यदि गिर पड़े!

—ढेला मारो। एक लड़के ने गंगा मिट्टी का एक ढेला उठा लिया।

—नहीं। उसका हाथ कारीगर ने जोर से पकड़ लिया। इसके बाद घेरे की ओर बढ़ा। उसने धीरे किन्तु गम्भीर स्वर से कहा—उतरो, धीरे-धीरे उतरो, धीरे-धीरे। नही तो गिर जाओगे।

एक लड़का बोला—वह नहीं गिरेगा, वह पेड़ पर खूब चढ़ सकता है। गिलहरी की तरह खट-खट चढ़ जाता है।

ऐसा ही हुआ, लड़का सहज में ही उतर पड़ा। कुछ नीचे आकर थोड़ी ऊँचाई से ही जमीन पर कूद पड़ा। कारीगर ठाकुरवाड़ी से झट निकला और फाटक के बाहर आकर खड़ा हो गया। कहाँ है? वह उसे पुकारने आया था। कैसी आदम्य प्यास है! अहा हा!

किन्तु वह गोरे रंगवाला दुबला लड़का उल्टी दिशा में जा रहा है।

वह चला जा रहा है, रास्ते से नहीं, बेरास्ते, एक पोखरे के किनारे के घास के वन में होकर चला जा रहा है। वह उसी में लापता हो गया। कारीगर के मन में एक वेदना-सी हुई।

लौटकर अनन्त से बोला—क्या उसे एक बार बुला सकते हैं पण्डित जी?

अनन्त ने सिर हिला कर अत्यन्त स्पष्टता से अस्वीकार किया—नहीं जी, नहीं। वह बड़ा पाजी लड़का है। इसके बाद कारीगर का मुँह देख कर हँसते हुए बोला—आप व्यर्थ दुखी हो रहे हैं। उसे दुःख-सुख नहीं होता। बुलाइयेगा, और पास में बिठा कर आदर से दिखाइयेगा किन्तु अन्त में कुछ न कुछ बुरा कर देगा, इसमें रंचमात्र सन्देह नही। बुलाने के कारण बाबू लोग मुझे दोष देंगे। मैं आप से कहता हूँ, यहाँ का कोई कारी-

गर उसे पास फटकने नहीं देता। बदमाश उनका यंत्र लेकर भागता है। रंग और कूँची चुरा लेता है। सबसे मुश्किल है उसकी कारीगरी की विद्या। वह स्वयं मूर्तियाँ बनाता है न!

—मूर्तियाँ बनाता है?

—हाँ। वही प्रिय मूर्तियाँ, ऐसी-वैसी तो अच्छा बनाता है।

—कहाँ, यह तो नहीं बतलाया उस दिन?

हँस कर अनन्त ने कहा—यह मैं क्या कहूँ? बनाता है, छोटी जाति वालों के लड़कों को देता है। फालतू मूर्तियाँ। टेढ़ी-मेढ़ी गढ़न।

ठीक उसी समय उसके शिष्यने आकर पुकारा, रंग तैयार है; चक्षुदान करना होगा। आँखें बनानी होंगी। एक गहरी साँस छोड़ कर कारीगर लौटा और भीतर जाकर कूँची उठायी और प्रतिमा के मुँह की ओर देख कर क्षण भर में सब कुछ भूल गया।

उस दिन सन्ध्या समय टहल कर लौटते वक्त अनन्त साथ था, उसने हठात् खड़े होकर कहा—वही देखिये, वही तालाब के किनारे वाला घर। वही।

—क्या? वह क्या?

—वही मलिन की माँ का घर है।

—मलिन? वही लड़का? चलो चलें। क्या वह है?

—उसका क्या ठीक। वह कब कहाँ रहता है—यह भगवान भी नहीं बतला सकते।

किन्तु मलिन घर पर था। भगवान की इच्छा से जान पड़ता है नहीं, अपनी ही इच्छा से बैठे-बैठे प्रिय मूर्तियाँ ही बना रहा था। पंक्ति

की पंक्ति सामने सजा कर बनाये चला जा रहा था। कारीगर ने आश्चर्यपूर्वक कुछ क्षण खड़े-खड़े देखा। यह विचित्र लड़का है! जन्मजात कारीगर है! इसके बाद एक मूर्ति हाथ से उठा कर देखा,—तुम मूर्तियाँ तो अच्छी बनाते हो! क्यों यह नहीं बतलाया?

मलिन अवाक् हो गया। कृष्णनगर का कारीगर उसके सामने खड़ा है। कह रहा है, तुम अच्छी मूर्तियाँ बनाते हो! वह काम बन्द कर अपनी आदत के अनुसार गर्दन हिलाने लगा।

—हाँ, तुमने ढाँचा अच्छा बनाया है! नाक, मुँह भी सुन्दर है। किन्तु—। छाती बहुत बड़ी बनायी है।

मलिन के हाथ में स्वयं उसकी बनायीहुई एक पतली बाँस की छुरी थी। उसे लेकर थोड़ा छीलने के बाद बोला—

—अब देखो तो।

उधर बैठा था मलिन का भाई फणी। एक स्थूलबुद्धि मोटे चेहरे का बालक था। आश्चर्य है, वह मलिन से किसी बात में नहीं मिलता। वह मुँह बाये हुए बातें सुन रहा था। पंकजिनी घर नहीं थी। वह शहर गयी थी, जहाँ उसकी लड़की मनोरमा रहती है। अब फणी पास में आया और बड़े-बड़े दाँत निकाल कर बोला—दिन रात यही करता है। कोई काम नहीं है, कोई काज नहीं है।

—करे। करे। देखूँ और क्या बनाया है? यह क्या है, हाथी-घोड़ा-गाय! यह क्या? बाघ, यह सिंह! हाथ तो अपटु नहीं है।

—यह उसका चिड़ियाखाना है।

—चिड़ियाखाना ! वही तो ! एक छोटी चौकोर जगह लकड़ी का छोटा-छोटा घेरा बनाकर सजा रखा है मिट्टी के जीव-जन्तु ।

—देखिये सबसे अच्छा इसे बनाया है ।

फणी एक मिट्टी का ब्राकेट निकाल लाया । छाती तक एक नारी की मूर्ति बना कर मिट्टी के आधार पर रख दिया है । उसे रँगा भी है । कारीगर विस्मित हो गया । लड़के के हाथ की बनायी हुई नारी कटाक्ष-मयी है । कटाक्ष का भाव नेत्रों से फूट रहा है । एक स्तन आधा ढँका है, स्तन की घुण्डी के चारों ओर एक काली आभा, और काली घुण्डी को स्पष्ट करने में उसने भूल नहीं की है । उसके रंगों का मेल देख कर पूछा—

—क्या देख कर बनाया है ?

—काले घेरे में रंग अच्छा लगेगा, इसलिये यह रंग दिया है ।

इतना कह कर मलिन रुक गया । यही है उसकी पहली बात ।

फणी बोला—बहिन ने एक खरीदा था, उसे देख कर बनाया है ।

हठात् कारीगर ने कहा—तुम मेरे साथ कृष्णनगर चलोगे ? तुमको मैं सिखाऊँगा ।

मलिन ने उत्तर नहीं दिया । वह उठ कर घर में चला गया और हाथ में दो मुँह लेकर बाहर आया । कारीगर को आश्चर्य हुआ । एक है कृष्ण-नगर में उसीकी बनायी हुई मूर्ति का सिर और एक मलिन के हाथ का बनाया हुआ । रंग खराब है । वस्तु साँचे की नहीं है, लड़के के हाथ की बनायी हुई है—फिर भी सादृश्य लाया है । अच्छा सादृश्य लाया है !

—आपकी खिड़की के पास इसे पाया था ।

जब कारीगर यहाँ आया तो अमृतबाबू को देने के लिये कुछ मूर्तियाँ

लाया था। उनमें एक टूट जाने से फेंक दी गयी थी। लड़के ने उसी की नक़ल की है।

—तुम चलो तो मैं ले जाऊँगा।

—मैं चलूँगा।

—कल सबेरे आना। मैं कह दूँगा, कोई कुछ नहीं कहेगा।

—नहीं। वहाँ— ।

—कोई कुछ नहीं कहेगा। मैं बाबुओं से कह दूँगा।

—नहीं। वह मैं नहीं जाता।

—नहीं जाते। कारीगर योगेश पाल अपनी हँसी न रोक सका।

साथ ही साथ मलिन बोल उठा—उस दिन दोपहर के समय गया था। सभी सो रहे थे। घेरा फाँद कर गया था। आपसे बात करने गया था। और थोड़ी गँगा मिट्टी—

—और टूटी मूर्ति। अनन्त पण्डित ने हँस कर व्यंग किया।

—वह पड़ी थी। और वह तो देवता नहीं, परी है। इसीलिये ले लिया था। वहाँ मैं नहीं जाऊँगा।

हठात् लड़का रूढ़ हो गया। उसके चरित्र में यह अप्रत्याशित ही नहीं अशोभन है, इसीलिये अधिक तीखा लगा। उसके दोनों छोटे नेत्र जैसे जल उठे। वह बोला—वे मुझे भला-बुरा कहते हैं। दिल पर चोट लगने वाली बातें कहते हैं। बोलते-बोलते जैसे शान्त निरीह लड़का पागल हो गया। उसने एक ढेला उठा लिया और उसे जमीन पर जोर से फेंक कर आ-आ शब्द से चिल्ला उठा। जो उसको लगती-लगती बातें कहते हैं,

उनको न मार सकने के कारण उनके प्रति उसका विक्षोभ प्रकट हुए बिना न रहा।

अनन्त पण्डित कूद कर उसके घर से रास्ते में आ गया। अरे बाप रे! दिन-दिन इसके विष का दाँत बढ़ रहा है। अरे बापरे!

शिल्पी योगेशपाल उसके सिर पर हाथ रख कर बोला—ना-ना। तुम्हें वहाँ नहीं जाना पड़ेगा। और मैं मना कर दूँगा, वे तुम्हें बाहर भी कुछ न कहेंगे।

विचित्र लड़का है! उसकी बात जैसे कान में गयी ही नहीं। एक दृष्टि से सामने की ओर देख रहा है। क्या सोचता है, उसी में डूबा हुआ है।

हठात् उसने कहा—नहीं, वहाँ नहीं जाऊँगा, आप अपने साथ मुझे कृष्णनगर ले चलिये।

—अच्छा। वही होगा। योगेशपाल ने हँस कर उत्साहपूर्वक कहा।

—कौन है? कौन आया है? रामजय बाबू हैं क्या? कब आये? किन्तु सुना था कि अबकी बार पूजा में बाबूसाहब नहीं आयेंगे! मैं तो सोच में मरी जा रही थी। कहती मेरा क्या होगा? जिसके भाग्य में हो, जो आये लूला लँगड़ा, मेरे मलीनचन्द को जामा न रहने से कैसे चलेगा? मैं अभागी कहाँ, क्या पाऊँगी? मैं उसकी आँखों में पानी नहीं सह सकती। वही पंकजिनी की प्राण-पुतली है।

पंकजिनी का कण्ठ स्वर है। मनो के यहाँ से जब सन्ध्या की ट्रेन से लौटी और घर के सामने योगेशपाल को पीछे की ओर से रामजय बाबू समझ कर सरस आनन्द की बातें कहते-कहते घर में घुसी।

पहले तो योगेशपाल ने नहीं समझ पाया। उसने समझा कि

कोई मनुष्य रास्ते में अपने प्रियजन से बातें कर रहा है। किन्तु मलिन और पंकजिनी के नाम सुन कर समझ लिया कि इस बात का लक्ष्य वही है, जो घर के आँगन में खड़ा है। वह चंचल होकर हैरान हो गया। उधर पण्डित भाग गया था ! कैसी विपद् है ! उसको पंकजिनी के बोलने का ढंग आनन्द-जनक नहीं भयनायक और अप्रीतिकर लगा।

इसी समय पंकजिनी सामने आकर खड़ी हो गयी। उसके खड़े होने की भंगी का एक विशेष रूप था। थोड़ी तिरछी और गर्दन बढ़ा कर वह खड़ी हुई। उसके मुँह में थोड़ी हँसी और नेत्रों में प्रसन्न दृष्टि थी। वह आत्मीयता से भी गहरी अन्तरंगता का एक हिल्लोल फैला देना चाहती थी। किन्तु क्षण भर के लिये ही। दूसरे ही क्षण अपरिचित मनुष्य देख, सिर का कपड़ा सरका कर वह सहज और सीधी होकर खड़ी हो गयी। आँखों की वह दृष्टि, मुँह की वह हँसी मिट गयी। उसके स्थान पर संकोच की भंगी फूट पड़ी। इसके बाद ही बोली—मैं नहीं पहचान सकी बाबू। किन्तु आप कौन हैं ?

उसी समय संकुचित अधीरता से गर्दन हिलाता हुआ एक पैर आगे बढ़ कर मलिन बोला—यही हैं कारीगर जी। कृष्णनगर से लक्ष्मी प्रतिमा बनाने आये हैं।

क्षण भर में पंकजिनी का मुँह उज्ज्वल हो उठा। काँख की गठरी लड़के को देकर झट प्रणाम कर बोली—आइये ! आइये ! आइये। तुम लोग बैठाते भी नहीं ? मोढ़ा कहाँ है ? ओ फणी !

—नहीं। मैं नहीं बैठूँगा। मैं तुम्हारे ग्राम देवता को प्रणाम करने गया था। रास्ते में पण्डित ने कहा कि मलिन का घर यही है। मलिन मूर्तियाँ बनाता है। वही देखने आया था।

—मूर्तियाँ नहीं खाक, वही मिट्टी के ढेले। वह हाथ में मिट्टी-कीचड़ लेकर दिन-रात बैठा रहता है। काम नहीं है, काज नहीं है बेकार है, मैं कुछ नहीं कहती, गोद का लड़का है। उसको गर्भ में लेकर ही विधवा हुई थी।

वह और कुछ कहने जा रही थी, किन्तु पाल रोक कर बोला—नहीं, नहीं। तुम्हारे लड़के का हाथ अच्छा है। सिखाने से और अच्छा हो जायगा। उसी से उसका पेट चल जायगा।

—वह सीखेगा नहीं बाबू! किसी कारीगर के पास नहीं जायगा। कारीगर क्या, किसी मनुष्य से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। वह इधर-उधर भटका फिरता है, आदमी देख कर भागता है। बड़ा ही मुँहचोर है। इसके अतिरिक्त दुखिनी की सन्तान है, लोग तरह-तरह की बातें कहते हैं। मैं कहती हूँ, बोलें, बोलने दो। क्या मुझे नहीं कहते? जीवन भर बोलते हैं। कुछ सत्य, कुछ मिथ्या। बोलें!

योगेशपाल के विस्मय की भी सीमा न रही, उसकी अशान्ति और चंचलता का भी अन्त न था। वह समझ नहीं पाता था कि यह कैसी स्त्री है! पण्डित कहता था—कुछ मूर्ख है, ऐसा ही है क्या? अथवा—?

अब मलिन ने माँ की बात में बाधा देकर कहा—मैं कारीगर जी के साथ जाऊँगा।

चौंक पड़ी पंकजिनी—किसके साथ?

—कारीगर जी के साथ कृष्णनगर, उन्होंने कहा है।

—उन्होंने कहा है? कल को पुतली के समान पंकजिनी बोल उठी।

योगेशपाल बोला—तुम्हारे लड़के में जो आग्रह देखता हूँ, उससे ले जाऊँगा। बेचारा दोपहर में घेरा फाँद कर मूर्ति देखने गया था। चप-

रासी ने पकड़ कर अपमान किया। उससे भी उसका मन नहीं माना, उसने अर्जुन पेड़ पर चढ़ कर देखा—लोगों ने ढेले मारे—

किसने ? किसने ? किन बदमाशों ने ? क्यों मुझे तो नहीं बतलाया मलिन ?

एक क्षण में पंकजिनी जैसे साँपिनी का रूप धर सामने खड़ी हो गयी। साँपिनी नहीं, बाघिनी, साँपिनी में सन्तान-स्नेह नहीं होता, पंकजिनी बाघिनी के समान हिंस्र हो उठी।

पाल बोले—छोड़ो उन बातों को। उसको मैं ले जाऊँगा। मनुष्य बना दूँगा।

—नहीं। पंकजिनी चिल्ला उठी। नहीं-नहीं। आप यह न सिखलाइए। नहीं। मुझ दुखिनी का धन—नहीं, वह पाल की ओर बढ़ आयी। पाल दो कदम पीछे हट कर बोला—

—अच्छा! अच्छा! मैं नहीं ले जाऊँगा। कहकर वह चला गया। और खड़ा रहने की इच्छा नहीं हुई। आते-आते उसके कान में पड़ी कठिन किन्तु मृदु स्वर में यह बात—नहीं। मैं जाऊँगा।

इसके बाद ही सुना—छोड़ दे! छोड़ दे! छोड़दे!

एक बार पीछे घूम कर देखा—पंकजिनी मलिन को छाती से लिपटाये हुए है।

तीन

वह पंकजिनी के बहुत कष्ट का धन है। वह मलिन के लिये अनेक लांछनायें सहती है। वह उसे छोड़ नहीं सकेगी।

पंकजिनी ने मलिन से कहा था—

—अगर यम माँगने आये, तो भी मैं तुम्हें न दूँगी। मैंने तुम्हें पेट में रखा है, अनेक कलंक सहे हैं, मेरे रहते तुम पर यम का भी अधिकार नहीं है। अगर वे बलात् ले जायेंगे, तो मैं पीछे-पीछे जाऊँगी। खबरदार, तू ऐसा विचार न कर। मैं मना करती हूँ। मैं मना करती हूँ। नहीं तो मैं गले में रस्सी लगाकर मर जाऊँगी।

—क्यों व्यर्थ बकती हो, माँ। वह जा चुका और तू मर चुकी। फणी विरक्त हो गया, इसी से बीच में बिना बोले न रह सका।

मलिन चुपचाप बैठा है। घर की छत की ओर देख रहा है। अजब लड़का है। मनुष्य के मुँह की ओर नहीं देखता।

पंकजिनी उस समय नयी आई हुई एक नकल डिट्ज़ मार्का लालटेन जलाकर पान लगाने बैठी। वह बहुत-सा पान लगायेगी, वह दिन भर बहुत पान खाती है। वह पान मनो के यहाँ से लायी है। उसने एक पान लगाकर उसे मुरेड़ कर मुँह में डाला और चबाते-चबाते कहा—

बोलता क्यों नहीं ?

वह फणी की बात सुनती ही नहीं। क्या वह मनुष्य है। उसने पूछा था मलिन से।

मलिन बोला—क्या कहूँ ?

—कहो, नहीं जाऊँगा।

मलिन ने उत्तर नहीं दिया।

पंकजिनी ने कहा—पहले मैं मर जाऊँ, फिर तुम कहीं जाना।

मलिन ने एक बार माँ की ओर देखा। उसकी दोनों भौंहें विचित्र रूप से टेढ़ी हो गयी हैं और मोटी भौंहों के नीचे दोनों छोटी आँखें स्थिर हो गयी हैं।

इस प्रकार क्यों देख रहा है ? इच्छा हो रही है, अभी इस विपत्ति को मार कर फेंक दूँ ?

दोनों हाथ बढ़ाकर उसने लड़के को खींच कर छाती से चिपका लिया। उसके खींचने की भंगी और उसका आकर्षण विचित्र था। इसके बाद हँस कर बोली—ऐसा होने पर क्या रिहाई पा जाओगे ? तुम्हारे पीछे भूत बनकर घूमा करूँगी। हाँ। उसके कण्ठस्वर में तनिक भी परिहास-नहीं था, उसमें दृढ़ निश्चय छलछला रहा था। भूत हो जाना पंकजिनी के लिये तनिक भी समस्या नहीं है। आत्महत्या करते ही भूत हो सकती है।

—छोड़ो। भूत से मैं नहीं डरता।

—मैं जानती हूँ। तेरे जैसा मुँहचोर बदमाश तो मैंने देखा नहीं।

—अच्छा, अच्छा मैं नहीं जाऊँगा। मुझे छोड़ दो।

—ठीक है न ? मेरे शरीर पर हाथ रखकर शपथ खाओ।

—शपथ खाता हूँ। नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा।

क्षण भर में पंकजिनी आह्लाद से गद्‌गद हो उठी। वह बार-बार लड़के का मुँह चूमने लगी। सोना रे, मणि रे! सात राजाओं के धन माणिक रे! हठात् याद पड़ गया कि आते समय मनोरमा ने चार मिठाइयाँ दी थीं। कहा था—फणी एक, तू एक और दो मलिन। किन्तु रास्ते में आते समय उसने दो खुद खा लिया है और दो लायी है। एक फणी और एक मलिन खायेगा। यह बात इस गड़बड़ी में उसे स्मरण न रही। अकस्मात् स्मरण पड़ गयी। मलिन को छोड़ उठ खड़ी हुई और गमछे की खूँट खोलकर शाल पत्ते के दोने से दो मिठाइयाँ निकाल ली, उन्हें मलिन को देकर बोली—ले, खा।

—क्या ?

—मिठाइयाँ। मनो ने दिया है। फणी को आधी दे दे।

—मुझे आधी ही ? फणी ने आपत्ति की।

भाई से जलता है ! ले—जो देता है, खा ले।

मलिन ने आधी से भी कम फणी को दी और आँखें बन्द कर निर्विकार होकर खाने लगा।

पंकजिनी ने कहा—मनो ने तुझे बुलाया है। पूजा का जामा खरीद देगी। शरीर में खूब फिटफाट देखकर खरीदना। नहीं तो ढोल बजाने वालों की तरह लगेगा। और द्वार पर कमल बनाना होगा। उसके घर में फिर चूना लगा है। सब चमक रहा है। कमल, फूल, लता न रहने से शोभा कैसे होगी ? बहुत-सी स्त्रियों ने तुझसे बनवाने को कहा है। मनो ने कहा है कि पैसा लगेगा। सब राजी हो गयी हैं। कल ही चला जा।

—अच्छा, जाऊँगा।

दूसरे दिन वह गया। देवीग्राम से मनो का छोटा शहर तीन कोस दूर है। रेल का भाड़ा तीन आने हैं। मलिन पैदल ही जाता है। अभ्यास के अनुसार धीमी चाल से हिलते-डोलते चलता है। चलते-चलते बैठ जाता है, किसी पेड़ के नीचे या किसी चबूतरे के ऊपर। पेड़ की छाल पर छुरी से चित्र बनाता है। चबूतरे के पलस्तर की दरारों को जोड़कर विचित्र-विचित्र रेखायें बनाता है। फिर आगे चलता है। एक बेला के रास्ते के चलने में सारा दिन लग जाता है। किन्तु इससे न तो उसे कभी क्लान्ति होती है और न विरक्ति। सन्ध्या समय मनो के घर पहुँच कर देखता है कि वह साज-बाज कर रही है। वह चुपचाप बाहरी बरामदे में

एक ओर बैठ जाता । हठात् बाहर से कोई पुकारता है—कहाँ हो ? मनो सुन्दरी ।

मलिन को हँसी आती है । मनो—और सुन्दरी !

कोई पुकारता है—मनुवा !

इन सब विचित्र सम्बोधनों और कण्ठ-स्वरों के गदगद भावों को सुन कर कभी उसे हँसी आती है और कभी क्रोध आता है। अकस्मात् कभी-कभी ऐसी इच्छा होती है कि नख-दाँत निकाल कर कूद पड़े उस आदमी पर ।

उस दिन मनो के घर पहुँचते ही उसने कहा—आ गया !

गर्दन हिला कर मृदुस्वर से मलिन बोला—माँ ने कहा है, कमल बनाना होगा ।

—हाँ । और स्त्रियाँ भी बनवायेंगी । इस बार अगर पैसा न लेकर बनाया तो दिखाऊँगी तुझे । चार पैसे में एक फूल । लता-पता समेत दो आने ।

—वह तुम कहो ।

—कहूँगी, किन्तु वे मीठे स्वर से बुलायेंगी । बना दो न भाई मलिन, मेरे द्वार पर बना दो और तू चला जायगा ।—ऐसा न होगा । मलिन ने सिर हिला कर स्वीकृति जनायी । इसके बाद बोला—थोड़ा खाना दो । उस वक्त का भात है ?

—जान पड़ता है, सबेरे ही चले हो ?

—हाँ ।

—तू रास्ते में क्या करता है ? पेड़ के नीचे सो जाता है या सोते-

सोते चलता है? मलिन की यह चाल मनो को विचित्र लगती है। वह विरक्त भी हो जाती है। उनके कण्ठस्वर से वह विरक्ति फूट उठती है।

मलिन के कानों पर जूँ नहीं रेंगती। संसार में किसी की विरक्ति या निन्दा से उसका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। इसी छोटी आयु में ही उसने इन सब के सहने के लिये एक कठोर आवरण तैयार कर लिया है। उसने निरासक्त भाव से ही कहा—देखते-देखते चलता हूँ। अच्छा लगने पर बैठ जाता हूँ। बैठे हुए देखता हूँ, फिर चलता हूँ।

मनो ने उसका उत्तर सुनने की प्रतीक्षा नहीं की, सन्ध्या के समय का प्रत्येक क्षण उसके लिये मूल्यवान है। उसका मन उस समम बाहरी दरवाजे पर किसी की पुकार या किसी के पैरों को आहट सुनने के लिये उत्कण्ठित रहता है। वह मलिन के लिये भात परोसने घर में चली गयी। भात परोस कर थाली सामने रख दी और बोली—ले खा, खूब तीती मछली पकायी है। खाकर देख।

खाते-खाते मलिन ने पूछा—कमल-कामिनी की पूजा देखने न चलोगी?

—कमल-कामिनी या लक्ष्मी?

—दोनों एक ही हैं। जो कमल-कामिनी, वही लक्ष्मी। मैंने सुना है।

—माँ री! तू इतना जानता है! मनो ने वास्तव में यह बात अहंकार में कही। मलिन के लिये उसका यह गर्व कपटहीन है। किन्तु मनो के गर्व में मलिन को आनन्द नहीं आता। उसने वह सब बातें न कहकर सीधी और मोटी बातें शुरू कर दी।

—सुना है खूब धूम-धाम होगी। कलकत्ता से यात्रा आयेगी। खूब अच्छी प्रतिमा तैयार हुई है; ऐसा कभी नहीं देखा।

—खूब अच्छी? देखा है?

—हूँ। कारीगर जी से बातें की है। मेरे घर मेरी मूर्तियाँ देखने गया था।

—सच?

—हाँ। कहा—हाथ अच्छा है। वह मुझे साथ ले जाना चाहता था। कहा—सिखाऊँगा।

—तू जायगा?

—जाऊँगा। इसलिये तुम्हारे पास आया हूँ। तुम पाँच रुपये मुझे दो। परदेश जाऊँगा।

—माँ से ले ले। उसके पास रुपये हैं।

—नहीं देगी। सीधे कहती है कि तुम्हारा जाना नहीं होगा।

—तो फिर?

—मैं भागूँगा।

—भागेगा?

—हाँ। क्या होगा घर बैठकर? कारीगर ने कैसी सुन्दर मूर्ति बनायी है। उसने सिखाने को कहा है। नहीं जाऊँगा? न जाने देने पर भाग जाऊँगा।

—अच्छा। देख यहाँ कमल बनाने से कितना पाता है। इसके बाद मैं पाँच रुपये पूरा कर दूँगी।

इसी समय बाहरसे पुकार आयी—मनो है? मनोरमा?—आती हूँ।

शीघ्र ही मनोरमा उठकर चली गयी। क्षण भर में जैसे बहुत दूर चली गयी। इतनी दूर चली गयी कि पुकारने पर भी न सुन पायेगी। वह जाय, किन्तु जल नहीं दे गयी। जल घर के भीतर है। भात का ग्रास गले में अटक रहा है। हाथ समेट कर मलिन खड़ा हो गया। थाली लेकर थोड़ी दूर पर तालाब पर चला गया। वहाँ हाथ से जल पीकर थाल धोयी और बरामदे के एक कोने में सो गया। थोड़ी ही देर में गहरी नींद आ गयी। उसने कोई स्वप्न भी नहीं देखा।

उसने बहिन मनोरमा के घर में तथा उसकी पड़ोसिनियों के घर में कमल बनाया और एक नया जामा और एक पाँच रुपये का नोट बाँध कर तीन दिन बाद घर लौट गया। घर में पैर रखते ही सुना कल सबेरे की ट्रेन से कारीगर चला जायगा। फणी ने बतलाया। वह सुनकर आया है।

भौंहें टेढ़ीकर मलिन कुछ क्षण खड़ा रहा। यह क्या ? उन्होंने कहा था कि तुम को ले जायेंगे।

फणी की ओर देख कर उसने पूछा—कारीगर जी·······फिर आये नहीं ?

—नहीं।

—कोई खबर नहीं दी ?

—नहीं।

मलिन चुप हो गया। वह जोर-जोर से हिलने लगा।

फणी बोला—तुझे नहीं ले जायगा ? और क्या !

—पण्डित आया था ? जान पड़ता है माँने मना कर दिया है ?

—नहीं ? कल से ही माँ दक्षिण पाढ़े के बाबुओं के यहाँ पूजा के

काम में लगी है। मूड़ी भूज रही है और पूजा का काम करती है। वह वहीं दिन-रात रहती है। वह कब कहेगी ?

मलिन ने फिर कुछ नहीं कहा ! हरीकेन लेकर थोड़ा-सा तेल हाथ में ढाल लिया और उसे सारे शरीर में मलते-मलते बाहर चला गया। अकारण बहुत रात तक अमृतबाबू के घर के चारों ओर घूमता रहा। एक बार अर्जुन पेड़ पर भी चढ़ा। देखा प्रतिमा बन गयी है। उज्ज्वल प्रकाश जल रहा है। कैसी सुन्दर प्रतिमा है। उसके सिर की ओर माला लेकर तीन—दोनों तरफ दो और एक बीच में—माल्यधारिणी परियाँ है। अहा हा ! अत्यन्त विस्मय में भर कर वह पेड़ की डाली पर बैठा रहा। कीड़ों-मकौड़ों का डंक सहन कर भी बैठा रहा। वर्षा में बहुत कीड़े-मकोड़े पैदा हो गये हैं। जाड़े तक रहेंगे। पेड़ उनके घर हैं। यदि कोई या कुछ पेड़ पर चढ़े तो ये दल बाँध कर आते और उसे घेर लेते हैं। घेर लें, मलिन सब सह चुका है। इसीलिये तो वह किरासिन तेल पोत कर आया है। उसकी इच्छा हो रही है कि सारी रात बैठा रहे। वही हैं कारीगर जी। कारीगर ने अपने शिष्यों की सहायता से एक चादर लेकर प्रतिमा ढँक दी। अब मलिन उतर आया। घर में आकर चुपचाप सो गया।

फणी बोला—देख आया ?

—मलिन ने उत्तर नहीं दिया।

—खाओगे नहीं ?

—खाऊँगा। दे।

—उँह, दे, बाबू बना है ! वह रखा है, लेकर खा।

मलिन उठा और खाकर चुपचाप सो गया। वह सवेरे उठकर स्टेशन पर हाजिर हो गया।

कारीगर बहुत देर बाद आया। आते ही मलिन जाकर उसके सामने खड़ा हो गया। वह चुपचाप खड़ा होकर हिलने लगा। कारीगर उसके मुँह की ओर देख कर बोला—आ गया ?

मधुस्वर से मलिन बोला—हाँ।

—सीखो। अच्छी तरह सीखो। यहाँ भी तो सब कारीगर हैं। उन्हीं में से किसी से सीखो।

—आपने साथ ले चलने को कहा था। मैं चलूँगा।

योगेशपाल ने उसके मुँह की ओर एक बार देखा। इसके बाद दृष्टि हटा कर चुप होगया। वह सोच रहा था। लोगों ने इस लड़के के विषय में अनेक बातें कही हैं। वह सोचता है। उनके शिष्यों ने भी सुनी हैं। इसके बाद——।

—मेरे पास भाड़ा है।

योगेशपाल ने एक लम्बी साँस छोड़ी और करुणा भरी हँसी के साथ बोला—इसके लिये नहीं। दूसरी बात है। अभी तो मैं घर नहीं जा रहा हूँ। और बहुत जगह जाना है। प्रतिमा बनानी है। साथ में पूजा है। पूजा समाप्त हो जाय। लक्ष्मीपूजा के समय मैं फिर आऊँगा। उसी समय तुम्हें ले जाऊँगा।

मलिन चुपचाप खड़ा रहा। हिला नहीं। छाती में एक प्रचण्ड वासना जाग उठी है, जो उसे अधीर कर रही है। निरे बच्चे के समान रोने की इच्छा हो रही है, नहीं—चलूँगा। नहीं—नहीं चलूँगा। मैं चलूँगा।

किन्तु जाना नहीं हुआ। कारीगर ट्रेन से चला गया। मलिन चुपचाप खड़ा रहा। कुछ देर बाद उसी तरह हिलते-डोलते लौट आया।

इसके बाद पूजा बीत गयी। अमृतबाबू के यहाँ अत्यन्त समारोह से लक्ष्मीपूजा भी हो गयी। लक्ष्मीपूजा के विसर्जन के दिन वह प्रतिमा के आस-पास ही था। उसका लक्ष्य था, उसी प्रतिमा के सिर के नीचवाली मनोहर छोटी परी की ओर। प्रतिमा के साथ-साथ जल में कूदा भी। बाबुओं के चपरासियों ने देख लिया। उन्होंने लाठी चलायी। जल पर या सिर पर कौन कह सकता है? किन्तु मलिन फिर घर नहीं लौटा। उसे किसी ने नहीं देखा। उसकी लाश भी नहीं तैरी। वह न तैरे। पंकजिनी ने समझ लिया है—वह उसी लड़िया—वहाँ के कालीदह उस राक्षसी तालाब के नीचे मुँह के बल फँस गया है। कमल-कामिनी के हाथी ने उसे सूँड़ से दबा दिया है या उसे मुसलमानी काल में कूद कर डूबने से मरी हुई राजकन्याओं और राजरानियों की प्रेतात्माओं ने उसे पकड़ रखा है।

मनो बोली—रोओ मत। मलिन तैरना जानता है, जल में डूबा नहीं है। वह उसी कारीगर के यहाँ गया है। मनो को रोना अच्छा नहीं लगता। इस समय उसके घर आनन्द-सन्धानी आयेंगे। वे रोना सुन कर कैसे आयेंगी? पंकजिनी भी चुप हो गयी। कुछ देर बाद उठी। निकल कर चल पड़ी देवीग्राम के रास्ते पर। तीन कोस का रास्ता अन्धकार में धीरे-धीरे रोती-रोती चली आयी। मलिन रे! मलिन! बापरे! सोना रे!

दूसरे दिन सवेरे वह कालीदह के पक्के घाट पर खड़ी हो गयी। वर्षा के जल से कालीदह लहरा रहा है। नया खुदा हुआ तालाब, इसमें कहीं भी कोई कमल या उद्भिज अभी पैदा नहीं हुआ है। जल भी अभी काला नहीं हुआ है, वह मिट्टी के रंग में घुल गया है। मिट्टी साफ विस्तृत आँगन के

समान दीख रही है। स्वच्छ, इस सिरे से दूसरे सिरे तक कुछ तैरता नहीं है। पानी में दो-चार घास-पात भी तैरती नहीं दिखाई देती। कहाँ? वह कहाँ है?

—पंकजिनी? अनन्त पण्डित फूल तोड़ कर लौट रहा था, वह पंकजिनी को देख कर खड़ा हो गया।

—पण्डित जी, मेरा मलिन पानी के नीचे खो गया है।

—ना। डूब कर मरने से ऊपर आ जाता पंकजिनी, वह उसी कारीगर के यहाँ गया है। मैं उस बेला तुम्हारे घर आऊँगा। पोस्टकार्ड खरीद रखना एक, जोड़ा पोस्टकार्ड। उसे चिट्ठी लिख दूँगा। देखना, तीन-चार दिन में ही निश्चय खबर पायेगी! "कुछ चिन्ता न करो। मलिन यहाँ आया है। अच्छी तरह है।"

तीन-चार दिन में ही खबर आयी। योगेशपाल ने लिखा—'पण्डित जी, पत्र पाकर अत्यन्त दुखी हुआ। मलिन तो यहाँ नहीं आया। यहाँ आने से अवश्य मेरे घर आता। मेरा नाम लेने पर कोई भी दिखा देता। फिर पुलिस के आफिस में खोज ली। वे खोये हुओं को रखते हैं और बिना टिकटवालों को जमा करते हैं। वहाँ भी कुछ खोज न मिली। दूसरी जगह खोजियेगा। वह यहाँ निश्चय ही नहीं आया है।"

—तो फिर? मलिन खो गया?

चला गया। अभागा चला गया। खो गया! पंकजिनी हाथ फैला कर मिट्टी की मूर्ति के समान बैठी रही।

द्वितीय पर्व

एक

खोना या खोजाना पृथ्वी का एक नियम है। इसके साथ ही साथ समान रूप से नया आना या नया पाना चलता है। खोया या खोया हुआ मनुष्य कभी-कभी लौट आता है। किन्तु कौन मर कर जीता या खोकर पाता है? जिसका महापुण्य या महाभाग्य होता है। महादान के पुण्य से महाराज हरिश्चन्द्र और महारानी शैव्या ने मृतक रोहिताश्व को फिर पाया था। सती सावित्री ने महाव्रतों और तपश्चारणों के पुण्य से सत्यवान को फिर पाया था। क्या पंकजिनी का वैसा ही कर्म, वैसा ही भाग्य है?

योगेशपाल ने पत्र लिखते समय यही सोचा था और आँखों से आँसू भी बहाये थे। उसके चिह्न भी पोस्टकार्ड पर थे। साथ ही साथ और भी सोचा था'''और जो खो जाने पर स्वयं लौट आता है वह या तो अत्यन्त पुण्यात्मा या अत्यन्त अभागा होता है। गौतम लौटे बुद्ध बन कर, ध्रुव लौटे ध्रुवलोक के स्वामी बन कर, और कृष्णनगर का संसार त्यागी खोया हुआ रामेश्वर दस वर्ष बाद शवसाधना का आसन छोड़ भ्रष्ट होकर पागल बन लौटा।

यह आज से चार वर्ष पहले की बात है। चार वर्ष पहले इन वैष्णवों का अत्यन्त शान्त, अत्यन्त उपद्रवी लड़का खो गया था। इस बार भी

योगेशपाल देवीग्राम में महालक्ष्मी गढ़ने गया था। एक ही दिन के लिये रँगने के समय। आजकल उसका पुत्र ही काम करता है। वह अपने घर पर ही मुँह बना देता है, और रँगने के समय एक दिन के लिये जाकर रँग आता है। विशेषतः तीनों नेत्र बनाने के लिये जाता है। हर बार मलिन-पंकजिनी की बात चलती है। अनन्त पण्डित ही चलाता है। इस बार पण्डित ने बात नहीं छेड़ी, पाल ने ही चलायी—क्यों इस बार तो उस लड़के की बात नहीं कही? मलिन लौट आया क्या? अनन्त हँस कर बोला—वे सब धो-धा गये। क्या कहूं?

—धो-धा गये? मलिन—

—नहीं, वह जो गया तो फिर लौटा नहीं। जब लौटा नहीं, तो वह भी गया। यहाँ उसकी माँ मर गयी। बहिन वेश्या हो गयी थी, वह भी मर गयी—

—क्या कहते हैं?

—हाँ। छुट्टी पा गयी। अभागी को लड़के के लिये बड़ा शोक हुआ था। रोते-रोते घूमती, सो तो आपने देखा ही था।

—हाँ। पिछली बार भी तो आयी थी। "भैया, क्या वह आपके यहाँ नहीं गया?"

अब एक गहरी साँस छोड़ कर अनन्त बोला—इसके बाद लड़की का खून हो गया। वह अधिक न सह सकी।

—खून?

—हाँ। रात में जो घर में आये थे, उन्होंने मद-टद खिला कर उसको बेहोश कर दिया, फिर गला दबा कर मार डाला और जो कुछ था लेकर भाग गये। यही है कर्म का फल···है न और क्या?

—नारायण, नारायण, नारायण, स्मरण किया योगेशपाल ने।

—वह लड़का भी, समझते हैं न, शायद रेल से कट कर, नहीं तो नदी-नाले में डूब कर, अथवा साँप-बाँप के काटने से अकाल में ही मरा है।

योगेशपाल ने अविश्वास नहीं किया। इसमें अविश्वास करने का क्या कारण है?

—केवल वही फणी रह गया। वह निरीह है, मिहनत-मजदूरी करके पेट पालता है।

अनन्त पण्डित बक-बक कर पंकजिनी की पुरानी बातें दुहराने जा रहा था, किन्तु योगेशपाल ने रोक दिया। यह उसे अच्छा नहीं लगा।

—वह सब बातें छोड़िये पण्डित जी, दूसरी बात कहिये। कहिये, इस बार पूजा की व्यवस्था कैसी है? चार वर्ष का संकल्प का अन्त तो इसी वर्ष है। या बराबर ऐसा ही होगा?

—सुना है, धातु की मूर्ति बनेगी। नित्य पूजा! अब भी ठीक नहीं है, किन्तु जब मालिक रोग-शय्या से उठेंगे, तभी। नहीं तो जैसी चलती है, वही चलेगी।

—मालिक चंगे हो जाँय। माँ की नित्य पूजा हो! आपका वेतन बढ़ जाय! चलिये—इस बार मैं माँ का मुँह अन्तिम बार रँग दूँ।

*　　*　　*　　*

देवीग्राम से ही योगेशपाल लौटा था। छोटी लाइन से कटवा तक जाकर बैण्डेल बारहारोवा लाइन की गाड़ी से नवद्वीप आकर उतरा। वहाँ से गंगा पार कर फिर ट्रेन द्वारा कृष्णनगर जायगा। नवद्वीप में महाप्रभु का दर्शन-बन्दन करेगा।

बहुत समय से नवद्वीप नहीं आया है। भुवनपाल से भी भेंट कर लेगा। यह वृद्ध किसी समय कारीगरों में बड़ा प्रसिद्ध था। अब भी उसकी अच्छी चलती है।

भुवनपाल के घर के सामने ही उतर कर वह स्तम्भित हो गया।

वह कौन है? परिचित-परिचित-सा, बहुत परिचित सा। प्रतिमा या मूर्ति देख कर कोई उसके घास के ढाँचे या एकमिट्टी दोमिट्टी की अवस्था के रूप की कल्पना नहीं कर सकेगा, किन्तु कारीगर कर सकता है। उसकी तीक्ष्ण दृष्टि में रंग से ढँके हुए दोष प्रकट हो जाते हैं। इसको देख कर भी वैसा ही जान पड़ता है।

एक अट्ठारह-उन्नीस वर्ष का सुगठित तरुण युवक। कच्चे सोने जैसा रंग, रगड़ने से उज्ज्वल, वंशी के समान नाक, आँखें दोनों छोटी-छोटी, किन्तु उज्ज्वल, तीक्ष्ण, सिर के केश लम्बे-लम्बे, पोशाक साफ-सुथरी। सिर नीचे किये खड़ा है और एक अस्थिर चंचलता से हिल रहा है। दोनों गालों पर थप्पड़ों के दाग लाल होकर उभर आये हैं। सिर के केश खींचने से अस्त-व्यस्त होकर नाक, आँख और मुँह पर फैल गये हैं। उसके आस-पास के कई लोग विशेष कर भुवनपाल का लड़का क्रोधमें अपने को भूल कर दण्ड दे रहा है।

—बोल, बोल, ऐसा क्यों किया?

थोड़ा तिरछा होकर, लड़ने के लिये तैयार होकर वह सिर नीचा किये जैसे निश्शब्द हिल रहा था, उसी प्रकार हिलने लगा। कोई उत्तर नहीं दिया।

ऐसी ही अवस्था में योगेशपाल को देख भुवनपाल का लड़का कुछ

चंचल हो गया। इसी क्रोध की दशा में सम्मानित अतिथि और कुटुम्बी का स्वागत करना होगा। योगेशपाल का समाज में सचा सम्मान था। अपने को शान्त करने की चेष्टा कर भुवनपाल के लड़के ने हँस कर देखा, और कहा—आइये, आइये। फिर लोगों से कहा—उसे ले जाओ और घर में बन्द कर दो।

जब नाक, मुँह और आँख पर बिखरे हुए केशों को सिर का झटका देकर पीछे फेंकने लगा तो उस लड़के की दृष्टि स्थिर हो गयी। वह योगेश पाल की ओर देख कर पत्थर हो गया। किन्तु एक क्षण के लिये। क्षण भर में अपने को सँभाल कर बोला—चलो, कहाँ चलना पड़ेगा?

योगेशपाल ने कहा—ठहरो, ठहरो, ठहरो। और झट उसके सामने जाकर बोला—मलिन!

—कौन? क्या कहा आपने? कौन मलिन? लड़का लौट कर खड़ा हो गया। नेत्र-मुँह से अपमान के साथ विचित्र विस्मय फूट पड़ा। वह विस्मय रूखा और उद्धत था।

—तुम मलिन नहीं हो? मलिनदास?

—मलिनदास? कौन मलिनदास?

—देवीग्राम की पंकजिनीदासी का पुत्र।

—देवीग्राम? पंकजिनीदासी? नहीं तो। मैं देवीग्राम नहीं जानता। मैं पंकजिनीदासी को नहीं पहचानता।

—तुम्हारी माँ पंकजिनी मर गयी। तुम्हारी बहिन का खून हो गया। अगर तुम मलिन हो तो सुन लो। अगर न हो, तो मत सुनो।

माँ मर गयी! बहिन का खून हो गया! उद्धत उग्र मलिन आकस्मिक आघात से पत्थर हो गया। कई क्षणों तक पत्थर के समान खड़े रहने

के बाद जैसे उसकी चेतना लौटी। धीमे अत्यन्त धीमे, स्वर में उसने दोनों बातें दुहरायीं, माँ मर गयी? बहिन का खून हो गया। मर्मान्तक वेदना से पीड़ित होकर एक प्रकार से उसने स्वीकार कर लिया कि वह मलिन ही है।

यह सम्बाद इतना मर्मान्तक और निष्ठुर था कि सभी लोग अभिभूत हो गये। वे अपने को रोक न सके। भुवनपाल का पुत्र भी एक मिनट तक चुप रहने के बाद एक लम्बी साँस छोड़ कर आगे बढ़ा और कहा—इसे छोड़ दो। जा, तू यहाँ से चला जा। जो कुछ सुना है, उससे और मारने-पीटने की इच्छा नहीं हो रही है। किन्तु यदि नवद्वीप में फिर देख पाया तो सिर मुड़ा कर तेरी कीर्ति लिखवा दूँगा। शैतान कहीं का। नाम तक झूठा है। चला जा, जला जा, चला जा!

—मेरा सूट केस—

—लादो, सूटकेस लादो।

योगेशपाल चुपचाप खड़ा होकर प्रतीक्षा कर रहा था! उसके चले जाने पर वह जिज्ञासा करेगा। अभी प्रश्न करने से क्रोध शायद और बढ़ जाय, जलते हुए अग्नि कुण्ड के समान फूँकने से और भी जल उठेगा।

सूटकेस हाथ में लेकर मलिन चला गया। योगेशपाल को उसके और एक दिन चले जाने की बात याद पड़ गयी। देवीग्राम में एक अर्जुनके वृक्ष से उतर कर ठीक इसी पर सिर हिलाते-हिलाते घास के जंगल में चला गया था। यही मलिन। वह रोया नहीं, एक गली में घुस कर अदृश्य हो गया। उस रास्ते से आगे जाने पर गंगाघाट मिलेगा। वह गंगा किनारे के घास-पात वाले मार्ग से जायगा।

अब योगेशपाल ने पूछा—क्या किया था ?

—इतने आदमियों के सामने नहीं कह सकता। आइये, भीतर चलिये। किन्तु उसे आपने पहचाना कैसे ? क्या नाम बतलाया मलिन ? यहाँ नाम था अतुल घोष। बिना माँ-बाप के कायस्थ का लड़का।

—नहीं। उसका नाम है मलिनदास। जाति—उसकी कोई जाति नहीं है, फिर भी वैष्णव कहने से काम चल जायगा। बर्दवान जिले में देवीग्राम नामक एक बड़ा ग्राम है। यहाँ के अमृतबाबू बहुत धनी व्यक्ति हैं। उनके घर आश्विन की पूर्णिमा को कमल-कामिनी की मूर्ति की पूजा होती है। मैं ही गढ़ता हूँ। आज भी वहीं से आ रहा हूँ। उसकी माँ-बहिन की खबर इसी बार सुन कर आया हूँ। यह लड़का चार वर्षों से लापता है।

भुवनपाल के पुत्र ने कहा—हमारे यहाँ, हाँ, वही होगा, चार वर्ष ही होगा, आया। चार वर्ष पहले फटा-मैला कपड़ा पहने बहुत शान्त तेरह-चौदह वर्ष का लड़का रास्ते से जाते-जाते हमारे मिस्त्री खाने के द्वार पर खड़ा हो गया। उस समय काली प्रतिमा का मौसिम था। जगद्धात्री और काली की प्रतिमाओं में मिट्टी पड़ रही थी। गोपाष्टमी की गायें बन रही थीं, चरवाहे तैयार हो रहे थे, उधर रास की सखियाँ बनायी जा रहीं थीं। सभी अपने-अपने कामों में व्यस्त। वह बालक सारा दिन खड़ा ही रह गया। तीसरे पहर बूढ़े मिस्त्री रतन ने उसे देखा। उसने पूछा—तू कौन है ? सारे दिन खड़ा है। उस समय उसने अपना परिचय देकर कहा—मिस्त्री, मुझे नौकर रखोगे ? मैं जल ढोऊँगा, मिट्टी सानूँगा। मैं थोड़ा-थोड़ा इन कामों को भी जानता हूँ। सुन्दर चेहरेवाले मुँहचोर

लड़के की बात से मिस्त्री को दया आ गयी, और उस मौसिम में आदमी की जरूरत भी थी। मिस्त्री ने हम लोगों से कहा—अनाथ लड़का है—भले घर का लड़का है—और अच्छा लड़का भी लगता है। रहे न! पिता जी ने कहा—रहे। दो-तीन दिन बाद मिस्त्री अपने हाथ में एक मूर्ति लेकर आया और बोला—मालिक, देखिये कैसी है? यह लड़के की बनायी हुई है। पिताजी बोले—देखता हूं, बुरी नहीं है। किसने बनायी है? मिस्त्री ने कहा—उसी नये लड़के अतुल ने। उसको रख लीजिये। अच्छा कारीगर होगा। वह हुआ भी वैसा ही। इसके हाथ की मूर्तियाँ बहुत सुन्दर होती हैं और सिर में अनेक प्रकार के खेल भी हैं। यह देखिये—उनके सामने ही एक छोटी लकड़ी के टुकड़े पर मिट्टी से बनी हुई एक मूर्ति है। कई मूर्तियों को मिला कर एक घटना का चित्र बन गया है। एक ताल का पेड़ है, उसके सिरे के पत्तों पर एक गोखरू साँप फन फैलाये हुए खड़ा है, दूसरी ओर के पत्तों पर दोनों पंखों को खूब फैला कर हिंस्र रूप से चोंच खोले हुए एक चील अपने एक पैर के नाखून बढ़ाये हुए है। बीच में पक्षियों का घोंसला है, जिसमें कई अण्डे हैं। युद्ध के लिये तैयार चील का रूप विचित्र है, उसके पंखे, नख और चोंच में कैसा विक्रम है! आँखों की दृष्टि में कितना क्रोध है! इधर साँप की गर्दन की भंगी और आँखों की दृष्टि वैसी ही सुन्दर है! शरीर टेढ़ा कर फन फैलाये हुए उसके खड़े होने में विचित्र, सुन्दर और क्रूर विक्रम झलक रहा है।

एक और मूर्ति दिखा कर पाल के पुत्र ने कहा—यह भी उसी का है।

एक स्त्री स्नान कर कन्धे पर गमछा डाल कर और काँख में घड़ा लेकर खड़ी है।

योगेशपाल मुग्ध हुए बिना न रह सका। इस लड़के का हाथ अच्छा है, यह तो वह जानता था, किन्तु इतने शीघ्र—इन्हीं चार वर्षों में! उस समय उसकी उम्र क्या होगी?

सत्रह-अट्ठारह? इसी बीच इतना निर्दोष बना सकेगा, यह नहीं सोच पाया था। किन्तु उसने किया क्या था?

पूछने के पहले ही भुवनपाल का पुत्र बोला—इतना बड़ा पाखण्डी, ऐसा—

बात में बाधा पड़ी! वृद्ध भुवनपाल ने घर में प्रवेश कर कहा—योगेश! कब आये?

वृद्ध को प्रणाम कर योगेश बोला—अभी ही। उस लड़के को लेकर जब गोलमाल हो रहा था, उसी समय। उसी के सम्बन्ध में बातचीत हो रही है।

वृद्ध ने कहा—राधामाधव हे! जय महाप्रभु! पाप! योगेश, महापाप आकर घर में घुस गया था। जीवन, तुम यहाँ से जाओ।

जीवन के चले जाने पर वृद्ध बोला—जानते हो इस पाखण्डी ने क्या किया है? योगेशपाल चुपचाप प्रतीक्षा करता रहा।

—अभागे शैतान ने एक मूर्ति अपवित्र कर दी है। योगेशपाल चौंक पड़ा।

वृद्ध ने कण्ठ स्वर मृदु कर कहा—उस मूर्ति को मैंने अपने हाथ से बनाया था। मैं नाम नहीं लूँगा, वह एक सम्भ्रान्त व्यक्ति की मृत कन्या की मूर्ति है। तुम लोगों ने कृष्णनगर के महाराजा की जो मूर्ति बनायी है, उसे देखकर उन्होंने बनाने को कहा था। वह मेरे पुराने ग्राहक का घर

है। वहाँ मैं मूर्ति गढ़ता हूँ। प्रति वर्ष जाता हूँ। कन्या को अनेक बार देखा था। कई वर्ष पहले अकस्मात् उसकी मृत्यु हो गयी। उसका फोटो बढ़ा कर, उसे रंगीन कर भी उनकी तृप्ति न हुई। मुझसे बोले—पाल महाशय, आप गढ़ दीजिये। मैंने गढ़ दिया। वह शीशे के केस में यत्नपूर्वक अपने घर में रखते थे। कई वर्षों तक इस प्रकार रहने से थोड़ी फीकी हो गयी थी, इसीलिये नये अंगराग के लिये उसे भेज दी है। वृद्ध होने से मैं स्वयं वहाँ नहीं जा पाता, किन्तु मेरा हाथ न लगने से उन्हें सन्तोष नहीं। इसलिये यहाँ भेज दिया। मैंने परसों अंगराग समाप्त कर दिया। वह लड़का खड़ा-खड़ा देखता रहा, जिस प्रकार छोटे लड़के लाल रंग देखते हैं। घूम फिर कर दस बार आया और देखा। कल रात में—लड़का पास के घर में सोता था—बीच के दरवाजे की खिल छुरी से खोल कर उसमें घुसा। शब्द सुनते ही मेरी नींद टूट जाती है। मैंने सोचा, चोर है। उठ कर खिड़की के पास खड़ा हो गया। वही खिड़की है। वहाँ से घरमें का सब कुछ दिखाई पड़ता है। क्या कहूँ योगेश! रंग में हवा लगने के लिये शीशे का केस खुला ही था। देखा, लड़का दोनों हाथों से मूर्ति पकड़ कर उसे अपलक दृष्टि से देख रहा है। इसके बाद चूम लिया। मैं चिल्लाने जा रहा था, किन्तु चिल्लाया नहीं। जाकर जीवन को पुकारा। उसको दिखा दिया। चुपचाप कई आदमियों के साथ जब जीवन घर में घुसा—उस समय भी उसका नशा नहीं उतरा। सारी रात बाँध कर रखा गया। इसके बाद—।

योगेशपाल को केवल आश्चर्य ही नहीं, उसके सारे अंग ठण्डे हो गये।

भुवनपाल बोला—जानते हो योगेश! हरामजादे को मूर्ति बनाने में आनन्द आता है। प्रतिमा में हाथ लगाना ही नहीं चाहता। कहता, वे बड़ी हैं, इसके अतिरिक्त मुझे न जाने कैसी लगती हैं!

दो

माँ मर गयी, बहिन मनो का खून हो गया !

अच्छा हुआ। होने दो। सुन्दर हुआ। बहिन के लिये थोड़ा दुःख होता है, किन्तु माँ के लिये—नहीं, नहीं होता है। माँ की याद से उसका शरीर काँप उठता है। मन बिगड़ जाता है। नवद्वीप आने पर इच्छा रहते हुए भी गोस्वामीपाड़ा या मायापुर की ओर कभी नहीं गया। मेले-त्योहारों में प्रायः छिपा रहता था। भय से, उसी माँ के भय से। यदि वह तीर्थ करने आये और हठात् भेंट हो जाय, तो अरे ! मेरे मलिन रे ! सोना रे ! मानिक रे !. कहती हुई दोनों हाथ फैला कर मुझे छाती से चिपटा लेगी।

सोचते ही उसका शरीर सिहर उठा। मन चौंक पड़ा। आश्चर्य—उसने अपने को नहीं सँभाल पाया, चिल्ला उठा—धत्। अथवा दुर। अथवा आह !

भुवनपाल के कारखाने में अपने मन से उसने एक मूर्ति बनायी थी। वह थोड़ा गर्दन झुकाये हुए है, सिर पर केश बँधे हुए हैं, नेत्र की दृष्टि में है थोड़ा अन्तरंग वक्रभाव, मुँह में थोड़ी हँसी, नाक में रसकली। उसको देख कर उस मिस्त्रीखाने के सबके मन में कुछ देर के लिये रसिकता जाग उठी थी। वह स्वयं अपने ऊपर क्रोध कर उठा। मन में आया—माँ, उसकी माँ है। उसके साथ बहिन के यौवन का लावण्य मिला दिया है।

सब कुछ वही ! कारखाने के मिस्त्रियों ने खूब प्रशंसा की। लड़कों के दल ने प्रशंसा के साथ अनेक प्रकार की रसिकतायें कीं—एक लड़के ने एक अश्लील गाना गुनगुनाया। एक ने उस मूर्ति को चूम लिया। उसने स्थिर होकर बैठ कर सब देखा। हठात् उठकर उसने मूर्ति उठा ली और गली-गली जाकर उसे गंगा में धम से फेंक दिया—किन्तु मिस्त्रियों ने, विशेष कर छोटेपाल ने उस मूर्ति की बात मालिक से कही। उसने कहा कि उसका साँचा बना कर मूर्ति बेचने से खूब बिकेगी। छोटे पाल ने उसे फिर बनाने के लिये कहा, किन्तु उसने नहीं बनाया। वह एक ही बात कहता—नहीं, वह मुझे अच्छी नहीं लगती। उसे मैंने पानी में फेंक दी।

अब वास्तव में जल में डूबीं। जाने दो, दोनों ही गयीं। अब वह निश्चित, निष्पाप हो गया। बहिन बुरी नहीं थी। न तो उसके प्रति प्रेम है, और न क्रोध। अपने में ही मग्न थी। सारे सम्बन्ध तोड़ कर अपनी इच्छा से रास्ते पर खड़ी हो गयी थी।

अच्छा किया था ! और जो चली गयी, वह भी अच्छा ही हुआ। उसका सब अतीत धो-पोंछ गया। हठात् अपने ही आप गर्दन हिलाने लगा। नहीं ! नहीं ! नहीं ! वह कहाँ गयी ? नवद्वीप में भुवनपाल के कारखाने में जमा हुई है।

बदमाश बूढ़ा ! हरामजाद उसका लड़का !

मलिन सूटकेस हाथ में लेकर गंगा के किनारे-किनारे जा रहा था। उसके दोनों गालों पर अब भी थप्पड़ के दाग हैं। कान की जड़ जल रही है, जान पड़ता है कि किसी के नख से कट गयी है। उन्होंने उसे निष्ठु-

रता पूर्वक पीड़ा दी है। उसे दुःख हो रहा है, कि उसने भी किसी को एक छुरी क्यों नहीं घुसेड़ दी ?

मिट्टी की एक मूर्ति ही तो थी।

किसी बड़े ग्राहक की कन्या की मूर्ति थी, कन्या नहीं। वह जीवित स्त्री जाति को जानता है, यदि वह बालिका जीवित होती तो उसकी खोज में जाता। कहता, मैं तुझे चाहता हूँ। नहीं तो मेरा भुवन अँधेरा हो जायगा। वह उसे जीत कर ले आता। अगर ऐसा न कर पाता तो हार मान कर प्रणाम कर चला आता। वह हार न मानता। बूढ़े भुवन-पाल की बातें सुन जैसे उसे नशा छा गया था। उस मूर्ति को रँगते समय भुवनपाल ने ही उसकी बातें कही थीं। उसीसे कही थीं। उसको छोड़ रँगते समय उस घर में कोई नहीं था। पाल ने सामान जुटाने का भार उसे ही दिया था। रंग, कूँची, गोंद, तूत जल आदि मलिन ने ही रखा और सुना था। पाल बोला—उस विशाल जमींदार घर को जानता है। वह बहुत विशाल जमींदार घर है। उसमें प्रकाण्ड नाट्य-मन्दिर है। खम्भों पर चूने की गहरी पालिश, सिरों पर चूने की नक्काशी। चण्डीमण्डप के फर्श पर संगमर्मर लगाया हुआ। हम लोग प्रतिमा गढ़ने जाते। जाते अधिकतर रात में ही। नवद्वीप से तीसरे पहर की गाड़ी में जाते। पहुँ-चते रात में ठीक बारह बजे। सबेरे जब काम में लग जाते या लगने जाते, इसी समय तोड़े का झम-झम शब्द होने लगता। पहले भीतर में, इसके बाद चण्डीमण्डप की ओर के दुतल्ले बरामदे में, इसके बाद सीढ़ियों में ; जैसे कल-कल झर-झर शब्द करती हुई पहाड़ से जलकन्या

उतर रही हो, या झम-झम शब्द कर देवकन्या उतरी आ रही हो। एक दम चण्डीमण्डप में आकर रुक जाती।

—कारीगर जी!

भुवनपाल अवाक् होकर देखा करता। अहा हा! वह कैसा रूप! कैसी गर्दन! कैसा रंग, कैसा मुख, कैसे नेत्र, कैसी नाक, कैसे ओंठ, कैसे केश, कैसी हँसी, वर्णन किया नहीं जा सकता। यह मूर्ति—यह मिट्टी की मूर्ति—उसके सामने कुछ नहीं है। कुछ नहीं है! रूप, रस, शब्द, गन्ध से छलकती हुई; हँसती खिलखिला कर, जैसे जलतरंग बजता है। हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती। उसके घने केश मुँह पर बिखर जाते। फिर भिक्षुक आते, दुखी आते, उन्हें देख कर मुँह कैसा हो जाता! नेत्र भर आते! उस समय वह बालिका थी यही दस-ग्यारह वर्षों की। वह सन्ध्या समय आकर भुवनपाल के पास बैठ जाती, फिर छायाबाजी दिखाने को कहती। लालटेन के प्रकाश में उँगली मोड़ कर मुद्रा बना कर दीवार पर छाया डालता भुवनपाल। अँगूठा नीचे और बाकी उँगलियों को ऊपर मिला कर रखने से दीवार की छाया पर मगर बन जाता। अँगूठा हिलाने से लगता जैसे मगर मुँह चलाता है। अँगूठे और छोटी उँगली को ऊँचा कर बाकी तीन उँगलियों को थोड़ा तिरछा कर सामने मिलाने से छाया में हरिण बन जाता। इसी प्रकार अनेक तमाशे होते। दोनों हाथों की छाया दो ओर डाल कर कसरत करने से लड़ाई दिखाता। वह कितनी प्रसन्न होती! कितना हँसती! कहती मुझे सिखा दीजिये। हाथ फैला देती। भुवनपाल सिखाता। वह जैसे मक्खन से गढ़े हुए हैं। हाथ कितने नर्म हैं!

वही बालिका बड़ी हो गयी। उसकी पन्द्रह-सोलह की उम्र हो

गयी। उस समय वह दौड़ कर न आती। बरामदे में निकल कर रेलिंग के सहारे खड़ी हो जाती। वह फरासडांगा की काले पाढ़ की साड़ी पहने रहती। रंगीन कपड़े न पहनती। वह बनारसी साड़ी पहना करती। काले पाढ़ की साड़ी में ऐसा जान पड़ती, जैसे लक्ष्मी जी। थोड़ा झुक कर पुकार कर कहती—कल रात में आये हैं? अच्छे रहे न? घर पर सब अच्छे हैं? जान पड़ता बेहला का स्वर बज रहा है।

जब चक्षुदान करता तो उतर कर पास खड़ी हो जाती। उस समय पैरों में पायजेब न रहते। शब्द न होता, किन्तु काम करते-करते ही मैं समझ लेता। सुवासित तेलों की मधुर गन्ध पाता। आँख न घुमा कर पूछता—आ गयी?

—हाँ।

वह उस समय अधिक नहीं बोलती थी। बड़ी हो गयी थी। उसे लज्जा लगती थी।

एक वर्ष मुझे ज्वर आ गया था। प्रथम ज्वर, सिर पीड़ा से छटपटा रहा था। ज्ञान अधिक नहीं था। हठात् जान पड़ा कि सिर पर कुछ ठण्डा सा लग रहा है। आँखें खोल कर देखा, वही है। मेरे सिर पर एडिकोलन की पट्टी दे रही है। मैंने आराम से कहा—आह!

मेरे सिर पर हाथ रखकर बोली—क्या अधिक कष्ट हो रहा है? अरे! वैसी बालिका मैंने कहीं नहीं देखी।

सुनते-सुनते मलिन रंग का पात्र आगे बढ़ाना भूल जा रहा था। छाती में जैसे उथल-पुथल मच रही थी। काल वैसाखी की तूफान के पहले पश्चिम आकाश में बादल जैसे फूलता, फफाता, उथल-पुथल करता है, उसी

प्रकार की उथल-पुथल उसके मनमें हो रही थी। स्थिर विचित्र दृष्टि से उसने उस मूर्ति की ओर देखा। वह मिट्टी की मूर्ति उसके लिये जैसे क्षण-क्षण पर जीवित हो रही थी। उसमें जैसे फूट उठे थे, कितने ही परिचित परम कामनाओं के व्यक्ति। उनको देख कर भी उसकी छाती में ऐसी ही उथल-पुथल हुई थी। वह प्राणपण से अपने को शान्त किये रहता। मुँह खोलकर कुछ कह न पाता। इस मूर्ति में भुवनपाल की इस राजकन्या जलकन्या के साथ वे मिल गये हैं। वह जैसे उनके लिये जन्म-जन्मान्तर से तपस्या करता आ रहा है। किन्तु पाता नहीं है।

उसके अपने गाँव के उस देवीपुर के अमृतबाबू के घर की कितनी किशोरियाँ उस मूर्ति में से जैसे झाँक रही थीं। वे भी वैसी ही थीं। ठीक वैसी ही। वर्ष में एक दिन अरण्य षष्टी के दिन वे षष्टीतल्ले में आतीं। षष्टीतला उनके घर के पास ही है। उस दिन वह रास्ते के किनारे खड़ा रहता। उनके केशों का मधुर गन्ध पाता।

काम समाप्त हो जाने पर भी वह वहीं कुछ देर खड़ा रहा। वह खड़े-खड़े देख रहा था। कितनी देर तक इसका कुछ हिसाब नहीं। बहुत देर तक, बहुत देर तक। मन के भीतर वही उथल-पुथल चल रही थी। मूर्ति मिट्टी की है, यह बात वह भुवनपाल के समान ही जानता था। गोबर-मिली हुई मिट्टी की सड़ी गन्ध उसकी नाक में गयी थी। किन्तु आश्चर्य! वह गन्ध न जाने कैसे सुगन्ध बन गयी थी। जान पड़ता था, केशों के तेल का सुगन्ध। दोनों कान गर्म हो गये थे—जान पड़ता था कि उसे ज्वर हो गया है।

बूढ़े भुवनपाल ने ही हँस कर कहा—दूर से ठीक जीवित जान पड़ती है न?

गर्दन हिलाकर जनाया था—हाँ।

—अब जा। दरवाजा बन्द कर दूँ। तेरा हाथ मुझसे भी अच्छा होगा।

एक रुपया उसे देकर भुवनपाल ने कहा—तुमने रंग ऐसा मिलाया है जैसा बूढ़े रतन को छोड़ कोई नहीं मिला सकता। ले, मिठाई खा।

किन्तु उसने मिठाई नहीं खायी।

उसने पी थी, शराब। शराब पीना उसने इससे पहले सीख लिया था। किन्तु इतनी उमंग के साथ कभी नहीं पी थी। सन्ध्या से ही गंगा के किनारे बैठा था। उसने बैठे-बैठे और कुछ नहीं सोचा, सोचा केवल इसी मूर्ति के विषय में। उसने भुवनपाल की बातों से मिला कर मूर्ति को जीवित होकर आँखों के सामने घूमते देखा।

अकस्मात् उसे एक अद्भुत बात याद पड़ गयी थी। अनेक साधु हैं, जो जीवित कर सकते हैं—सोच कर साथ-ही-साथ खड़ा हो गया। पोड़ा-मा ठाकुरतल्ले में कभी-कभी एक पागल आता है, लोग कहते हैं कि वह सिद्ध पुरुष है।

पोड़ा-मा ठाकुरतल्ले में वह पागल नहीं था। वह पागल होकर लौट आया था। शराब पी थी, इसलिये जल्द नहीं लौटा, देर से फिरा। सब के सो जाने पर फाटक लाँघ कर लौटने का कौशल सिखाना नहीं पड़ता, वह आपही आप आ जाता है। लाँघने की शक्ति रहने से आ जाता है। बूढ़ों और बच्चों को नहीं आता। नहीं, डरपोंक को भी नहीं आता। बचपन

में उसने बहुत से फाटक, बहुत से घेरे लाँघे थे। बूढ़े होने पर भी—नहीं, वह कभी बूढ़ा नहीं होगा। उसने बहुत पहले ही उस फाटक को लाँघ कर घुसना सीखा है। रात हो जाने पर जब लौटता है, उस दिन रेलिंग पकड़ कर ऊपर उठ जाता है। इसमें क्या बाधा है! यात्रा देख कर लौटा है, शान्तिपुर की रास देखकर लौटा है। कृष्णनगर उसी योगेशपाल से भेंट होने के भय से नहीं जाता।

उस दिन उस फाटक के लाँघते समय उसके मनमें एक उग्र वासना जग उठी थी।

पहले इच्छा हुई थी—मूर्ति लेकर भाग जाय। ऐसी मूर्ति वह नहीं बना सकता, बात ऐसी नहीं है। वह बना सकता है। किन्तु वह होगी, केवल मूर्ति, एक मिट्टी की मूर्ति। भुवनपाल की बनायी हुई यह मूर्ति जैसे मूर्ति नहीं है, मिट्टी नहीं है। यह जैसे वही है, जिसकी बात भुवनपाल ने सुनायी थी। हाँ, वही। इसमें हैं जैसे उसके गाँव के बाबुओं के घर की सभी किशोरियाँ। उनके केशों की सुगन्ध भी उसने उस मूर्ति में पायी है। यह उसी राजा की लड़की है। बड़े लोगों की लड़कियाँ सभी एक साथ हैं। उसकी छाती का रक्त जैसे फूटा पड़ता था। अपने घर में जाकर कितनी देर तक याद नहीं—वह सारे घर में घूमता रहा। वह घूमता और घूम-घूम कर टहलता। वह अपने को किसी प्रकार रोक न सका। उसी पास के घर में उसकी समस्त कामनाओं का धन है; बीच में यही बन्द द्वार है। वह उसे पुकार रही है, खींच रही है। उसके दरवाजे की खिल छुरी से खोल कर पहले प्रकाश जला दिया।

नहीं तो, देखेगा किस प्रकार? न देखने से वह केशों की गन्ध कैसे

पायेगा ? आती थी तो रंग की गन्ध, वार्निश की गन्ध, किन्तु मलिन की आँखों के जादू से वह केश तेल की गन्ध बन गयी थी। न देखने से वह बात ही कैसे करेगा ?

देखते-देखते बड़ी सावधानी के साथ मुँह के दोनों ओठों पर अपने ओठ रख दिये। यदि जी जाय तो छाती से लगा ले।

वह जागी नहीं। फिर भी खुश है ! उसने राजकन्या पायी है। अकस्मात् मनुष्य की आहट हुई। किसी ने उसकी गर्दन पकड़ ली।

—कौन ?

—भुवनपाल का पुत्र—उसके साथ उसके कई साथी हैं।

गंगा के किनारे चलते-चलते उसको याद आया—

मूर्ति को तोड़ सकने पर उसे खुशी होती।

वह ऐसा ही करेगा। वह जूठी मूर्ति वे जरूर जल में बहा देंगे—

भुवनपाल फिर बनायेगा।

शायद जूठी ही रखे।

अपने ही मन हा-हा कर हँस उठा।

चलो मुसाफिर, उसके पास गठरी नहीं है। केवल सूटकेस है। कूँची है, बखारी है, लकड़ी की छुरियाँ हैं, मूर्ति साफ करने का यंत्र है, साँचा खोदने का यंत्र है, कई जामे-कपड़े हैं। एक जामा, दो कपड़े। उसीसे काम चल जायगा।

अकस्मात् रुक कर खड़ा हो गया। अभागिनी मुँहजली माँ मर गयी, बहिन का खून हो गया। स्नान कर लूँ क्या ? सिर भी झाँय-झाँय कर

रहा है। भुवनपाल के पुत्र ने मर्मान्तिक अपमान किया है। निष्ठुरता के साथ मारा है!

सिर भी ठण्डा हो जायगा।

एक घाट पर आकर उसने सूटकेस खोल एक कपड़ा निकाला। एक गमछा नहीं है; उसने एक और कपड़ा सूखाने के लिये डाला था। इसलिये वहीं रह गया। दो कपड़े धोबी के घर हैं, एक धोती, एक जामा, रहने दो। उसे कुछ अफसोस नहीं है। उस मूर्ति का मुँह पकड़ कर वह—इतने में ही खुश। नहीं, खुशी कैसी? उसकी छाती में अब भी उथल-पुथल हो रही है। यदि क्षण भर के लिये मिट्टी की मूर्ति जी उठती, तो उसकी प्यास बुझ जाती। इससे तो प्यास बढ़ गयी। वह वैसी ही मिट्टी की मूर्ति गढ़ेगा। किन्तु क्या वह जगेगी?

सोचते-सोचते वह गंगा जल में घुस पड़ा। उसने सुना है कि लोग गंगा जल में तर्पण करते हैं। मरे हुए मनुष्य को जल? जब उसने स्नान कर लिया, तो दे दे। ले, जल ले माँ! ले जल ले बहिन। शायद इस समय रोया जाता है। किन्तु उसे रोना नहीं आता। वह रो नहीं सकता। किसी का रोना देख नहीं सकता।

तृतीय पर्व

एक

पाँच वर्ष के बाद।

पाँच वर्ष बाद मलिन ने ठीक ये ही बातें कही थीं। उस दिन गंगा की चरभूमि के ऊपर से जाते-जाते मन ही मन कहा था, और वे ही बातें उसने एक युवती से कही थीं। उस युवती का नाम टिया है। वह रो रही थी। मलिन ने उससे कहा—

'रोना! रोना मुझे नहीं अच्छा लगता, तू रो मत टिया। मुझे रोना सहन नहीं होता। मैं स्वयं नहीं रोता। मैं रो नहीं सकता। मेरी माँ मर गयी, मैं नहीं रोया। किसी का रोना मुझे अच्छा नहीं लगता। रो मत। रोना है तो घर में जाकर रो।

टिया थी एक अपूर्व सुन्दरी युवती, अत्यन्त रूपवती। उसके रूप की जाति ही भिन्न है। संसार में रूप की भी जातियाँ हैं। किसी रूप में तेज रहता है, किसी रूप में नेत्र शीतलकारक माया रहती है। किसी रूप में तालाब के काले जल की पुकार के समान पुकार रहती है, किसी रूप को देख कर मन विषैला हो जाता है-जान पड़ता है कि उसमें विष रहता है, किसी का रूप देख कर घृणा होती है। युवती टिया का रूप देख कर नशा लगती है—टिया के रूप में नशा है।

मलिन के जीवन में नशा का चक्कर लग गया है।

चन्दननगर में लक्ष्मीगंज बाजार के पूर्व, जहाँ गंगा के किनारे की सड़क दक्षिण की ओर स्ट्राण्ड की तरफ और उत्तर में बस्ती में चली गयी है, वहीं मलिन ने मूर्ति की दुकान खोली है। पाँच वर्ष में मलिन पूर्ण युवक हो गया है। उसके अंग-प्रत्यंग से यौवन फूट रहा है। लम्बा गोरा सबल शरीर, चमकीले नेत्रोंवाला उज्ज्वल मुँह, अब पुराना मलिन कह कर पहचाना ही नहीं जाता, और भी कितने परिवर्तन हुए हैं। मुँह से, भावों से, देवीग्राम की समस्त स्मृतियों की छाप जैसे पूर्ण रूप से मिट गयी है। विल्वग्राम की धूल के चिह्न, पंकजिनी के हाथों की छाप—आज तनिक भी नहीं है। नेत्र-मुँह पर आज वह अस्थिरता का भाव नहीं है। दोनों उज्ज्वल तेज नेत्रों में और कुछ जैसे फूट निकला है। एक निष्ठुरता अथवा शान की हुई धातु की चमक जैसी कोई वस्तु। उसने बहुत परिश्रम किया है, उसने बहुत लड़ाइयाँ की हैं, उसने मार खायी है, मारा है। उसका साक्षी है उसका यह शरीर।

उसका शरीर यौवन धर्म के नियम के अनुसार केवल भर ही नहीं गया है, वरन् काफी बलवान और कठोर हो गया है। उसके शरीर में शक्ति भी है। देखने से ही जाना जाता है कि उसने कसरत करके उसे तैयार किया है। उसका शरीर पहले से ही अच्छा है और उससे काम भी खूब लिया है। उसने बचपन से ही परिश्रम शुरू किया था। वह रास्ते में चलता, पेड़ों पर चढ़ता, जल में तैरता, इसके बाद नवद्वीप भाग आया। भुवनपाल के कारखाने में भर्ती होने पर उसे पहले-पहल मिट्टी तोड़ने और तैयार करने का काम मिला। उसकी मूर्ति बनाने में निपुणता का परि-

चय पाकर भी छोटे पाल ने बहुत दिनों तक उस काम से छुट्टी नहीं दी। कृष्णनगर में मूर्तियों का काम अधिक होता है और नवद्वीप में मूर्तियों से प्रतिमाओं का काम अधिक। एक वर्ष बाद उसे उस काम से छुटकारा मिला। उस समय तक उसके शरीर में गुल बँधना शुरू हो गया था और उससे उसको नशा-सा लगा था। कारखाने में भी मलिन सबसे छोटा था। उससे दो वर्ष, चार वर्ष बड़े जो थे, वे दुनिया के बँधे हुए नियम के अनुसार उस पर हुक्म चलाना चाहते थे। पहले-पहले मुँहचोर मलिन उनका हुक्म बजा लाता। जब मूर्तियों के बनाने में उसका आदर होने लगा तो उसने 'नहीं कर सकूँगा' कहना शुरू कर दिया। मुँहचोर बालक 'नहीं कर सकूँगा' कह कर अपना काम करता, और गर्दन हिलाता। इसके बाद उसके मुँह से और बातें निकलने लगीं। इसके बाद उसने शुरू की हाथ खींचा-खींची, उसके बाद हाथापाई। यह उसे 'कुत्ता' कहने के लिये पहले-पहल शुरू हुई थी। गोपेश्वर नाम का एक मोटे सिरवाला बालक था। उसका सिर देखने से आकार में मोटा और भीतर प्रकार में, बुद्धि में स्थूल था। सब उसे मोटे सिर वाला कहते थे। उसने कहा—बड़े मिस्त्री ने कहा है कि हुक्के का जल पलट दे और तम्बाकू भर। सुनता है अतुल। मलिन उस समय वहाँ अतुल था।

मलिन बोला—तू ही पलट। मैं नहीं कर सकूँगा।

—नहीं कर सकेगा?

—नहीं। मैं कायस्थ हूं, वे पाल हैं। उनके हुक्के का जल मैं क्यों पलटूँगा? तू तो उसी हुक्के से तम्बाकू पियेगा। तू ही भर ले।

गोपेश्वर ने कहा—इसी को थप्पड़ मारना कहते हैं। मुसहर का कुत्ता

पत्तल में भोजन। कायस्थ बना है! भिखारी का लड़का—न जाति का ठिकाना न पाँति का। बेटा, कायस्थ है!

—खबरदार! मुझे कुत्ता न कहना।

मलिन नम्रतापूर्वक ही प्रतिवाद कर रहा था। उसकी आवाज धीमी होने पर भी कठोर थी। इसके बाद ही मार-पीट शुरू हुई। मलिन कुत्ता कहने से मना कर ही शान्त नहीं हुआ, वरन् उसने गोपेश्वर को सुअर कह कर बात खतम की। उसने कहा—जब मैं कुत्ता हूँ तो तू सुअर है।

गोपेश्वर ने अभ्यास के अनुसार उसकी गर्दन पकड़ कर पूछा—क्या कहा?

अभ्यास के अनुसार कहने का अर्थ यह है कि अब तक मलिन की अवाध्यता के कारण वे सब आकर उसकी गर्दन पकड़ लेते। मलिन प्राणपण से चेष्टा कर अपनी गर्दन सीधी रखना चाहता था। न रोता, न चिल्लाता, न बाधा देता। दूसरे आकर आक्रमणकारी को ही छुड़ा देते। छुटकारा पाकर मलिन अपनी गर्दन भी न सहलाता, कोई दोष भी न देता। काम में रहने पर चुपचाप काम करता जाता, बैठे रहने पर बैठा ही रहता। किन्तु जो काम न करना चाहता, उसे किसी प्रकार भी न करता।

उस दिन पहली बार गोपेश्वर का हाथ पकड़ कर बोला—छोड़ दे।

गोपेश्वर ने उसकी गर्दन जोर से पकड़ी थी। मलिन ने सहसा एक झटका देकर अपनी गर्दन छुड़ा ली और गोपेश्वर को एक चपत जमा दी। इसके बाद द्वन्द्वयुद्ध आरम्भ हो गया। उसमें मलिन की ही हार हुई, किन्तु उसने गोपेश्वर को भी नहीं छोड़ा। इसके बाद से सदा ही युद्ध

होने लगा। कसरत-कुश्ती नहीं, वरन् असली द्वन्द्वयुद्ध की शक्ति का प्रयोग। इसी प्रकार मार खाने और मारने से उसका शरीर सुगठित हो गया और मुँहचोर स्वभाव भी दूर हो गया।

नवद्वीप से भाग कर वह इन कई वर्षों में तीन-चार स्थानों में घूमा है। इन वर्षों में उसने मजदूर की तरह परिश्रम किया है। इस विषय में बहुत-सी बातें हैं।

दो

पहले तो घर जाने की इच्छा हुई थी। एक बार देवीपुर जायगा। वह सुनेगा कि कैसे बहिन का खून हुआ और किसने खून किया। वह सुनेगा कि माँ ने किस प्रकार रोया था। माँ और बहिन उसके जीवन में दो आफतें हैं। फिर भी उनके लिये उसके हृदय ने उस समय फन सिमटे हुए साँप की तरह मुड़-मुड़ कर चक्कर खाया था। उसने देवीपुर जाने के लिये ही कटवा जंकशन का टिकट लिया था। किन्तु ट्रेन से उतर कर गाड़ी बदलते समय हठात् न जाने क्यों उसकी इच्छा बदल गयी। देवीपुर। देवीपुर की हवा में, धरती में, लोगों के नेत्रों की दृष्टियों में, बातों में जैसे उसके लिये उस अर्जुन वृक्ष के असंख्यों कीड़ों के समान दंशन प्रतीत होता है। वह अशान्ति में ही कटवा बाजार में चला गया। अभी ट्रेन में तीन घंटे की देर थी। वह पूजा के ठीक बाद कार्तिक मास का समय था। कटवा बाजार के मिस्त्रीपाड़े के घर आँगनों में कतार की कतार छोटे-बड़े कार्तिक के ढाँचे तैयार हो रहे थे। आगामी कार्तिकी पूर्णिमा को कार्तिक-

पूजा है। कातिक पूजा के समय कटवा में खूब समारोह होता है। शायद कातिक की लड़ाई होती है। यहाँ पर हर व्यवसायियों के मुहल्ले में कातिक पूजा का शोर-गुल मच जाता है। हर प्रकार के कातिक की प्रतिमायें बनायी जाती हैं। पुस्तक-स्लेट बगल में लेकर पढ़नेवाले कातिक, पतंग-डोरी हाथ में लिये हुए कातिक, साइकिल चढ़ने वाले कातिक, इसी प्रकार अनेक प्रकार के। मलिन जैसे बच गया। वाह ! यहाँ पर ही बहुत काम है ! वह माँ और बहिन की बातें भूल गया। उसका देवीग्राम जाना नहीं हुआ। उसने कटवा में ही पड़ाव डाल दिया। कुछ रुपये उसके पास थे। उसने चार वर्ष में प्रायः अस्सी रुपये संचय किये थे। वह रुपये सदा साथ ही रखता। वह एक लम्बी थैली में भर कर उन्हें कमर में बाँधे रहता। उन्हींको लेकर उसने अपना स्वाधीन जीवन शुरू कर दिया।

वह बच गया। मार और गालियाँ खाकर, उसका दबा हुआ मन एक क्षण के लिये शरीर झाड़ कर खड़ा हो गया। शरीर की वेदनायें और मन के सब दुःख जैसे किसी मंत्र के बल से दूर हो गये। माँ-बहिन की मृत्युके सम्बाद का शोक जैसे उस कटवा के गंगाजल में धो-सा गया। देवी-पुर के मनुष्यों की वह विषाक्त हँसी मिश्रित दृष्टियाँ उसके सारे अंगों को विषमय कर देंगी।

और यह ! यही तो वह जीवन भर चाहता था। वह ऐसा ही चाहता है। यहाँ इस गंगा के घाट पर बारहो मास मूर्तियाँ बिकती हैं। वह यहीं मूर्तियाँ गढ़ेगा और बेचेगा। यहाँ न तो बहिन की बात है और न माँ का नाम। देवीपुरवालों की चितवनों का टेढ़ापन नहीं, बातों में काँटे नहीं। वह यहीं मन के आनन्द से रहेगा और एक काम करेगा। नव-द्वीप के उस पाल की तरह एक कारखाना तैयार करेगा।

उसने साथ ही साथ एक घर भाड़े पर ले लिया। भाड़ा तीन रुपये महीना। तीन महीनों का भाड़ा एक साथ दे दिया। मकान मालिक आगा-पीछा कर रहा था। सामने ही कार्तिक पूजा, इसके बाद ही एक गंगा-स्नान का योग, पौष संक्रान्ति पर मकरस्नान, अब दस-दस, बीस-बीस दिनों के बाद यात्रियों की भीड़ लगी ही रहेगी। घर था अवश्य टूटा-फूटा, सिर झुकाये ही रहना पड़ता, और एकदम गंगा किनारे के वन-जंगल के पास कुछ ही दूर पर श्मशान, बहुत कठिनाई न पड़ने पर यात्री इतनी दूर नहीं आते, किन्तु भीड़ के समय शीतकाल में उसी की कदर बढ़ जाती है। इसीलिये मकान मालिक देने में आगा-पीछा कर रहा था। कौन जाने एक ही महीने में भाग जाय! मलिन ने एक दम एक दस रुपये का नोट निकाल कर उसके हाथ में देते हुए कहा—यह लो। ये रुपये तुम्हारे पास जमा रहेंगे। मैं भाड़ा महीने-महीने देता रहूँगा।

घर भाड़े पर लेते ही उसने काम शुरू कर दिया। घर, द्वार, आँगन साफ करते ही उसने बाजार जाकर एक शावल, एक छोटी कुदाल और एक बोरा खरीद कर गंगा के टूटे किनारे पर जाकर मिट्टी खोदने लगा। हँड़िया रहने दो, घड़ा रहने दो, चावल-दाल, नमक-तेल रहने दो, सबसे पहले मिट्टी लगेगी। सामने ही कार्तिक पूजा का बाजार है। आज रात से ही वह काम आरम्भ करेगा। कार्तिक देवता नहीं, कार्तिक की मूर्ति। बड़ी नहीं, छोटी-छोटी। हर प्रकार की। कुछ और मूर्तियाँ बनायेगा। वैष्णवी मूर्तियाँ और परियों की मूर्तियाँ।

हठात् जैसे उसका पैर किसी चीज पर पड़ गया। क्या है? एक मरा मेढक। किन्तु आश्चर्य है, उसने तुरन्त ही उसे उठा लिया। अच्छा है,

बहुत दिन पहले का मरा हुआ मेढक। इससे पेट के भीतर की अतड़ियाँ निकल कर सूख कर काठ सी हो गयी हैं। इसका आकार बड़ा है। जान पड़ता है कि कौए ने चोंच मार कर उसका पेट चीर डाला था और भीतर का खाने के बाद यह उसके पंजे से छूट कर गिर पड़ा था। अथवा किसी साँप ने पकड़ लिया था! जो हो, जिस कारण से भी हो, किन्तु है बहुत अच्छा! हठात् उसके सिर में यह विचार पैदा हो गया! उसने मेढक लाकर उसी रात उसके ऊपर और नीचे के दो स्वतन्त्र ढाँचे बना कर पका लिये।

दो दिन बाद ही अपने घर के पीछे के जंगल में मकड़ी के जाले में एक मरी हुई तितली मिली। उसका जैसा विचित्र रंग था, वैसा ही बड़ा आकार। गहरे काले रंग के पंखों पर एक गोली लाल टोपी थी। जैसे अमावस्या के आकाश का चाँद। उसने जाले से छुड़ा कर उसका भी एक साँचा बनाया। यह काम मेढक के ढाँचे के समान सरल नहीं था। इसकी कारीगरी विचित्र थी। बलिहारी है कारीगर की! हड्डी नहीं, माँस नहीं, केवल जैसे रस जमा कर रस और रंग का उसने एक खिलौना बना दिया है! सलिन ने तितली सामने रख कर पहले एक मिट्टी की तितली बना ली, उसको पका कर फिर उस पर मिट्टी लगायी, और इस प्रकार उसका साँचा तैयार कर लिया था। उसने कातिक संक्रान्ति तक कतार की कतार तितली और मेढक बनाये और उन्हें रंग कर अपनी दुकान भर दी। उसके साथ थी वैष्णवी मूर्तियाँ और परियों की मूर्तियाँ। कातिक की कुछ प्रतिमायें भी बनायी थीं। कातिक पूजा के एक दिन आगे एक टोकरी सिर पर और एक काँख में लेकर गंगा किनारे बैठ गया। मिस्त्रियों के घरों

में कार्तिक का बाजार लग गया था। इस बाजार में व्यवसायिनों की भीड़ है। उन सबके घर-घर कार्तिक पूजा है। वे घूमती-फिरती हैं।

उनकी ओर मलिन नहीं ताकता था। उनके प्रति उसका चाव नहीं था। वह उन्हें जानता है, और उनके आने पर बहिन के सम्पर्क का स्पर्श जान पड़ता है, जिसको उसने गंगाजल में धो डाला है, वह फिर जाग जायगा, अथवा नवीन होकर उसके शरीर में लग जायगा। वह रास्ता देख रहा था—लाल पाढ़ वाली, काले पाढ़ वाली, नीलाम्बरी, डोरियाँ साड़ी पहने केश फैलाये हुए, हाथ से माँजे हुए चमकदार लोटे, मीठे मुँह वाली—शान्त दृष्टि वाली स्नानार्थिनी महिलाओं का। माँ-काकी, दादी, फूफी के साथ गंगाघाट उतरते समय जो रुक कर खड़ी हो जाँयगी, माँ-काकी का आँचल पकड़ कर खींचेगी और उँगली से दिखायेंगी—देखो, देखो, मुझे खरीद दो! उन्हीं का रास्ता देख रहा था।

उनके साथ भुवनपाल की उस कन्या की समानता है। उसकी कन्या-मूर्ति की। जिनके साथ समानता है, उसके गाँव के बाबुओं की कन्याओं की। उन्हीं का रास्ता देख रहा था।

किन्तु बहिन सर्वनाशिनी, माँ सर्वनाशिनी मर कर भी नहीं मरीं। अकस्मात् उसके सामने खड़ी हो गयी, उन सर्वनाशिनियों से सम्पर्क रखने वाली एक और सर्वनाशिनी।

यह उसकी बहिन मनो की एक पड़ोसिनी है। उस छोटे शहर में उसकी बहिन मनो जिस मकान में रहती थी, यह भी उसीमें रहती थी। यह एक काली कुत्सित युवती थी, रूप नहीं है, किन्तु यौवन है। इसलिये उसके अहंकार की भी सीमा नहीं। इसी अहंकारवश वह छोटा शहर छोड़ कर

कटवा चली आई है। कटवा में रहने का निश्चय करते समय मलिन को उसकी बात याद नहीं पड़ी। ध्यान नहीं आया, बहुत दिन पुरानी बात थी। उसको देख कर मलिन का शरीर और मन विषाक्त हो गया। वह युवती हँसते-हँसते प्रायः लोट-पोट हो गयी। वह अपनी अन्य संगिनियों के साथ बाजार में प्रतिमा खरीदने आयी थी। उसने मलिन को देखते ही पहचान कर कहा—अरे! अरे! तुम कौन हो? ओ नवीन कारीगर! तुम तो मनो के भाई मलिन हो न?

मलिन ने पहले तो बात का उत्तर नहीं दिया। जैसे सुना ही नहीं। अर्थात् वह मलिन नहीं है, तो सुनने क्यों जायगा?

किन्तु उसने नहीं छोड़ा। उसने एक ढेले से मार कर कहा—अरे! बहरा है क्या? ओ नागर?

—क्या? चौंक कर चिढ़ते हुए मलिन ने देखा।

—क्या पहचानते नहीं हो?

पहले तो दो-एक बार न पहचानने का बहाना कर मलिन ने जान लिया कि यह कुरूपा युवती उससे पहचनवाये बिना नहीं मानेगी, और एक दिन कटवा भर के लोगों को पहचनवा देगी। विवश होकर उसने पहचाना। उस युवती के नेत्रों से कुत्सित लालसा फूट निकली, उसने मुँह से भी कहा—तू कितना सुन्दर हो गया है रे!

उसी युवती ने एक कुली बुलाकर सभी मूर्तियाँ खरीदकर एक टोकरी में रख ली। वह उन्हें अपने मुहल्ले में बाँटेगी, और कार्तिक पूजा के दिन मलिन को निमन्त्रण भी दिया।

—जाना पड़ेगा तुम्हें!

उसी रात मलिन कटवा छोड़ कर भाग गया।

तीन

वह कटवा से बर्दवान आया। बर्दवान के गुलाबबाग ने उसका मन हर लिया। महाराजा के अतिथिभवन के सामने सफेद मेघ के समान संगमर्मर की बनी हुई कैसी नारीमूर्ति है! उसको देख कर एक दूसरी मूर्ति की बात याद पड़ जाती थी। वह मूर्ति तुच्छ हो गयी थी। इसके आगे वह? गर्मी में वह रोज गुलाबबाग जाता। इस समय राजबाड़ी के सभी लोग पहाड़ चले जाते। दार्जिलिंग ठण्डे देश में। इस समय गुलाबबाग में टहलने में कुछ बाधा न पड़ती। पेड़-पेड़ की नर्म हरियाली की बहार में आँखों में एक नशा छा जाता। कड़ी धूप में भी गुलाबबाग के घने पंक्तिबद्ध वृक्षों के नीचे-नीचे एक अबाध छाया का राज्य फैला रहता। हवा उपद्रवी बालकों के समान सूखी पत्तियों से खेला करती। उधर गुलाबबाग के चिड़ियाखाने में पिंजड़े में एक कोने बैठे-बैठे बाघ झूमते, हाँफते। भालू चूसते, बन्दर दौड़ते। पक्षी आँख बन्द कर एक पैर उठाये डालियों पर बैठे रहते। मलिन उसी ठीक दुपहरी में जाता। छायादार सड़क पार कर वह अतिथि-भवन के सामने पहुँच जाता। खुली जगह में धूप गर्म पिघली हुई चाँदी के समान फैलकर सबको चकाचौंध कर देती। विशाल खुली जगह में अनेक आकार-प्रकार की क्यारियों में गुलाब के पौधे, जुही-कामिनी की कटी हुई झाड़ियों की पत्तियाँ और टहनियाँ एक दम लटक जातीं। उसीके बीच पक्के स्थानों पर ऊँची बेदी के ऊपर श्वेत रंगबालियाँ

खड़ी रहतीं। कैसा विचित्र ढंग! कितनी मनोहर भंगी! दूध के समान श्वेत वर्ण की कैसी सुन्दर शोभा! कितने दिन वह उनके पैर छूकर खड़ा रहता; वह भी अचल-सा हो जाता। इससे अधिक और साहस न होता।

सन्ध्या समय वह महाजनटोली की ओर जाता। महाजनटोली में सुन्दरता की हाट है। रंग, काजल और रंगीन कपड़ों में सजी हुई सुन्दरियाँ खड़ी रहती हैं। उसके शरीर के रक्त में उबाल आता; और हृदय में उत्कण्ठा भरी हुई एक विचित्र खींचा-तानी चलती। हाथ-पैरों में पसीना आ जाता। किन्तु—किन्तु निकट जाते ही जैसे गोलमाल हो जाता। वह उन सबके मुँहों पर अपनी बहिन की छाप देखता। किसी के नेत्रों से किसी के सिर से, किसी के होंठ से, और किसी की हँसी से मनो की याद आ जाती। बर्दवान बाजार में उस समय टुनी और बावली नामक दो युवतियों का नाम फैला हुआ था। उसने उन्हें देखा है। बावली के मोटे-सोटे गठन का मेल उसकी बहिन से खाता था। किन्तु टुनी थी पतली-दुबली। चमकदार सावला रंग, उसकी बहिन से किसी बात में मेल नहीं था, फिर भी बहिन जैसी लगती थी। वह भाग आता। उस समय वह कमर में एक छुरी रखता था। उसके शरीर की शक्ति उस समय बढ़ रही थी। उसमें साहस तो सब दिनों से ही है। जिन्होंने उसकी बहिन का खून किया है, वे महाजनटोली में अवश्य आते होंगे। यदि उनसे भेंट हो जाय, इसीलिये छुरी रखता था। किन्तु दीदी मर कर भी महाजन टोली में लौट आयेगी—यह उसने नहीं सोचा था।

इस ओर से बर्दवान उसे खूब पसन्द आया था। किन्तु फिर भी वह बर्दवान न रह सका। खायेगा क्या? दिन कैसे बीतेंगे? बर्दवान में

मूर्तियाँ नहीं बिकीं। शहर में बहुत से बड़े लोग हैं, शौकीनों का अभाव नहीं है। कपड़े-लत्ते, चाल-चलन में बर्दवान कलकत्ते के बाद ही है। मूर्तियाँ बहुत से लोग खरीदते हैं, घर में शीशे की आलमारियों में मूर्तियाँ सजायी भी रहती हैं। किन्तु वे मिट्टी की मूर्तियाँ नहीं हैं, वे हैं चीनी मिट्टी की। उस गुलाबबाग की बड़ी मूर्तियों का अनुकरण कर उनका रंग घिसा हुआ सफेद होता है। सफेद पालिश की हुई भी हैं। उन पर कितना सुन्दर रंग है! दो-चार कृष्णनगर की मूर्तियाँ भी हैं। उसकी मूर्तियाँ कृष्णनगर से खराब न थीं। किन्तु उस समय वह उन्हें पका नहीं सका था। कच्ची मिट्टी की मूर्तियाँ थीं, और मिट्टी भी अच्छी नहीं थी। दामोदर के किनारे की मिट्टी से क्या गंगा की मिट्टी तरह मूर्ति बन सकती है? नहीं बन सकती। वह यह नहीं जानता कि गंगाजल में स्नान कर मनुष्य स्वर्ग जाता है कि नहीं, किन्तु गंगाजल में नहाने से रूप खुलता है, रंग गोरा हो जाता है और गंगा की मिट्टी से बनी हुई मूर्तियों की तुलना नहीं होती। यह सत्य वह नवद्वीप में चार वर्ष पहले से जानता आ रहा है। फिर भी उसने चेष्टा में त्रुटि नहीं की। उसने अन्तिम चेष्टा की—अनेक परिश्रम अनेक यत्न से तीन मूर्तियाँ तैयार की। मूर्तियाँ नहीं, मूर्तियों के चित्र। एक थी महाराजा के महल की अविकल नकल। सामने की रेलिंग, बड़े-बड़े खम्भे, फाटक, फाटक के सन्तरी, यहाँ तक की राज-भवन की छत और बीच की बहार का नक्शा भी तैयार किया, और एक चित्र था कर्जन फाटक की नकल। तीसरा था महाराज की नयी बनवायी हुई छोटे-छोटे पत्थरों से बनी हुई ठाकुरबाड़ी। उन तीनों को लेकर उसने महाराज से भेंट करने की बड़ी चेष्टा की। किन्तु भेंट न हुई। ऊपर के कर्म-चारियों ने भेंट नहीं होने दी। दस दिन घूमने के पश्चात् उसकी सर्व-

नाशिनी माँ और बहिन ने उसका पता पा लिया। ये सर्वनाशिनियाँ मर कर भी उसे नहीं छोड़तीं। मरने के पहले जैसे उसे खोजने के लिये उन्होंने देश-देशान्तर में लोगों को भेजा है। अन्तिम दिन राजबाड़ी की कचहरी के बरामदे में देवीपुर के बाबुओं के गुमाश्ते से भेंट हो गयी। वह सम्पत्ति के झगड़े के सम्बन्ध में राजकचहरी में आया था। वह मलिन को चकित होकर देखता रहा।

उस अच्छे वेश वाले, स्वस्थ और रूपवान युवक को देख कर उसके विस्मय की सीमा न रही। यह कौन—वही-वही है? मलिन फिर खड़ा नहीं रहा। साथ-साथ लौट कर चला आया। रास्ते में तीनों मूर्तियों को कृष्णसागर के जल में फेंक कर अपने मन और छाती में उँगली बजा कर मुँह से विसर्जन के बाजे का शब्द निकालते-निकालते घर लौटा। "हे माँ दिगम्बरी, नाचो। डैंग डैना सैंग, डैंग, ढैना स्यांग; डाडांग, डाडांग।" जल में जाओ जलेश्वरी, हाथ-पैर धोकर घर लौटूँ। उठो मुसाफिर गठरी बाँधो, बहुत दूर चलो। जहाँ देवीपुर का परिचय न पहुँच सके, वहाँ चलो। दूसरे ही दिन वह बर्दवान से रवाना हो गया।

त्रिवेणी! त्रिवेणी! त्रिवेणी। रात भर सोचने के बाद उसने त्रिवेणी जाने का निश्चय किया। बीच-बीच में तारकेश्वर जाने की इच्छा हुई। शहर के बाबुओं की नजर ऊँची होती है, वहाँ मिट्टी का कारबार नहीं चलेगा। यहाँ न तो मिट्टी के घर हैं, न हैं मिट्टी की सड़कें, जो मिट्टी लेकर कारबार करते हैं, उनकी यहाँ गुंजायश नहीं है। क्या कच्ची मिट्टी की मूर्तियाँ चलेंगी? पकाने पर चल सकती हैं। किन्तु उसके लिये उसके पास रुपये नहीं हैं। इसके अलावा यहाँ गंगा नहीं है। गंगा की मिट्टी

नहीं है। मिट्टी की मूर्तियाँ गाँववाले खरीदते हैं। वे गाँव में नहीं खरीदते, खरीदते हैं मेले में आकर। वह मेला तीर्थ का मेला होता है।

गंगातीर्थ में नित्य छोटा-मोटा मेला लगता है, नित्य ही यात्री आते हैं। पर्व-उत्सवों पर हजारों यात्री आते हैं, उनके दबाव से उस समय बर्दवान का बाजार टूटने लगता है। बर्दवान छोड़कर दुकानदार छोटे तारकेश्वर-त्रिवेणी आते हैं। लोग यहाँ आकर मूर्तियाँ खरीदेंगे। किन्तु अन्त में तारकेश्वर जाना उसे पसन्द नहीं आया। गंगा नहीं, गंगा की मिट्टी नहीं। उससे त्रिवेणी ही अच्छा है। त्रिवेणी तीर्थ स्थान है। गंगा-तीर्थ के त्यौहार वर्ष में बहुत से होते हैं। त्रिवेणी अच्छा है। इसीलिये बर्दवान से वह त्रिवेणी चला आया।

वह त्रिवेणी से चन्दननगर आया उसने त्रिवेणी में अपने को गढ़ लिया। उसका शरीर फूल उठा। ऐसे सुन्दर गुल निकले हैं कि वह स्वयं मुग्ध हो जाता है। मिट्टी खोदता है, मिट्टी ढोता है, बहुत परिश्रम करता है। वह नियमित रूप से गंगा में तैरता है। पेट भर भोजन करता है। जिसप्रकार काम में हाथ खूब खुल गया है, उसी प्रकार मन और बुद्धि भी खुल गयी है। दिन-दिन नयी मूर्तियों की बातें मन में पैदा होती हैं। जो कुछ देखने में अच्छा लगता है, उसकी मूर्ति बनाने की इच्छा होती है। इसके बाद सोचता है कि इसका साँचा कैसे तैयार होगा। बैण्डेल जंकशन पर एक पुराना गिर्जा है। वह उसे खूब पसन्द आया। उसने झटपट मिट्टी का एक अविकल गिर्जा बनाया। वह उसे साहबों के पास नहीं ले गया। बर्दवान से ही वह लोभ चला गया था। यह लोभ नहीं है, छोटापन है। वह उस मूर्ति को दुकान के सामने सजा कर

रखता। उसने लिख दिया था—बिक्री के लिये नहीं है। मकान के सामने मूर्तियों के पकाने के लिये एक छोटा भट्ठा भी बनाया था। त्रिवेणी में तीन वर्षों में उसके पास पाँच सौ रुपये जमा हो गये। मेढक, तितली, परी के सिर पर ब्राकेट, परी, पुलिस, फलवाली आदि अनेक प्रकार की मूर्तियों के ढाँचे उसने तैयार किये।

सबसे अधिक बिक्री कन्यामूर्ति की होती थी। वह एक किशोरी युवती की मूर्ति थी। अनेक बार तोड़कर उसने भुवनपाल को उस कन्या-मूर्ति की तरह बनायी थी। उनमें भेद यह था कि मलिन ने मूर्ति के हाथ में गाढ़े लाल रंग की सूत की माला दी थी, सिर पर मुकुट बनाया था, सिर पर चन्दन, सारे शरीर में गहने और पोशाक में बनारसी दिया था। उसे देखने के लिये लोग दो क्षण खड़े हो जाते। खरीद कर ले भी जाते। उसने दाम रखा था, सोलह आने—एक रुपये। चन्दननगर में कई वर्षों से तिल-तिल कर उसके मन में एक आश्चर्यजनक मोह की सृष्टि हो गयी। त्रिवेणी का रंग फीका पड़ गया।

अब उसे त्रिवेणी अच्छा नहीं लग रहा था। पेड़-पौधे, जंगल, बस्ती वाला गाँव। सन्ध्या होते ही घोर अन्धकार। उसे क्यों अच्छा लगने लगा? उसको चाहिये शहर, मनुष्य के हाथ का बनाया रंगीन जामा, रंगीन कपड़ा, रूई कात कर सूते से बने हुए कपड़े, उस पर नक्शे की बहार, तांबे में रंग मिलाकर गलाकर बनाये हुए चमकदार बर्तन, उसको चाहिये चमड़े को सिझा कर चमकदार पालिश किये हुए जूते। फूल मिले हुए गन्ध! तिल पीसकर बनाया हुआ तेल। रंग डालकर सुगन्ध मिलाया हुआ शीशी में बन्द तेल, उसको चाहिये जगमग प्रकाश, उसको चाहिये

रूप की हाट। उसको चाहिये मत्त उल्लास से हाहाकर हँसने के लिये अच्छी शराब। अब उसे बड़ाबाजार चाहिये। बड़ी हाट चाहिये। चन्दन-नगर के लक्ष्मीगंज के बाजार का पोस्ता बांधे हुए गंगा किनारे के पक्के रास्ते पर रथ का मेला। फ्रांसीसी साहबों के कौन डे जैसे बास्तिल डे का मेला। वहाँ की उत्तम शराब की दुकानें और शराब का स्वाद, वहाँ रूप की हाट देखकर उसे लगा था—इस स्थान पर उसे आना ही होगा। ऐसा लगा था, उससे बहुत दिन पहले-पहल जिस दिन चन्दननगर आया उसी दिन। इसके बाद भी वह त्रिवेणी में तीन वर्षों से अधिक रहा। वह तीन वर्ष तक यह मन ही मन जपता रहा। किन्तु कर नहीं सका, वह त्रिवेणी छोड़ न सका। उसे छुड़ाया इस टिया ने। टिया के लिये ही रघुदस्यु के साथ झगड़ा हो गया। रघु दस्यु होने पर भी मलिन का सच्चा हितैषी मित्र था।

चार

त्रिवेणी में अपने परम बन्धु रघुदस्यु के साथ टिया को लेकर ही विच्छेद हो गया। वही टिया आज फूट-फूट कर रो रही है। रघु ने उसकी जान लेने की धमकी दी थी। मलिन डरा नहीं, उसने कहा—देखा जायगा। इसके दस-पन्द्रह दिन के बीच ही में उसने चन्दननगर में घर भाड़ा ले लिया। और अपनी सबसे मूल्यवान सम्पत्ति-सांचों-को वहाँ से दिन ही दिन हटा दिया। फिर निश्चिन्त मन से हाथ-पैर झाड़ कर अर्थात् किसी प्रकार का भार न रखकर केवल छुरी के सहारे उसने रात को

अपने मित्र का मुकाबिला किया और सीधे चन्दननगर चला आया। अवश्य छुरी मार कर खून-खराबी नहीं की, हाथ से ही मारा था, किन्तु वह मार भी उपेक्षा करने लायक नहीं थी। जिस मुँह से रघु ने धमकी दी थी, उसी को घूँसे मार कर ओंठ फाड़ कर दो टुकड़े कर दिये और पेट में एक लात लगा दी। चन्दननगर निरापद स्थान है। यह फ्रांसीसी साहबों का इलाका है। त्रिवेणी के पुलिस के अधिकार के बाहर। मार खाकर यदि रघुदस्यु सीधे उससे बदला लेने की चेष्टा करता जो मलिन भय न करता। किन्तु रघु बदला लेते समय टेढ़े-सीधे का विचार नहीं करता, बदला लेना ही उसका लक्ष्य रहता है। इसीलिये ऐसी अवस्था में वह टेढ़ा रास्ता ही ग्रहण करता है। और त्रिवेणी में लेखा-जोखा होने पर एक-तरफा होने की ही सम्भावना थी। त्रिवेणी में रघुदस्यु तीन पीढ़ियों से रहता है। उसने बचपन से ही दल बना रखा है। टेढ़े रास्ते से दल बाँध कर एक विदेशी का खून कर उसे गुम करने में उसे कितनी देर लगती? चन्दननगर आने का एक कारण यह भी है। इसीलिये वह चन्दननगर आया है और रघु से कह भी आया है कि यदि बदला लेने की इच्छा हो, तो चन्दननगर आवे। वह उसे चन्दननगर में ही पायेगा।

रघु के साथ मित्रता हुई थी, हाथा-पाई कर और छोड़ा-छाड़ी हुई घूसबाजी कर। बर्दवान से वह त्रिवेणी एक प्रकार से हठात् चला आया था। बर्दवान में जिस प्रकार मन के क्षोभ से मिट्टी की राजबाड़ी, फाटक और मन्दिर का नक्शा हठात् कृष्णसागर में फेंक दिया था, उसी प्रकार उसने निश्चय किया था, कि अब और यहाँ नहीं। उसी समय से रात भर सोचता रहा—तब कहाँ? तारकेश्वर या त्रिवेणी? मन ने कहा,

त्रिवेणी। बस, असबाब माल बाँध डाला। उस समय उसकी नवद्वीप की-सी दशा नहीं थी। उसके पास कुछ माल-असबाब हो गया था। एक ट्रंक, एक बिछौना और मूर्ति रखने के लिये एक पैकिंग बक्स। यन्त्र-पाती के लिये एक अलग टिन का सूटकेस। टिया उसके सामने रो रही है, और वह चुपचाप बैठकर बीती बातें सोच रहा है। अन्तिम रात में बर्दवान स्टेशन में आकर ट्रेन पर सवार हुआ था।

उसके साथ तीस रुपये थे। रेल का किराया लगा। उसने दिया। इस ओर उसका स्वभाव सच्चा है। पैसा रहते वह किसी को धोखा नहीं देता। त्रिवेणी पहुँचते दोपहर हो गया। खोज-खाज कर, गंगा-स्थान के यात्री जिस मुहल्ले में रहते हैं, उसी में एक घर भाड़ा लेकर उसने चूड़ा, दही, केला खाकर दिन बिता दिया। तीसरे पहर स्थायी घर की खोज में निकला, पूरा मकान चाहिये, साथ में सहन चाहिये। गंगा के पास होना चाहिये, नहीं तो उसका काम नहीं चलेगा।

विधाता पुरुष के ब्रह्मा जी को पृथ्वी के लिये भाड़ा देना पड़ता है कि नहीं, वह नहीं जानता, किन्तु भूमि न पाने पर वह पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, कीड़े-तितलियाँ, और मनुष्य बनाकर रखता कहाँ? कई घर देखने के बाद वह उस दिन लौट आया। दूसरे दिन सबेरे घाट के किनारे एक चटाई पर दुकान सजाकर बैठा गया। मूर्तियाँ अधिक नहीं थीं। कुछ मेढक, कुछ तितलियाँ और कुछ उस कन्या की मूर्तियाँ। उस समय सब कच्ची मिट्टी की थीं। यात्री बहुत अधिक नहीं थे। साधारण बिक्री हुई। फिर भी सब रुक जाते और बिना देखे आगे बढ़ते। इसीसे उसके मन में भरोसा हुआ। यदि नेत्रों को रूप अच्छा लगे तो मन में उसे पाने की साध

जगेगी ही, और यदि वह रूप नित्य आँखों के सामने आये तो, साध भी गर्मी की आग के ताप के समान, उसकी शिखा के समान बढ़ेगी।

इसी भावना के बीच में ही ताल भंग कर मूर्तिमान बेताल के समान रघु-दस्यु आकर खड़ा हो गया। वह रघु-दस्यु को पहचानता नहीं था। किन्तु उसके शरीर और बोली से कुछ परिचय मिल रहा था। उसने दुकान के सामने खड़े होकर एक बार उसकी ओर फिर मूर्तियों की ओर देखकर भारी गले से रुक-रुक कर कहा—मूर्तियाँ ! —हुँ। चेहरा तो खूब बाबू कार्तिक की तरह है—हुँ। कहाँ से आये हो ? इसी के बाद धमकाया —ए-ए ! अच्छी तरह बैठ।

मलिन अपने दोनों हाथों से दोनों घुटनों को बाँध कर थोड़ा अलग बैठा था, और दोनों पैरों को बड़े आराम से हिला रहा था। उसके मन में रंगीन भविष्यत का रंग छा रहा था। रघु-दस्यु के भारी गले के गम्भीर प्रश्नों से चौंक कर सतर्क नहीं हुआ। इसीलिये रघु ने उसे धमकाया था।

वह सहज में ही नहीं चौंका। वह चौंका नहीं, किन्तु सावधान हो गया। पैर हिलाना बन्द कर दिया, और दोनों हाथ छुड़ा कर उसने थोड़ा मुस्करा कर पूछा—क्या मैं अच्छी तरह नहीं बैठा हूँ ?

रघु की चितवन की एक विशेष भंगी है। वह गर्दन टेढ़ी कर आँखों की दोनों पुतलियाँ ऊपर कर लेता है फिर अपनी बरौनियों और भौंहों को देख कर बातें करता है। उसकी यह भंगी लड़ने के लिये तैयार भैंसे की भंगी के समान होती है। इस भंगी में हुकूमत का आभास तो है ही, आक्रमण के लिये तैयारी की सूचना भी रहती है। उसी भंगी से देख कर रघु बोला—हुँ—शायद पहली बार त्रिवेणी आये हो ?

—हाँ। ठीक है। मैं कल ही आया हूँ।

—तभी !...मैं रघु मित्र हूँ। लोग रघु-दस्यु कहते हैं। यहाँ मूर्तियाँ सजा कर बैठे हो, हुक्म लिया है ?

—हुक्म की बात तो मैं नहीं जानता।

—जानते नहीं तो जान लो। जमींदार का हुक्म चाहिये, भाड़ा चाहिये, मेरा हक चाहिये। जमींदार के प्रतिदिन दो आने, एक आने मेरे।

मलिन थोड़ी देर चुप रहा। जमींदार को देने में उसे आपत्ति न थी। किन्तु सोचता था कि वह उसे मासिक या वार्षिक दर से देगा ? किन्तु इस आदमी को क्यों देगा ? उसने यह जान लिया कि इसका कार-बार शरीर के जोर का है। उसके शरीर का जोर उसके मन को खोंच रहा था, ठेला दे रहा था—हुक्म दो। किन्तु वह पहले ही झगड़ा नहीं करना चाहता था।

—दो-दो ! नहीं तो लात मारूँगा और सब चूर-चूर कर दूँगा।

उसने तीन आने पैसे निकाल कर रघु के हाथ पर रख दिये। रघु ने पैसे पाकर शान्त होकर अपनी आँखों की पुतलियाँ नीची कर लीं, फिर मूर्तियों की ओर देखा। उसके नेत्रों और मुँह में प्रशंसा भर गयी। उसने कहा—तुम्हारा हाथ तो अच्छा है, चेहरे के समान ही सुन्दर। यह तो अच्छा बनाया है। कन्या ? वाह ! यह तो बड़ी सुन्दरी कन्या है ! बहुत अच्छा ! हुँ। अच्छा यह मैंने ले लिया। दूध का स्वाद घोल से मिटाऊँगा।

मलिन ने झट उसका हाथ पकड़ लिया—नहीं, ऐसा नहीं होगा।

रघु को कौतुक अनुभव हुआ। हुँ, हाथ पकड़ कर रोकेगा ? मुझे ? कहते ही एक झटका दिया। उसने सोचा था उसके झटके से यह कार्तिक

के समान चेहरेवाला छोकरा हाथ छोड़ देगा, अपना हाथ पकड़ लेगा, और उसका हाथ झटके से मुड़ जायगा। किन्तु झटका देकर ही रघु चौंक पड़ा। मलिन का हाथ मुड़ा नहीं, इस छोकरे की मुट्ठी कड़ी है।

—हाँ, अच्छा, फिर झटका दिया।

मलिन ने इस बार भी नहीं छोड़ा।

अत्यन्त आक्रोश तथा क्रोध से रघु भयंकर हो उठा। मलिन ने उसका हाथ छोड़ कर कहा—आपका हाथ बेकायदा हो गया, नहीं तो मैं रोक न पाता।

मूर्ति रघु के हाथ से गिर कर टूट गयी। उस पैंकिंग बक्स से एक और कन्या मूर्ति निकाल कर उसके हाथ में देते हुए बोला—लीजिये। अपनी कन्या आपको दी। इसके बाद झगड़ा करने का काम नहीं।

रघु खुश हो गया, और उसके मुँह की ओर देख कर बोला—तू तो बड़ा अच्छा है!

—हाँ, मैं तो अच्छा हूँ ही।

—देखूँ। कह कर रघु ने उसके हाथ की गठन और छाती की परीक्षा कर देखी, और कमर छुरे की बेंट हाथ में लगते ही उसके मुँह की ओर स्थिर दृष्टि से देख कर कहा—अच्छा। यंत्र देखूँ तो।

यंत्र देख कर उसने वापस देकर कहा—तब तो तुम्हारे साथ मेरा मेल खूब खायगा। क्या नाम है? देश कहाँ है? शायद इसी तरह घूमते-फिरते हो? नहीं—मूर्तियाँ बाहर का ढंग है। भीतर का असली रंग दूसरा है? क्या बात है?

—नाम मलिन दास। देश-वेश नहीं है। पहले बर्दवान में था,

कार-बार नहीं चला। यहाँ आया हूँ। गंगा किनारे तीर्थ स्थान है। यदि चलेगा तो रहूंगा। मेरा एक ही कार-बार है। इन्हीं मूर्तियों का। फिर न तो मैं किसी से डरता हूँ और न किसी को डराता हूँ। मार खाने पर बिना मारे नहीं छोड़ता। इसीलिये उसे रखता हूँ। उससे मूर्तियों पर पालिश होती है, सांचे छिले जाते हैं, और आवश्यकता पड़ने पर—मलिन हँस पड़ा था।

—बहुत अच्छा। इस कन्या के बदले तुम्हारे साथ दोस्ती हो गयी।

रघु ने हाथ पकड़ लिया।

हँस कर मलिन बोला—अच्छा, दोस्ती हो गयी।

—शराब पीते हो?

अब मलिन थोड़ा हँसा।

—बहुत अच्छा, आज सन्ध्या को तुम्हारा निमन्त्रण है।

सन्ध्या की महफिल में चन्दननगर की शराब पिला कर रघु ने ही पहले-पहल चन्दननगर का पता दिया। उस महफिल में और एक घटना घटी। रघु एक अर्द्ध व्यभिचारिणी युवती ले आया। उसमें एक चटक थी, जो रघु को अच्छी लगती, किन्तु मलिन को पसन्द न आयी।

रघु उसे हाथ पकड़ कर लाया और आँखें मटका कर मलिन की ओर देख कर पूछा—कैसी है?

मलिन ने हँस कर कहा—तुम्हीं बतलाओ न! मैंने अपनी कन्या-मूर्ति तो तुम्हें दी है!

—अरे! वह तो सिर्फ मिट्टी है।

—दोनों एक भाई हैं। यह जल में गिरने से गलती है, गिरने से

टूट जाती है, वह आग में जल कर राख हो जाती है, गिरने से थोथली हो जाती है। वह कीचड़ मिट्टी से भी घृणास्पद है। वह तुम रखो। मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है।

उसके तीन वर्ष रघु-दस्यु के साथ गहरे बन्धुत्व में कटे हैं। कितनी बार झगड़े हुए और कितनी बार मिटे। पंजे तो रोज ही लड़ते थे। यद्यपि मलिन कभी जीता नहीं, किन्तु बराबर-बराबर गया। अन्त में क्या हो गया? रघु के मुँह का ग्रास मलिन ने काढ़ लिया। रघु के जीवन का श्रेष्ठ आहार नारी है। पर्वों-त्योहारों पर गंगा स्नान के योगों पर रघु प्रतिदिन नारी संग्रह कर लाता। खोयी हुई स्त्रियाँ, स्वेच्छाचारिणी स्त्रियाँ, किन्तु उन सबको देख मलिन नाक-भौं सिकोड़ता। केवल पर्वों-त्योहारों पर ही नहीं, साधारण समय में भी रघु-दस्यु को इस भोज्य का अभाव न होता। उसकी यह रुचि बाघ के समान थी। शिकार देखते ही भूख हो या न हो, उस पर झपटने की प्रवृत्ति जाग उठती थी। मलिन संन्यासी नहीं था, उसकी रुचि पूर्ण स्वतन्त्र थी।

रघु गाली देकर कहता—मैं कह देता हूँ तेरे भाग्य में वह नहीं है। तू मूर्तियाँ लिये ही रह जायगा।

हँसकर मलिन बोला—वह भी तो तुम्हें दे दिया मित्र!

बीच-बीच में पर्व-स्नान के योग पर, यात्रियों के समागम में मलिन चंचल हो जाता था। उसकी दुकान पर भीड़ होती। उनमें उसकी प्यासी आँखें यह खोजती थीं कि किसमें उसकी प्यास मिटाने वाला रूप है। मूर्तियों के रूप की हाट के सामने तरुणियों के रूप की हाट लग जाती। छाया के खिंचाव से जैसे काया आता। रंग की माया-मरीचिका काया

धारण कर सैकड़ों तरंगों में कल-कल करती हुई उबल पड़ती। उनके केश-सौरभ से छाती भर जाती। हाथ में मूर्तियाँ देकर पैसा लेते समय कोमल स्पर्श का अनुभव कर उन्मना हो जाता। रघु आस-पास घूमता।

निराला पाकर पूछता—किसी पर निगाह जमी?

मलिन हँसता। किन्तु उसकी आँखें देख रघु उसके पास बैठता।

—मैं तुम्हारे पास बैठता हूँ। पसन्द आने पर हाथ दबा कर इशारा करना।

—क्या करोगे?

—वह रघु का दल जाने। रात में उठा लायेगा।

—उँहूँ।

—क्यों?

—जोर कर उठा लाने से मनुष्य का शरीर तो आता है, किन्तु मनुष्य नहीं आता।

उसकी बात सुन कर थोड़ा चुप रहने के बाद रघु कहता—तो तुझे मिलेगी किस प्रकार?

—पैरों पर चल कर आयेगी।

—तेरा कार्तिक के समान चेहरा देख कर?

—और नहीं तो क्या? तुम्हीं को क्या देख कर दौड़ती हैं? तुम रहने दो। उन्हें आने दो।

—भाग। ऐसे ही आती हैं?

—हाँ, आती हैं।

मलिन के मुँह की ओर कुछ देर तक अबोध की तरह देख कर वह

कहता—धत्। अर्थहीन प्रलाप की तरह बोल कर चला जाता, फिर लौट आता। दबा कर बैठ जाता और कहता—अब ठीक हुआ है।

—क्या ?

—बोलो किसको पसन्द करता है। टिया छोकरी को लगा दूँ ? वह जाकर बोलेगी। बाजी लगाता हूँ, जरूर आयेगी।

भिखारी की कन्या भिखारिणी, बूढ़े गोपाल पटवा की कन्या टिया है। उम्र में ग्यारह, बारह या तेरह। गोपाल पटवा घाट के किनारे बैठ कर मँजीरा बजा कर धीमे-धीमे गंगा माहात्म्य या अजामिल के वैकुण्ठ लाभ के गाने गाता। टिया और टिया का एक छोटा भाई फड़िङ्ग—उसे दुहराते। त्रिवेणी के पास के गाँव में उनका घर है। उनका मकान टूटा-फूटा है। फिर सन्ध्या समय वहाँ चले जाते और सबेरे उठ कर चले आते।

उसी वयस में ही टिया पक गयी थी। मुँह में कपड़ा डाल कर हँसती, टेढ़ी होकर बातें करती। हिलती-डुलती चलती। अनेक लोग उससे मजाक करते। इशारे से बातें करते। टिया गर्दन टेढ़ी कर मुँह में कपड़ा डाल कर मृदुस्वर से उत्तर भी देती। हाट-बाजार-घाट में भिक्षा कर उसने केवल सरोवर का ही जल नहीं पिया है, किन्तु कीचड़ और मैले जल के घाटों की खबर भी जान गयी है। टिया आबदार बात कहती थी, आज भी कहती है। तुमसे नहीं माँगूँगी तो माँगूँगी किससे ? तुम हो मेरे जीवन धन—श्यामचन्द !

जो कोई इसका जो अर्थ लगावे। यह बात उसके सम्प्रदाय की प्राचीन काल की बोली है। टिया उससे भी अधिक गहरे रस की बोली जानती

हैं। कहती है, मन के मधु, प्राणों के बन्धु। मेरा धन—मान सब तुम्हारे हाथ। मुँहजला पेट नहीं मानता, इसीलिये तुम्हारे सामने हाथ फैलाती हूँ, रँगा नहीं काला हाथ। सोना नहीं चाहती, चाँदी नहीं चाहती, ताँबे का पैसा चाहती हूँ।

मर जाऊँ, तुम्हारी बलैया लेकर मेरा प्राण निकले!

यह बात उसके मुँह में है। थोड़े दुःख का आभास पाते ही वह अवश्य बोलेगी।

इस प्रकार की सब बातें टिया के मुँह से पक्षियों की बोली के समान जान पड़तीं। पीढ़ी दर पीढ़ी सीखी बातें कहनी पड़ती हैं, कहती जाती है। किन्तु टिया की अपनी बातें भी हैं। वह आँख चुरा कर मृदु स्वर से कहती—तुम लोग पैसा न दोगे तो हम क्या खायेंगे? किन्तु तुम पाषाण हो। मेरी ओर देख कर कहो कि नहीं देंगे।

आजकल रघु के समान तरुण नागरों का भी अभाव नहीं है। किसी देश या काल में नहीं रहता। वे अनेक प्रकार के होते हैं। उनके मन के दीपक में जिस प्रकार तेल रहता है, उसी प्रकार प्रकाश की छटा और कालिमा की घटा भी रहती है। रघु का प्रदीप किरासिन की डिबिया है, जिसमें जितना ही लाल प्रकाश है, उतनी ही कालिमा भी। वह सीधा इशारा कर बातें करता और ही-ही कर हँसता। टिया भी मुँह मोड़ कर हँसती। एक दिन की बात सुन कर मलिन अवाक् हो गया। रघु ने युवती का हाथ पकड़ लिया था। उसने कहा—छोड़ दे बाबू, छोड़ दे। तुम मनौती कर पद्मकली को तोड़ कर देवता के पैर पर चढ़ाओ। मिट्टी के देवता की नाक-आँख नहीं होती, वे ये ही लेते हैं। किन्तु तुम्हारे तो

नाक है, आँखें हैं, कली फूलने दो, तब तोड़ना। सुवास मिलेगी, नेत्र शीतल होंगे। हाथ छोड़ो। वरन् तुम बैठो, मैं तुम्हारे चरणों पर हाथ रगड़ दूँ।

पतला चेहरा मुँह केवल चमकदार था। रंग चम्पई, उस पर जैसे एक धूसरता का छिल्का पड़ा हुआ। युवती को देख कर त्रिवेणी में यमुना की बात याद पड़ती। गर्मी की यमुना का नहीं। यमुना नहीं। यमुना का खड्ड। वह जैसे पतले पहाड़ी झरने का मुँह थी। शरीर डुबो कर स्नान तो दूर रहा, घुटना भी नहीं डूबता, किन्तु कल-कल स्वर से तरंगिनी के समान मुख है। वह नाचते-नाचते चलती।

वही टिया। उस टिया को असाध्य कुछ नहीं था। वह सब कर सकती थी। उसमें दूतीगिरी करने की योग्यता थी। किन्तु मलिन कहता—नहीं। देखूँ भाग्य में क्या है। भगवान ने जैसा रूप दिया था—यदि उस रूप में भूल कर जिसे चाहा, वह यदि नहीं आया तो उस रूप का मूल्य क्या है?

—रूप के गर्व में नष्ट हो जायगा।

—देखूँ तो।

पाँच

देखते-देखते तीन वर्ष कट गये, चौथा लग गया था। इसी प्रकार रघु के साथ काटा था। शराब पीकर, हाथापाई कर के हठात् विच्छेद करने वाला विरोध हो गया। वह विरोध हुआ उसी टिया को लेकर ही।

उसके पहले प्रायः एक वर्ष तक टिया त्रिवेणी घाट पर दिखाई न

पड़ो। अतः गोपाल पटवा फडिङ्ग का हाथ पकड़ कर ही आता और टूटे स्वर में गाना गाता। गंगा माहात्म्य। पीर माहात्म्य। पटवे न तो हिन्दू होते हैं न मुसलमान।

अबोध फडिङ्ग गोपाल के स्वर में अपना स्वर मिलाकर उसे बेसुरा कर देता।

पहले लोग गोपाल से पूछते—टिया कहाँ है गोपाल ? वह आती नहीं क्यों ?

गोपाल कहता—अब नहीं लाता बाबा। कन्या युवती हो गयी। विवाह-शादी करनी होगी। अब साथ लाने से पास-पड़ोसी बुरा कहेंगे। मैंने उसे अपने बहिन के यहाँ पिरोना-गूँथना सीखने भेज दिया है। वह गाँव मेरे यहाँ से एक कोस दूर है।

बालिका को भेजने से गोपाल के जीवन में संकट आ गया था। भिक्षा का परिमाण एकदम कम हो गया था। बीच-बीच में मलिन की दुकान के सामने बैठ कर दुःख-गाथा सुनाता। अब नहीं चल रहा है बाबा। दिन भर बाप-बेटे को मिलाकर केवल दस पैसे। खाऊँगा क्या ? दो पेट !

मलिन गोपाल का अभिप्राय समझ जाता। किन्तु उसने स्वयं भिक्षा नहीं की थी, और जो भीख माँगता था, वह उसे अच्छा न लगता। वह भीख नहीं देता। टिया भी कभी उससे भीख न पा सकी थी। रघु ने कितने दिन टिया से कहा था—यदि तुम उससे एक पैसा ले सको, तो मैं दो पैसे दूँगा। दो नहीं, चार।

टिया ने प्रायः अपनी सीखी हुई समस्त बोलियों का प्रयोग कर हार मान ली थी। कटाक्ष, अभिमान, गहरी साँस, छल-बल के जितने अस्त्र

उसकी तरकस में थे, सबका प्रयोग कर अन्तमें दूर बेरसिक, कह कर चली गयी थी। हा हा कर रघु हँसा और उसे बुला कर कहा—लेती जा। पाँच पैसे मुझसे लेती जा। उसका एक पैसा, मेरे चार पैसे।

—नहीं, मैं नहीं लूँगी। मैं हार गयी। मैं क्यों लूँगी? भीख माँग कर पैसा लेती हूँ, यह अलग बात है। यह मैं नहीं लूँगी।

मलिन ने अब कहा—गाना सुनाओ तो पैसा दूँगा।

—यह अच्छा है। अच्छा सुनो। वह गाने बैठ गयी।

"ओ निठुर कालिया, अबला को दुःख दिया रे निठुर कालिया।
सरस सिन्दूर डिबिया भुला कर लिया रे चतुर कालिया॥
मरम-हारिणी मोर—
मन-वन में सुख मोर—
बाँसुरी सुर के तार में बाँधा रे—कपट कालिया।"

गाना सुन कर मलिन ने उसे पैसा दिया था। एक इकन्नी। इकन्नी को ओठ से लगा कर जोर से चूमते हुए छल क्रिया में निपुण युवती ने कहा—मेरे हाथ की इकन्नी, मेरे प्यास की पानी, सोलह आने से भी दामी।

एक दुअन्नी फेंक कर रघु ने कहा—मेरी?

—तुम्हारी मेरे मुँह का पान, केश का तेल, वेणी का फूल।

टिया के न रहने से गोपाल का रोजगार बन्द हो गया। गोपाल दुखड़ा गाता फिरता। वह मलिन को अधिक सुनाता। क्यों सुनाता है, वही जाने। मलिन भिक्षा नहीं देता, देता भी नहीं। चुपचाप बैठा रहता और आगे की तरह अकारण गर्दन हिलाता। गोपाल का दुखड़ा सुन कर अशान्ति अनुभव करता।

गोपाल ने कहा—कुछ दया करो बाबा।

—नहीं। स्पष्ट मलिन ने कह दिया।

—भाग्य ? समझते हो बाबा।

—भाग्य कैसा ? कमा कर क्यों नहीं खाते ? मेरे यहाँ काम करो न। तुम मिट्टी खोद लाओगे, मिट्टी तैयार करो। तुम तो पटवा हो, तुम लोग यह काम जानते हो। मूर्तियाँ, सुखाओ, उठा कर रखो। भट्टी जलाते समय उठा लाओ। काम बहुत है। यह तो मेरे यहाँ तीन लड़के बारहो मास काम करते हैं।

गोपाल ने सिर पर हाथ रख कर कहा—यही तो कहता हूँ। नसीब। पटवा का लड़का होकर क्या काम नहीं सीखा है। बाप ने मियाँ के यहाँ नौकरी की थी। गाय की चिकित्सा जानता था। मियाँ ने गाय-बछड़े की देख-भाल के लिये रख दिया था। बँधा हुआ वेतन था। उन्होंने घर रहने के लिये दिया था। मैं पहले-पहल गाय का चरवाहा हुआ। इसके बाद महीनेदार। अन्तमें जब मियाँ ने हठ किया कि जब हम धर्म में इस्लाम हैं, तो हमें इस्लामी नाम रखने होंगे, खाना-पीना सब इस्लामी करना होगा, तो नौकरी छोड़ कर भाग आया। कुछ सीखा नहीं। ये ही जो दो-चार गाने जानता, उन्हीं को गाकर भीख माँगता। इसलिये इस उम्र में काम कर सकूँगा बाबा ? अल्ला, सत्यपीर; गंगा पतितपावनी!

कह कर गोपाल चला गया।

इसी के कुछ दिन बाद। चार मास के लगभग। एक मास तक गोपाल भी नहीं आया।

हठात् रघु उस दिन आया! उसका काला मुँह चमक रहा है, उसकी

चितवन में उल्लास है। बातके स्वर में उसका रंग चमक रहा है—उठकर आ।

—कहाँ?

बैठे-बैठे साँचे पर मलिन खुदाई कर रहा था। उसने काम करते-करते ही उत्तर दिया। रघु कूद कर ऊपर चढ़ा और झट उसका हाथ पकड़ लिया आओ न, रखो ये सब। इसके बाद ही बोला—क्या मूर्ति बना रहा है। आ, देख आ। कारीगर की करामत देख ले। रंग होने के पहले देखा था। अब रंग हो गया है। देख, क्या हो गया है?

—मूर्ति? कौन मूर्ति?

—आ न, बाबा।

उसका हाथ पकड़ कर प्रायः खींचे लिये जा रहा था। बाजार पार हो कर बूढ़े कविराज के कविराजखाने के सामने आकर बोला—देखो।

रघु की बात सत्य थी। ऐसा ही अवश्य है। तुरन्त रंगी हुई मूर्ति ही तो है। जीवित मूर्ति (टिया) वही पतली गठन, उसके दुबले शरीर पर धूसर—मलिनता का जो आवरण था, अब उसका चिह्न नहीं है। हवा में उड़नेवाली आग पर की राख की तरह उड़ गया है। वह शरीर को पूर्णता से छलछलारही है। रंग की उज्ज्वलता से चमक रही है। दोनों आँखों में कौतुक नाचर हा है। उसकी दोनों पलकें किसी बोझ से थोड़ी भारी जान पड़ती हैं। नेत्रों की पुतलियाँ और सफेद दिखाई देती हैं। और दोनों तारे गहरे काले दिखाई पड़ते हैं। केश कितने चिकने और काले हो गये हैं। पीलेपन का तनिक भी चिह्न नहीं है! और केश इतने बढ़ गये हैं! एक वर्ष तक कारीगर क्या बराबर कूंची चलाता ही रहा है। सत्य कहता है रघु, बलिहारी है कारीगर की!

टिया मुँह भर कर हँसी।

—अच्छी तरह हो, मोहन कारीगर ?

वह बीच-बीच में इसी नाम से मलिन को पुकारती। मलिन के उत्तर देने के पहले वह फिर बोली—पिता को रोग हो गया है। कविराज को दिखाने लायी हूँ।

गोपाल को बैलगाड़ी पर लायी है। साथ में भाई भी आया है। गोपाल आँखें बन्द किये पड़ा है। साँस लेने-छोड़ने में साँय-साँय शब्द हो रहा है। जान पड़ता है न्यूमोनिया हो गया है। वह फडिङ्ग पर विश्वास न कर सकी, इसीलिये स्वयं साथ आयी है।

रघु-दस्यु त्रिवेणी में दण्ड-मुण्ड का शासन कर्त्ता काल भैरव है। उसने आगे बढ़ कर कहा—कारीगर से पिता की बीमारी का खर्च ले लो।

टिया बाप की बीमारी की चिन्ता में भी कौतूहल से हँस पड़ी। टिया वही टिया है। उसने आँखें तरेर कर कहा—लूँगी, अवश्य लूँगी। मोहन कारीगर अपनी सोने की टिया के दुःख से दुखी नहीं होगा, क्या ऐसा हो सकता है ? क्यों कारीगर जी ?

मलिन चुप रह गया। सोच रहा था कि अगर टिया का साँचा बनाया जाय तो कैसा हो ?

टिया पहले के समान ही आँचल उड़ाती हुई आगे बढ़ी और आदर प्रकट कर मृदु स्वर से बोली—बातें करो मोहन कारीगर। मन के मधु प्राणों के बन्धु।

मलिन गर्दन हिलाते-हिलाते बोला—उहुँ। अगर तेरा पिता मर जाय तो घाट के खर्च अथवा कब्र के खर्च के समय आना, मैं दूँगा। बाप को

जिला कर क्या करेगी ? मरने से छुट्टी हो जायगी। तुम्हारे रास्ते का काँटा निकल जायगा।

मलिन चला आया। किन्तु उसकी छाती में तूफ़ान उठ गया। जैसा तूफ़ान, नवद्वीप में भुवनपाल की बनायी मूर्ति देख कर उठा था। किन्तु फिर भी उसमें एक अशान्ति थी। युवती में रंग है, केश है, गाना है किन्तु वैसी सुगन्ध नहीं है। और न जाने क्या नहीं है। भुवनपाल की कहानी याद पड़ रही है। चुपचाप आकर खड़ी हो जाती। पाल शब्द न सुन पाता। केश के सुगन्ध से समझ जाता। वह मधुर स्वर में कहती—अच्छे हैं न ? असुख के समय सिर पर जलपट्टी दे देती। उसको पुकार ने से नहीं पा सकते। उसको पुकारना पड़ता है, ऊपर मुँह उठा कर। इस प्रकार पुकार ने से आती है।

दूसरे दिन सन्ध्या समय घर लौटने पर वह अवाक् हो गया। दरवाजे पर दस्यु का एक चेला बैठा है। उसके दोनों महीनेवाले लड़के नहीं हैं। रघु का चेला बोला—रघु भैया ने उन्हें भगा दिया है।

—क्यों ?

—इस चाभी से घर खोल कर देखो।

मलिन का ताला टूटा पड़ा है। उसके स्थान पर नया ताला झूल रहा है। उसने पूछा—वह ताला ? मेरा ताला किसने तोड़ा ?

—रघु भैया। चाभी लो। किन्तु खूब सावधान। रघु भैया शराब लाने चन्दननगर गये हैं। मैं नाव ठीक करने जारहा हूँ। इतना ही कहकर वह चला गया।

ताला खोलकर वह चौंक पड़ा। मुँह में कपड़ा और हाथ-पैर कपड़े

से बँधी हुई टिया पड़ी है। समझ गया कि रघु लाया है। किन्तु हाथ-पैर क्यों बाँध रखा है? उसने मुँह खोल दिया। टिया उसी क्षण रो पड़ी—मुझे छोड़ दो कारीगर।

आयी क्यों?

—रघुबाबू बलपूर्वक लाये हैं।

—बलपूर्वक?

—हाँ। कल मुझसे कहा था—पिता की चिकित्सा के लिये चन्दा कर रुपया इकट्ठा कर देंगे। जब तुम चले आये, तो रघुबाबू ने कहा। मैंने कहा था—रुपये का क्या होगा बाबू? मैं जानती थी कि जब मैं रुपया चाहूँगी तो रघुबाबू इकट्ठा कर देंगे। रघुबाबू बोले—कल आना रुपया इकट्ठा कर दूँगा, इसी विश्वास पर आयी थी। यह तो सोच भी न सकी। सोची थी—हँसकर बात में रंग-रस कर जैसे भुलावा देकर चली आती हूँ, उसी प्रकार चली आऊँगी।

—अपना चेहरा शीशे या तालाब के जल में नहीं देखती?

युवती का मुँह लाल हो उठा। कई क्षण चुप रहकर उसने अपने को सम्वरण कर कहा—अपने को मैं बहुत चतुर जानती थी कारीगर!

—चतुराई करने जाकर हार जाने पर उसका महसूल लगता है वही देना।

—नहीं। नहीं। नहीं। अल्लाह के पास, भगवान के यहाँ, माँ गंगा के यहाँ मैं क्या जवाब दूँगी! वह जोर से रोने लगी।

—वह सच मानती हो? तो उन सबको पुकार। वे ही आकर तुम्हें बचावें।

इस बार युवती बड़े जोर से रो पड़ी। मेरी शादी होगी, मैं क्या करूँगी ? मैं उससे प्रेम करती हूँ।

—वह कौन है रे ?

मेरी जाति के पटवे का लड़का। बहुत अच्छा आदमी है। मुझे छोड़ दो कारीगर, मुझे बचाओ।

—जा। हाथ-पैर खोलकर मलिन ने उसे छोड़ दिया। उसने केवल छोड़ ही नहीं दिया, त्रिवेणी पार कर कुछ दूर तक पहुँचा भी आया।

रघु लौटकर सूना पिंजड़ा देखकर क्रोध से पागल हो गया। सम्भवतः उसी समय कुछ हो जाता। किन्तु चन्दननगर से लौटते समय रास्ते में शराब पीकर वह इतना मतवाला हो गया था कि उस समय उसमें मार-पीट करने की शक्ति नहीं थी। उद्योग-पर्व में उछल-कूद करते ही गिरकर अज्ञान हो गया। मलिन ने उसे उठाकर अपने बिछौने पर सुला दिया और बहुत सेवा-शुश्रूषा कर उसे नींद लगा दिया। जब तक शक्ति थी, रघु कुत्सित भाषा में उसे गालियाँ देता रहा। मलिन ने कुछ वाद-प्रतिवाद नहीं किया। सवेरे ज्ञान होने पर रघु सिर पकड़ कर चुपचाप बैठा था। मलिन ने शरबत तैयार कर सामने रखकर कहा—पियो।

—नहीं। हाथ के झटके से ग्लास गिरा दिया—हरामी, बेईमान कहीं का।

मलिन ने हँसकर कहा—मेरे घर में क्यों लाया था ?

—तेरे घर अब कभी न आऊँगा।

रघु उठकर खड़ा हो गया।

—मित्र।

जाते-जाते पलट कर रघु ने कहा—आज से फारखत। मैं तेरा दुश्मन हूँ। आज से जान ले। अगर मर्द के बच्चे हो, तो सँभल जा।

अत्यन्त जलानेवाला कोई रसायन लगा हुआ वाण जैसे सशब्द उसकी छाती में बींध गया। "अगर मर्द के बच्चे हो तो सँभल जा।" मलिन क्षण भर के लिये चंचल हो उठा।

—तुम्हारा वास यहाँ से उठा दूँ तो मेरा नाम रघु।

—मैं चला जाऊँगा, मित्र।

—जाने के पहले यदि तू मेरे साथ लेखा-जोखा नहीं कर लेगा, तो जान लूँगा कि तू एक बाप का बेटा नहीं है।

—रघु! मलिन चिल्ला उठा।

रघु तब तक घर के बाहर निकल गया। इस चिल्लाहट पर क्रुद्ध पशु के समान मुँह बढ़ाकर बोला—मैं तेरी जान लूँगा—हाँ।

मलिन बोला—देखा जायगा।

इसके बाद कई दिनों के लिये मलिन बचपन का मलिन बन गया। जो मलिन, चुपचाप अस्थिर भाव से गर्दन हिलाता था जो मलिन बड़ी सड़क पर नहीं चलता था, अपने मन का काम करता जाता था, जो मलिन, किसी की बात नहीं सुनता था वही मलिन बन गया।

चन्दननगर में सारी व्यवस्था करके जाने के दिन-रात नौ बजे वह निर्जन रास्ते पर एक जगह खड़ा होकर प्रतीक्षा कर रहा था। रघु-दस्यु इसी रास्ते से लौटेगा। एक स्त्री के घर से वह इसी रास्ते लौटता है। रघु इन कई दिनों में बहुत शान्त हो गया था। मलिन के साथ झगड़े के लिये अनुताप न हो, किन्तु मन ही मन उसने दुःख का अनुभव किया।

सोचा—मीट-माट कर लेगा। किन्तु रघु उस जाति का मनुष्य है जो स्वयं आगे बढ़कर मिटा नहीं सकता। नहीं तो अब तक मिट-माट हो जाता।

नहीं। मिटता नहीं। मलिन न मिटाता। रघु के उस दिन के तीर से उसका रक्त विषाक्त हो गया था। इसके अतिरिक्त उसके रक्त में ही कुछ ऐसा है, जिससे उसका संकल्प शिथिल नहीं होता। वह कुछ भूल नहीं सकता। उसे सबसे अधिक क्रोध था अपनी माँ पर। माँ मर कर उसे रिहाई दे गयी है। उसने भी गंगा स्नान कर रिहाई पायी है। और भी बहुत से लोगों पर उसे क्रोध है। देवीग्राम के बाबुओं पर, किन्तु वह बहुत कम हो गया है। हाँ, कम हो गया है पुजारी अनन्त महाराज पर, नवद्वीप के छोटे पाल पर, बर्दवान के राजा के अमलों पर। वह भूल नहीं सका है। रघु के साथ मित्रता मिट गयी है। रघु ने स्वयं मिटा दी है, उस पर भयंकर क्रोध मलिन भुला नहीं सकता।

मलिन को बहुत देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। कुछ ही क्षणों में आनन्दपूर्वक गाता-गाता रघु लौटा था। मलिन ने उसके रास्ते में आगे बढ़कर कहा, रुक जा।

—कौन ? ओ मित्र। रघु ने सुयोग नहीं छोड़ा।

—मित्र नहीं। तू ने स्वयं कहा है, दुश्मन।

—अच्छा। वही सही। रघु सीधा होकर तैयार हो गया।

भैंसे की चितवन के समान वही चितवन उसके नेत्रों से फूट रही थी। क्या चाहता है, बोल ?

—जाने के पहले भेंट करने के लिये कहा था। कहा था कि यदि ऐसा न करूँ तो मैं—।

—हाँ । तो आ हो जाय लेखा-जोखा ।

इसके बाद चुपचाप लड़ाई शुरू हो गयी । रघु ने सोच नहीं पाया था और मलिन ने स्वयं भी नहीं सोचा था कि इतने शीघ्र गिर पड़ेगा । किन्तु घूँसा मारात्मक लगा था । ऊपर का ओठ कटकर दो टुकड़े हो गया था । झर-झर रक्त गिरता था, उसी रक्त के स्पर्श की उष्णता से रघु एक क्षण के लिये विह्वल हो गया । इसी अवसर पर मलिन ने उसके पेट पर लात जमायी । एक अस्फुट शब्द कर पेट पर हाथ रखे हुए दो मिनट तक रघु टेढ़ा होकर खड़ा रहा । इसके बाद नहीं सँभला, अज्ञान होकर गिर पड़ा ।

झुककर मलिन ने पुकार कर कहा—मैं चन्दननगर रहूँगा । यदि और लेखा-जोखा करना हो तो वहीं आना ।

यह कहकर वह चन्दननगर चला आया । वह रात को चन्दननगर के बाहर प्रतीक्षा करता रहा । सवेरे शहर में आया, भाड़े के मकान का दरवाजा खोलकर उसमें चला गया और सारा दिन बिछौने पर पड़ा रहा । दूसरे दिन से उसने कार-बार शुरू किया ।

इसी बीच एक दिन टिया अकस्मात् आकर हाजिर हुई । उस समय बैशाख का महीना था । दोपहर झाँय-झाँय कर रहा था । सारे रास्ते जनहीन, सड़क की दुकानों के दरवाजे आधे बन्द । दुकानदार दुकानों पर बैठ कर ऊँघ रहे थे । अपनी दुकान पर बैठकर मलिन स्वप्नातुर दृष्टि से धूप की ओर देख रहा था । उसे याद आ रही थीं, बर्दवान के गुलाबबाग की बातें । चन्दननगर के भीतर 'द' के समान टेढ़ा ग्राण्डट्रैंक रोड के बीच जहाँ टेढ़ा है, जहाँ से लक्ष्मीगंज बाजार की सड़क आकर गंगा के किनारे

के रास्ते से मिल गयी है—प्रायः वहीं मलिन का घर है। एक पूरा मकान उसने लिया है। भीतर भट्ठा बनायेगा। मूर्तियाँ पकायेगा। यहीं से उत्तर की ओर गरीबों का मुहल्ला है। मलिन आधी तन्द्रा में झूम रहा था और गुलाबबाग की बातें सोच रहा था। हठात् टिया हाजिर हुई। उसका भरा हुआ चेहरा दोपहर की धूप में लाल हो गया था। पुकारा—

—मोहन! मोहन कारीगर।

—मलिन चौंक पड़ा।—कौन?

—मैं हूँ सोने की टिया।

इसके बाद ही बोली—आह! चाँद-सा मुँह देखकर मेरा मन शीतल हो गया।

उसके बूढ़े बाप गोपाल का न्यूमोनिया छूट गया है। उसको और फडिंग को साथ लेकर गोपाल चन्दननगर आया है। अब खोजते-खोजते वह उसके पास आयी है।

मलिन स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए सुन रहा था! फीकी हँसी हँस कर टिया ने कहा—क्या मुझे देख कर अवाक् हो गये कारीगर?

—यहाँ कहाँ रहती हो?

—पेड़ के नीचे। तुम्हारी सोने की टिया को पकड़ने के लिये चारों ओर व्याध इकट्ठे हो गये हैं। टिया उड़कर तुम्हारे पास आयी है।

—किन्तु देश छोड़ कर क्यों आयी?

—बचने के लिये, तुम्हारे लिये। सुना कि तुम यहाँ आये हो। वहाँ गाँव में रघु बाबू का दल घूमने लगा। वह कहता कि मौका पाते ही मुझे उठा ले जायगा। सुना कि तुम उसका ओठ दो टुकड़े कर यहाँ चले

आये हो, और भरोसा नहीं कर पायी कारीगर, इसलिये पिताजी और फड़िंग को लेकर यहाँ चली आयी। तुम्हारे भरोसे पर मोहन, मनमोहन ! मनके मधु ! स्थान दो।

— नहीं ! मेरे पास स्थान नहीं है। मलिन गर्दन हिला कर बोला। स्थान देना होगा उस घाट के मरे हुए को, उस अबोध को, इस छलमयी युवती को। उसकी दुकान के सामने ही बैण्डेल के उस गिर्जे की मूर्ति सजी थी। मलिन उसी की ओर देख रहा था। यहाँ फ्रांसीसी मेम-साहब कई दिन आकर उस मूर्ति को देख गये हैं। उन्होंने खरीदना भी चाहा था। किन्तु उसने नहीं दिया। वह बोला—एक और बिना बनाये नहीं देगा। उसकी दुकान की शोभा नष्ट हो जायगी। यहाँ का गिर्जा देख कर वह एक और गिर्जा बनायेगा, और स्ट्राण्ड पर डुप्ले साहब की जो मूर्ति है, उसे भी बनायेगा। और भी बहुत सी चीजें बनायेगा। दुकान में शीशे की आलमारी रखेगा। रंग-बिरंगी मूर्तियों से उसे भर देगा। वह घाट का मुर्दा उसका सारा घर कुश्री कर देगा। नहीं ! उसकी अनेक इच्छायें हैं। वह बहुत सी मूर्तियाँ बनायेगा। उसका कृष्णनगर के योगेशपाल से भी अधिक आदर होगा। घर बनायेगा। उस मकान का भीतरी भाग केशतेल के सुगन्ध से भरा रहेगा।

—मोहन ! युवती छोड़ने वाली नहीं थी। किन्तु उसने आँखों में क्या लगाया है, रंग नहीं, काजल नहीं, सुरमा नहीं, नशा। गले का स्वर कैसा हो गया है, वह भी नशे के समान।

—मैं नहीं लौटूँगी मोहन ! मैं लौटने के लिये नहीं आयी हूँ।

मलिन कुछ न कह कर उठा और दुकान का दरवाजा बन्द कर घर में

घुस गया। चटाई पर कन्याओं की अनेक मूर्तियाँ सजायी हुई थीं। वे रंगी हुई नहीं थीं। वह कूँची लेकर रंगने बैठ गया। हठात् घर के सामने न जाने क्या गिरा। उससे शब्द हुआ। मलिन जब आंगन में निकल कर देखा तो अवाक् हो गया। टिया। गंगा किनारे की ओर के घेरे को लाँघ कर कूद पड़ी थी। वह हँस रही थी। उसने हँसते-हँसते कहा—मैं झूठ नहीं बोलती कारीगर! मैं लौटने के लिये नहीं आयी हूँ। चरणों में मुझे स्थान दो मोहन! मैं और भीख नहीं मागूँगी। किसी के साथ हँस कर बात नहीं करूँगी। तुमने मुझे बचाया है; तुम्हें छोड़ मैं किसके चरणों में अपने को दूँ? जिसके साथ शादी की बात हुई थी, उसकी ओर मैं ताक नहीं सकती, मेरा प्राण धू-धू करने लगता है।

वैशाख की धूप को भी क्या नशा हो गया है? नशा क्या हो गया, वैशाखी धूप में भी एक नशा है। कृष्ण पक्ष की स्तब्ध आधी रात में जिस प्रकार एक नशा रहता है, पूर्णिमा चतुर्दशी की पहली रात को लाल गोला चाँद जब सब दिगान्तरों के ऊपर निकलता है, उस समय एक नशा-सा छा जाता है, उसी प्रकार वैशाख की दोपहरी में भी एक नशा छा जाता है। मलिन को याद पड़ी देवीपुर के पास के बाग में वैशाख की दोपहर में महुआ के पेड़ पर मधुमक्खियों की बोली। वे कान के पास नशे में पागल होकर गाती हैं। वही वैशाख की दोपहरी का नशा है। आज जैसे झुण्ड की झुण्ड मधुमक्खियाँ बोल रही हैं। झंकार उठती है! पृथ्वी सो गयी है। विश्व-ब्रह्माण्ड मिट रहा है, मिथ्या हो रहा है! सत्य है केवल वह और टिया। वह और टिया! टिया के दोनों गाल खूब लाल

हो गये हैं। अदृश्य कारीगर उसके मुँह पर सिन्दूर का छींटा देकर कूँची फेर गया है। कितनी सुन्दर है!

टिया उस समय भी कहती जा रही थी— कारीगर, सब खोकर मनुष्य बचता है, फिर होता है, घर-बाड़ी, रुपया-पैसा जाता है और फिर होता है। किन्तु मन हार जाने पर फिर नहीं मिलता मोहन! मैंने वही मन तुम्हारे पैरों पर हारा है। रघु-दस्यु ने मुझे बाँध कर घर में भर दिया था। बलपूर्वक मेरी इज्जत उतारता। डाकुओं के समान शरीर को तहस-नहस कर देता। मोहन—मैं भिखारिणी हूँ। हँसी-मजाक में लोगों को भुला कर पैसा लेती हूँ और उससे पेट पालती हूँ। अपनी आधी इज्जत तो मैंने स्वयं खो दी है। जातिवालों ने हमें छोटा कर दिया है। रघु-दस्यु के दस्युपने से मुझे डर लगा था कारीगर। वह मुझे कंगाल कर देता, किन्तु प्राण न ले पाता। कंगाल को क्या कंगाल किया जा सकता है मोहन! कंगाल के शरीर का आभूषण धूल है। वही धूल बड़ा जोर कर अधिक लगा देता। झाड़ लेती, साफ कर लेती, माँ गंगा के जल में नहा कर धो डालती। कहती, पतितपावनी यह धूल मैंने नहीं मली है, दस्यु ने मली है। तुम धो डालो और मुझे शुद्ध कर दो। किन्तु तुमने मुझे छुड़ा दिया। त्रिवेणी पार कर रास्ते में आगे पहुँचा दिया। मुझे छुआ तक नहीं। कारीगर, मैं छल कर रोयी थी। सोचती थी कि शायद तुम दस्यु को धोखा देकर मेरे साथ भागोगे। तुम भागे नहीं। मैं मैदान में हँसते-हँसते जा रही थी। सोचा था कि तुमको छल लिया है। हठात् मेरी हँसी समाप्त हो गयी। जैसे दीपक का प्रकाश दप कर बुझ जाता है। देखा दीपक का तेल तुम्हारे चरणों पर उलटे ढाल आयी हूँ। मेरा मन प्राण में नहीं

है। खाँ-खाँ कर रहा है। प्राण-पुरी अँधेरी है, प्राण-पुरी घोर अन्धकार में है। मोहन कारीगर! तुम्हें न पाने पर मैं मर जाऊँगी। मरते को तुम बचाओ।

टियाने उस दिन कहा था—जैसे गाना गाती थी। सँपेरा जैसे साँपको मोहित कर विचित्र स्वर में गान करता है, तुमड़ी वंशी बजाता है। उसी प्रकार गहरी रात में चाँदनी फैलने पर जैसे कौआ बोलता है, उसी प्रकार की एक छटा टिया के नेत्र-मुँह में जाग उठी है। वैशाख के मध्याह्न सूर्य की धूप को सिर पर सहते हुए भी मलिनने गर्मी का अनुभव नहीं कर पाया। टिया भी जलती भूमि पर लेटी हुई दोनों हाथों पर भार देकर बात कर रही थी। उसे भी गर्मी नहीं लग रही थी। कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ता था, मनुष्य की आहट न थी, घर के पास ही गंगा हैं, गंगा का कल-कल, छल-छल शब्द भी नहीं था। केवल टिया बोल रही थी। सँपेरे की गाने की तरह गा रही थी, और एक गन्ध मिल रही थी। टिया के शरीर की गन्ध। वह गन्ध न तो मीठी थी, न मधुर। उसमें केश विलास के सुगन्धित तेल की भी सुगन्ध नहीं थी। उसमें न जाने कैसी गन्ध थी! मादक गन्ध। चन्दननगर की कड़ी शराब की गन्ध के समान। एक उत्ताल आवेग अमावस्या के गंगा के ज्वार के समान शोर करता हुआ चार हाथ ऊँचा उठ कर धीरे-धीरे उसके सारे शरीर में फैल गया। वह आगे बढ़ गया। उसने अस्फुट स्वर में पुकारा—टिया! उसने हाथ बढ़ा दिया, उसका हाथ काँप उठा था। उसके जीवन की साधों और संकल्पों के सब बाँध तोड़ कर वासना की बाढ़ गंगा की बाढ़ के समान फैल गयी। उसमें टिया वर्षा के जल के समान कूद पड़ी।

—मोहन।

—टिया। केवल तू और मैं। तेरा रोगी बाप नहीं, अबोध भाई नहीं। नहीं। तू ही, केवल तू ही।

उन्मत्त आवेग से टिया उसके गले से लिपट गयी। वही होगा मोहन। प्राण-बन्धु, मन के मधु, मोहन कारीगर!

यह आज से छः मास पहले की बात है। छः महीनों से वह टिया को लेकर प्रायः उन्मत्त हो गया है। वह भूल गया है, सब कुछ भूल गया है। वह माँ की बातें भूल गया है, बहिन की बातें भूल गया है, बाबुओं के घर की युवतियों की बातें भूल गया है, अनन्त महाराज, योगेशपाल, नवद्वीप, भुवनपाल, छोटेपाल, गोपेश्वर, यहाँ तक कि भुवनपाल की बनायी हुई मूर्ति की बातें भी उसे याद नहीं आतीं। उसकी कन्या-मूर्ति का साँचा भी खो गया है। क्या किया, कहाँ रखा, उसे याद नहीं। याद नहीं कर सकता। खूब सोच भी नहीं सकता।

टिया और सुन्दरी हो गयी है। बलिहारी सुमोहन कारीगर! टिया उसको मोहन कारीगर कहती है। जिसने टिया को बनाया है वह प्रति-दिन, प्रति क्षण अपनी अपूर्व कूँची आज भी उसके सारे अंगों पर चलाता है। उसका नाम उसने रखा है, सुमोहन कारीगर। उसकी वह बलिहारी देती है। प्रशंसा करती है। टिया जब नहा कर भींगे कपड़े पहने हुए घर लौटती है तो उसके जल से भींगे हुए दोनों पैरों के तलवे सबसे सुन्दर जान पड़ते हैं। चम-चम करते हैं, जैसे श्वेत पत्थर से बनाये हुए जान पड़ते हैं। वह शराब पीता है, अच्छी शराब पीता है। टिया बहुत यत्न के साथ

सामान सजा देती है। जब उसके नेत्र लाल हो जाते हैं, तो टिया हँसती है। उस हँसी में मद से भी अधिक मादकता रहती है।

दुर्योग रात का अँधेरा जैसे सृष्टि को अपने में लोप कर लेता है, उसी प्रकार वह टिया को आत्मसात् कर लेता है। बैशाख की दोपहरी की धूप जैसे पृथ्वी के प्रत्येक परमाणु का शोषण करती है, उसी प्रकार वह टिया का शोषण करता है।

टिया के बाप, टिया के भाई गंगा किनारे के एक टूटे घर में रहते हैं। गोपालदास आया था एक बार। टिया आकर नहीं लौटी थी, उसी की खोज लेने आया था। टिया ने उससे कह दिया था—वह नहीं जायगी। वह भीख माँग कर उसे नहीं खिला सकेगी। जितना हो सका, अब तक करती रही। और नहीं। केवल कारीगर को छोड़ दुनिया के किसी के साथ टिया का कोई सम्बन्ध नहीं है।

टिया का बाप चुपचाप चला गया। उसने दुनिया के किसी के सामने यह बात नहीं कही। उसके लड़के फड़िंग से भी नहीं। मलिन ने ही फड़िंग को बुलाकर अपने काम में लगा दिया। उसे बेतन देता, भोजन देता। किन्तु घर में रहने न देता।

फड़िंग सन्ध्या समय एक गमछे में भोजन बाँध कर अपने बाप के पास चला जाता।

कल टिया का बाप मर गया।

टिया इसलिये रो रही है।

मलिन विरक्त हो गया। उसने कहा—रोना। रोना मुझे अच्छा नहीं लगता। तू मत रो टिया। मैं रोना नहीं सहन कर सकता। मेरी माँ मरी

थी—मैं नहीं रोया। मैं न तो रो सकता हूँ और न रोना मुझे भला लगता है। रो मत, यदि रोना है, तो उस घर में जा।

टिया पेट के बल लेट कर रो रही थी। वह उठ कर पास के घर में चली गयी।

मलिन आकर दुकान में बैठ गया। रोना उसे पसन्द नहीं आता। हठात् याद पड़ा कि टिया भी उसे अच्छी नहीं लगती।

नहीं। नहीं लगती। वह अस्थिर भंगी से गर्दन हिलाने लगा।

नहीं लगती। यह बात जैसे, बिल के साँप की तरह निकल पड़ी।

चतुर्थ पर्व

एक

जान पड़ता है कि मनुष्य के मन में एक साँप रहता है। अन्ततः मलिन के मन में तो अवश्य है। वह है मन का मन, अन्तर का अन्तर। कभी वह निश्चित होकर बहुत दिनों तक निद्रा में सोता रहता है। निद्रा टूटने पर बिल में कुण्डली मारता है, और असह्य वेदना के साथ अकस्मात् निकल पड़ा है। चाँदनी रात की शीतलता में वह आराम से सोता रहता है। कभी फन फैलाकर हिलाता है। आहत होने पर क्रोध के साथ फन फैलाकर फुफकारता है। वह हार नहीं मानता, हार मानना नहीं जानता।

चन्दननगर में उस दिन टिया से जो बातें कहीं थीं, वे बिल के साँप की तरह निकल पड़ी थीं। साथ ही साथ मन का साँप भी जैसे निकल पड़ा था। असह्य व्याकुलता की नींद से उठा हुआ साँप।

टिया अच्छी नहीं लगती ; चन्दननगर अच्छा नहीं लगता। नहीं, अच्छा नहीं लगता।

* * * *

इसके आठ वर्ष बाद।

आठ वर्ष बाद आहत होकर वह साँप फन फैलाकर फुफकारते हुए खड़ा हो गया। मलिन आहत साँप की तरह सिर में चोट और सिर पर

बिखरे केश लेकर ही दृढ़ स्वर में बोला—नहीं, मैंने कुछ अन्याय नहीं किया। आश्चर्य! मलिन अब मलिन नहीं रह गया। इस मलिन में देवी-ग्राम के उस गँवार बालक का कोई चिह्न शेष नहीं रहा। यह मलिन रूप, मार्जना, बुद्धि के प्रकाश, और व्यक्तित्व की प्रखरता से सीधी तलवार की तरह तीक्ष्ण और शानदार हो गया है। जीवन में आवरण पर आवरण बदलकर एक अपूर्व रूप फूट निकला है। अथवा देवीपुर में बिल्ली के बच्चे का चेहरा लेकर जो घूमता-फिरता था, वह भाग कर वन में जाकर किसी माया के सरोवर में स्नान कर जवान बाघ का चेहरा लेकर दिखाई पड़ा है। आहत साँप के समान फन फैलाकर फुफकारते हुए मलिन ने कहा—नहीं। मैंने कुछ अन्याय नहीं किया है। पाँच-छः आदमियों के बीच खड़े होकर अपने बचपन के स्वभाव के अनुसार थोड़ा-थोड़ा हिलते-डुलते गर्दन हिलाते दृढ़ स्वर में उसने कहा—अच्छा लगा, प्यार किया। मैंने उससे व्याह किया है।

सामने खड़ी थी एक आर्तमुखी युवती।

आठ वर्ष बाद की बात।

कलकत्ता के चितपुर की सड़क के पास बस्ती में खाल और गंगा किनारे के इलाके के बीच। पास ही खाल पर काशीपुर ब्रिज है। पाँच-छः आदमी मलिन को घेर कर खड़े हैं। इनमें एक बूढ़ा है। उनके नेत्रों और मुँहों से निष्ठुर क्रोध फूट रहा है। मलिन कहता है—मैंने कुछ अन्याय नहीं किया।

चन्दननगर से कई वर्ष पहले वह कलकत्ता आया है। हठात् उस दिन जैसे जाड़ा बीत जाने पर मन के साँप ने अनुभव किया था कि टिया के

साथ उसके अंगों में अतृप्ति की पीड़ा होती है और चन्दननगर के निवास में संकीर्णता की अस्वच्छन्दता, और भीड़ की अशान्ति छायी है। साँप उस दिन चलना चाहता था प्रशस्त और सुन्दर आश्रय की खोज में। वह प्रान्तर पर प्रान्तर पार करना चाहता था। मलिन दास नहीं, मलिन राय। जाति में ब्राह्मण। चन्दननगर से आने के पहले ही उसने गले में जनेऊ धारण कर लिया था। किसी उद्देश्य से नहीं, किसी को धोखा देने के लिये नहीं, कोई सुविधा पाने के लिये नहीं, केवल अच्छा लगा था, इसलिये अपनी विशाल गोरे रंग की छाती देखकर उसे न जाने क्या मन में आया कि उसने एक जोड़ा जनेऊ बनाकर पहन लिया। उसे देखकर मन में आया—यही तो। इसके न रहने से अच्छा नहीं लग रहा था। अब ठीक हो गया।

इसी बीच बहुत-सी घटनायें घट गयीं। टिया को बिदा कर मलिन अकेले आया था। उसके साथ में केवल फड़िंग था। उसने जब अनुभव किया कि उसे टिया अच्छी नहीं लगती, तो वह कभी मिथ्या नहीं हुई। रात में शराब पीकर अचेत मनुष्य का नशा उतरने का क्षण और सूर्योदय का क्षण एक होने से मन जैसे चौंक उठता है छाती के भीतर से सारा मुँह जैसे बेस्वाद लगता है, अपने शरीर की गन्ध, साँस की गन्ध भी जैसे असहनीय हो जाती है, वैसी ही उस दिन उसकी अवस्था हो गयी थी। टिया के शरीर की गन्ध उससे सहन नहीं होती। टिया रोई थी। रोना कभी अच्छा नहीं लगता, अपने किसी दिन नहीं रोता, टिया का रोना भी उसे अच्छा नहीं लगा। किन्तु इसके बाद टिया का हँसना भी उसे अच्छा नहीं लगने लगा। टिया का गाना, टिया की सेवा, टिया का आनुगत्य,

टिया का रूप और टिया का तोते के समान कलरव कुछ भी अच्छा नहीं लगा। चन्दननगर भी उसे असह्य हो उठा। बड़ा संकीर्ण है। बड़ा छोटा है।

दिन रात स्वादहीन हो गये। सब कुछ से अरुचि हो गयी। उसे अपने आप पर क्रोध आने लगा। उसने स्वयं जीवन का स्वाद खो दिया है, रुचि स्वयं नष्ट कर दी है। टिया का दोष क्या है? उसने टिया पर क्रोध नहीं किया, किन्तु टिया के प्रति रुचि के अभाव से उसकी अवहेलना होने लगी। वह अवहेलना सब कुछ पर फैल गयी थी; टिया, दुकान, मूर्तियाँ, चन्दननगर—यहाँ तक कि अपने आप पर भी। कई दिनों तक उद्भ्रान्त के समान केवल बैठा ही रहा, बैठा ही रहा। अपने को ठीक समझ नहीं पाता था। खरीददार नहीं, स्तब्ध दोपहर, चन्दननगर की हवा दम घोंटने लगी थी।

कई दिनों तक शराब नहीं पी। टिया को छुआ तक नहीं।

टिया ने पूछा—क्या हुआ तुम्हें मोहन?

उसने संक्षेप में उत्तर दिया—नहीं जानता।

—शरीर? शरीर अच्छा नहीं है?

—नहीं। शरीर अच्छा है।

—तो फिर?

—जानता नहीं, कहता हूँ न!

टिया चली गयी। फिर लौटकर पूछा—मुझ पर क्रोध करते हो बन्धु?

—नहीं। तुझ पर क्रोध नहीं करता। इतना कहकर उसने स्थिर दृष्टि से टिया के मुँह की ओर देखा। वह दृष्टि टिया सहन न कर सकी। उसने प्रश्न किया—इस प्रकार क्या देखते हो, मोहन?

मलिन टिया पर विचार कर देख रहा था।

टिया और भी सुन्दरी हो गयी है। वह मूर्ति बनाता है, रंगों से रँगता है, वह रूप को पहचानता है, समझता है। टिया और सुन्दरी हो गयी है, अवरोध में रहने के कारण उसका रंग उज्ज्वल हो गया है। सुमोहन कारीगर ने पालिश की है, वह टिया की नहीं थी। भौंहें, नेत्र और काले दीख पड़ते हैं। केशराशि और घनी और काली हो गयी है केश प्रसाधनों के प्रसाद से और चिकने हो गये हैं।

मन ही मन वह सोच रहा था। अन्त में मन के उस 'नहीं-नहीं' के साथ मिला हुआ नहीं-नहीं करके वह हिल उठा।

टिया की भी भौंहें टेढ़ी हो गयीं, उसने पूछा—क्या? वह विस्मय के साथ मोहन के मुँह की ओर देखती हुई बैठी थी। वह मुँह की प्रति रेखा, प्रति कुंचन देख रही थी। समझ नहीं पाती थी।

—कुछ नहीं।

उस समय सन्ध्या हो रही थी। वह हठात् अत्यन्त हठात् उठ कर खड़ा हो गया और घर से निकल कर चला गया। कहीं भी जाना होगा। उसे फिर अपनी रुचि अपना स्वाद खोजना पड़ेगा। कहाँ है, किसमें है? सड़क पर आकर बहुत दिनों के बाद एक बार—कुर्सी-मेज से सजी हुई एक शराब की दुकान में घुस गया। यहाँ उसकी जान-पहचान वाले अधिक नहीं हैं। इतने दिनों तक टिया को ही लेकर मतवाला हो गया था। बाहर कम निकलता था। जिनके साथ उसकी बात-चीत थी, उन्हें भी घर नहीं बुलाया, वह टिया को नहीं दिखाना चाहता था।

थोड़ी अच्छी शराब पीकर सिगरेट सुलगा वह निकल पड़ा। हाँ,

उसने अपनी रुचि और स्वाद थोड़ा वापस पा लिया। कई मिनट खड़े रहने के बाद उसने चलना शुरू किया। कहाँ ? घण्टे भर में ही चन्दन-नगर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमना खतम हो गया। दुर ! दुर ! फिर थोड़ी देर टहलता रहा, गंगा के किनारे-किनारे, सरकारी मकानों के सामने, साहब-मेमों के उसी होटल के सामने। किन्तु वही कितनी देर अच्छा लगता ? हठात् उसने फिर चलना शुरू किया।

चलो रूप की हाट की ओर। थोड़ी देर घूमने के बाद एक गहरी साँस फेंकी। मनो बहिन मरी नहीं। मन ही मन कहा—मनो बहिन, तू मर जा, मर जा, मर जा ! अभिशाप देकर अब घर की ओर लौटा।

घर के पास पहुँच कर वह रुक गया। सड़क पर एक बत्ती के खम्भे के सहारे टिया खड़ी थी। स्थान निर्जन था। कई छोकरे आस-पास घूम रहे थे।

—टिया ?

टिया की दृष्टि स्थिर थी। जान पड़ता है वह कुछ भी देख नहीं रही थी। वह अपने मन में ही घूम फिर रही थी। टिया के लिये सारी दुनिया खो गयी थी। मलिन के पुकारने से भी उसकी मग्नता नहीं टूटी। उसी तरह एक भाव से ताक रही थी। मलिन ने फिर पुकारा—टिया !

इस बार टिया ने उसकी ओर गर्दन टेढ़ी कर देखा। किन्तु कुछ बोली नहीं। जैसे पहचान नहीं रही थी।

—यहाँ पर ? क्या करती है यहाँ पर टिया ?

—मोहन। गहरी साँस छोड़ कर टिया बोली—मुझे अब घर अच्छा नहीं लगता है मोहन, तुमको भी नहीं लगता है। घर से निकल कर खड़ी हूँ। मैं हाँफ रही थी मोहन।

मलिन उसके मुँह की ओर बहुत देर तक देखता रहा। रास्ते के पास ही उन छोकरों को कौतूहल हो गया। उसने उस पर ध्यान नहीं दिया। टिया थी स्थिर, निस्पन्द। इसके बाद बोला—

—खलास ले टिया।

—हाँ वही अच्छा है। तुम खलास—मैं खलास। अब टिया हँस पड़ी। इसके बाद बोली—चलो रात भर के लिये घर चलें।

—चलो।

दरवाजा खोल कर घर में घुसते-घुसते टिया बोली—किन्तु यह रात यदि न खतम हो मोहन?

—खतम हो जायगी। चिन्ता न कर।

—मुझे कुछ रुपये दोगे तुम?

—कितने?

—जितनी तुम्हारी खुशी।

अपने संचय से एक सौ रुपये निकाल कर मलिन ने उसके हाथ पर दिया—ले, एक सौ रुपये।

—नहीं। इतने रुपये नहीं लूँगी।

—क्यों? मलिन को आश्चर्य हुआ। पैसे के लिये जिस टिया के छल-कपट का अन्त नहीं था वह रुपया नहीं चाहती। हँसकर टिया बोली—रूप है, वास है। इस पर इतने रुपये रहने से रघु-दस्यु के ममेरे भाई मार कर जल में फेंक देंगे।

—अच्छा, कितना लेगी, ले लो।

—उसके आधे दो।

रुपये अपनो खूँट में बाँध कर टिया चली गयी। मलिन ने भी नहीं पुकारा। उसने पूछा नहीं—क्या करेगी, कहाँ जायगी?

निश्चिन्तता, एक परम निश्चिन्तता की प्रसन्नता से आँखें बन्द कर वह कब सो गया। खाया नहीं। टिया ने भी भोजन नहीं पकाया, पका कर बुलाया नहीं। उसकी भी नींद नहीं टूटी। नींद टूटी दूसरे दिन सबेरे। उस समय आँगन में धूप फैल गयी है। द्वार खुला हुआ है। नौकरानी आकर खड़ी है, टिया नहीं है।

टिया नहीं है? नौकरानी ने पूछा—वह कहाँ गयी?

मलिन बोला—जानता नहीं! इसके बाद पास के घर में घुसा। यही घर उनका भाण्डार है। यही टिया का घर है। सब कुछ जैसे का तैसा है। केवल एक बक्स खुला है। टिया का ही बक्स है। उसी ने उसके लिये खरीद दिया है। इसमें टिया के कपड़े-लत्ते रहते थे। कपड़े तितर-बितर थे। देख कर अनुमान किया कुछ लेने के बाद बाकी फेंक कर चली गयी है। आह! एक निश्चिन्तता की गहरी साँस छोड़ी। खलास! वह खलास! अत्यन्त शान्त मन से लौट कर उसने काम करने की चेष्टा की। किन्तु अखण्ड शान्ति के बीच कुछ कर न पाया। बीच-बीच में टिया की बातें याद पड़ीं। उसके कान खड़े हो गये। यह सुनने के लिये कि मोहन मैं लौट आयी, तुम्हारे न रहने पर मैं न जीऊँगी। किन्तु यह बात दिन भर में भी नहीं सुन पायी।

कहाँ गयी? जहाँ उसका मन चाहे जाय! जो टिया बचपन से रास्ते-रास्ते घूम रही है, वह रास्ते के मोड़ पर नहीं खोयेगी। जब किसी के साथ भेंट होगी, तो रुक कर मुस्करायेगी और हाथ फैला कर कहेगी—

जय हो तुम्हारी श्याम ! भिखारिणी की ओर फिर कर देखो गुणमणि !

उससे खलास पायी है, टिया ने उसे खलास कर दिया है। इसीलिये उसका कृतज्ञ है। न देने पर वह स्वयं ले लेता। वही आज कहता। अगर टिया के कहने में क्षण भर की भी देर होती तो वह कहता। टिया और अच्छा नहीं लगता। मुझे खलास कर दे। बोल क्या चाहती है? क्या उस बन्धन में वह रह सकता है?

खेल के फूल। वे हैं खेल के फूल। जितने दिन अच्छा लगा, खेला। जब अच्छा न लगा, गिरा दिया।

जीवित खेल के फूल। वे स्वयं खेलते हैं, खेलनेवाले को भी भुला देते हैं। बहिन की बात याद पड़ी। बहुतों की बातें याद पड़ीं। उसने दिन भर एक मूर्ति गढ़ने की चेष्टा की। वह चन्दननगर का एक गिर्जा बनायेगा। मेला आ रहा है। स्ट्राण्ड पर दुकान लगा कर बैठेगा। उसे सामने सजा देगा। फ्रांसीसी साहबों को इसका शौक बहुत है। किन्तु कर न पाया। हाथ और मन किसी प्रकार भी एक न हो सके। नहीं, हो सकेगा इस समय। वह काम छोड़ कर खड़ा हो गया। दुकान से उठ कर वह खड़ा होकर अच्छी तरह देखने लगा। उस समय दोपहर बीत चुका था। प्रायः दो-ढाई बज रहा था। सब पेड़ों के पत्ते चंचल हो रहे थे। कौए शान्त पेड़ों से उतर कर रास्ते में आ गये थे। वह अपने पैरों से खाने की तलाश कर रहे थे।

हठात् पास की सड़क के मोड़ के उस पार से पुकार आयी—चूड़ी चाहिये, चूड़ी, चूड़ी !

मलिन चौंक पड़ा। चौंक पड़ने की बात ही थी। यह किसकी आवाज है? यह किसका गला हँसी की परत के समान काँय काँय कर

फैल रहा है? ना, उसकी भूल नहीं हुई। वह चूड़ीवाली इसी ओर आ रही है। जो चूड़ीवालियों के समान कपड़ा पहनी है—और सिर पर चूड़ियों की टोकरी लेकर फेरी करती-फिरती है जो युवती, वह टिया ही है। उसके साथ उसका अबोध भाई फडिङ्ग है। उसके सिर पर भी एक टोकरी है।

टिया बहुत सुन्दरी लग रही है। चमत्कार! उसके घर के सुन्दर कपड़ों-लत्तों में भी टिया का रूप इतना नहीं निखरा था। टिया उसे देख कर उसके पास आकर खड़ी हो गयी और मुँह फेर हँस कर बोली—यहाँ क्या करते हो?

मेम साहब देखते हो? इस बात में संकेत था।

नहीं गिर्जा देख रहा हूँ। बनाऊँगा।

—बन जाने पर मैं देखने आऊँगी। मुझे बिना दिखाये बेचना मत। मैं चूड़ियाँ बेचती हूँ। अच्छा लाभ है। कैसा लगता है बोलो? कहते वह फिर हँस पड़ी। फिर बोली—भागूँ, तुम्हारी आँखों में फिर नशा छा रहा है।

इतना कहकर हँसते-हँसते पुकारते-पुकारते पश्चिम की ओर चली गयी। उधर शहर के अधिकांश निवासी रहते हैं।

चूड़ियाँ चाहिये, चूड़ियाँ।

मलिन भी चला आया। आँखों में नशा लेकर ही लौटा। वह बोतल से थोड़ी शराब पीकर बैठ गया। मिट्टी लेकर बैठ गया। नया बनाना शुरू किया। गिर्जा नहीं, एक युवती की मूर्ति; चूड़ीवाली। तरुणी चूड़ी वाली, आँखों की चितवन में अद्भुत इशारा, मुँह की हँसी में आश्चर्य

ढंग। मुँह के रंग में सिन्दूर की आभा। उसका नाम रखेगा, मोहन चूड़ीवाली।

उसने नशे में विभोर होकर बनाया। खाना नहीं, पीना नहीं, तीन दिन तक बनाया और बीच-बीच में शराब पीता रहा। कभी-कभी चूड़ा-मूड़ी, कभी-कभी दो-एक तेल भाजा, कभी दुकान में जाकर एक अण्डा। नयी मूर्ति बनाने के समय उसे ऐसा ही नशा हो जाता है।

टिया अवाक् हो जाती। उसे भय लगता। किन्तु बोलने का साहस न करती। इस मोहन को छू नहीं सकती। केवल उसके पास आवश्यक वस्तुयें जुटा देती। और बीच-बीच में बोल उठती—कितनी सुन्दर! कितनी सुन्दर है यह मोहन कारीगर! कितनी सुन्दर!

उस दिन जब चूड़ीवाली की मूर्ति समाप्त हुई, उस समय वह अकेला था। कोई प्रशंसा करने वाला नहीं था। उससे हानि नहीं हुई, मन निरुत्साह नहीं हुआ, वरन् नशा जैसा छा गया। वह अपनी दुकान के चारों ओर देखकर सोचता था कि चूड़ीवाली की कतार कहाँ रखेगा।

उसकी दुकान फिर जम गयी है। उसने अनेक मूर्तियाँ बनायी हैं। नयी मूर्तियाँ। चन्दननगर के गिर्जे का साँचा नहीं बना, उसने हाथ से ही बहुत से बना दिये थे। डुप्ले साहब की संगमर्मर की मूर्ति देखकर उसी का साँचा बनाकर मूर्तियाँ बनायीं। कन्या-मूर्ति का नया साँचा बनाकर फिर कन्या-मूर्तियाँ बनायीं। बाघ, भालू, कुत्ते, बिल्ली, गाय-बछड़े तो थे ही। ये दाम में सस्ते थे। बच्चों के लिये। जो लेंगे, तोड़ेंगे और नये के लिये रोयेंगे। गरीबों के लिये भी। गरीबों की इच्छा भी वह समझता है। अधिक दाम वालों में भालूवाला भालू नचाता है, फूले हुए कमल पर

भौंरा बैठा है, अजगर ने हरिण लपेट लिया है, भैंसे की पीठ पर बाघ झपटता है, हाथी के सिर पर बाघ—हौदे में शिकारी—इन सब मूर्तियों को तैयार किया है। वैष्णवी मूर्तियाँ, उसके पास कन्या की मूर्तियाँ हैं।

मोहन चूड़ीवाली थोड़ी बनी है खूब बिकेगी, इनको ऊपर रखेगा। हाथ की पहुँच के बाहर। जिससे कोई झट छू न सके।

रथ के मेले में, बास्टिल डे के मेले में आजकल उसकी दुकान सबसे बड़ी होती है। साहब-मेमों की भीड़ लगती है। जगद्धात्री की पूजा में, रासयात्रा के समय वरवाड़ी तले में और पालपाड़े में वह दुकान ले जाता है। बीच-बीच में साहबों का आर्डर मिलता है, वे बुलाकर आर्डर देते हैं।

—मरी, मरी, मरी! यह तुमने क्या किया है मोहन कारीगर! मेरे प्राण-बन्धु, मन के मधु, तुम्हारी साध कैसी है! मेरे सोने के श्याम, नवीन गौर! मुँहजली टिया इतनी सुन्दरी? इतना रूप?

यह और कौन कहेगा? कहा था टिया ने! वह दोपहरी में धूप के नशे में ऊँघ रहा था। हठात् न जाने कब टिया आकर खड़ी हो गयी। उसने उच्छ्वसित होकर ये बातें कहीं। मलिन की ऊँघ टूट गयी।

—टिया?

—हाँ मोहन। फडिङ्ग सवेरे इधर आया था। वह नया मूर्ति देख गया था। उसने जाकर कहा—बहिन, कैसी मूर्ति बनायी है कारीगर ने, दुकान में प्रकाश कर दिया है। जाकर देख आ। चूड़ीवाली की मूर्ति। इसीलिये भागी आयी हूँ। देखती हूँ यह मूर्ति नहीं है, यह तो मैं हूँ। क्या मैं इतनी सुन्दर हूँ मोहन?

मलिन हँस पड़ा। वह कैसे समझाये कि बनाते समय वह जितना

सुन्दर बना पाता है, बनाता है। उस समय यह याद नहीं रहता कि ठीक वैसा ही हुआ है, या नहीं। कितना सुन्दर बना है, उसी को घूम-फिर कर देखता है और कूँची चलाती है। अरी टिया, सुमोहन कारीगर ने क्या से क्या कर दिया है, तू देख पाती है। उसको याद है वही धूल लपेटा हुआ दुबला मलिन त्रिवेणी घाटवाला चेहरा।

टिया ने कहा—अब मुझे खेद नहीं रहा मोहन। मेरी मूर्तियाँ हजार-हजार बिकें। तुम्हें बहुत रुपये मिलें। मैं जान गयी कि तुम्हारे मन में इससे भी सुन्दर मेरा रूप है। अब मुझे खेद नहीं है, खेद नहीं है, खेद नहीं है। तुम्हें गाना सुनाकर जाऊँ। उसने अत्यन्त मृदु स्वर में गाया—

किस रंग में रंगा कारीगर !
रंग की घटा मन लगे, मन जर-जर !
काले रंग में इतनी शोभा—
आगे तो जानता न कोई
उस रंग के परस से, तन काँपे थर-थर।

गाना गाती-गाती, हिलती-डुलती प्रायः नाचती-नाचती वह चली गयी। फिर नहीं आयी। हाँ, रास्ते-बाट में और कई बार भेंट हुई वह दल बाँध कर गाँव-गाँव में चूड़ी बेच कर चन्दननगर लौट आती। कई दिनों तक रहती, फिर चूड़ी संग्रह कर निकल पड़ती। जहाँ मेले लगते, वहाँ जाती। मेला खतम होने पर लौटती। टिया के कण्ठ में गाने का स्वर है। इसके अतिरिक्त उसकी पुकार सुनकर भी मलिन समझ लेता—वह जा रही है टिया। चूड़ी चाहिये—चाहिये चूड़ी। मोहन—वेशरी चूड़ी।

बोलने वाले सुग्गो को छोड़ देने से वह जैसे बीच-बीच से छत पर

या पास के पेड़ पर बैठकर अपनी सबसे प्यारी बोली बोलती है—वह भी ठीक उसी प्रकार करती है।

इसके कुछ दिन बाद—जान पड़ता है दो महीने बाद—जैसे टिया पथ भूल कर कहीं उड़ गयी। वह फिर न लौटी। रास्ते में नहीं दिखाई पड़ी, उसकी बोली सुनाई नहीं पड़ी। क्या हो गयी ?

कई दिन बाद खबर मिली। चूड़ीवालों में से एक ने हँसकर कहा—कारीगर, टिया फिर पिंजड़े में बन्दी हो गयी।

—पिंजड़े में ?

—हाँ, पिंजड़े में। गंगा के उस पार शान्तिपुर की उस ओर एक मेले में एक मनिहारी के दुकानदार ने उसे पिंजड़े में बन्द कर लिया। कई मेलों में उसके साथ भेंट हुई थी। एक शेख का लड़का है, उसने उससे विवाह करने को कहा है। टिया अनायास ही चूड़ियों की टोकरी फेंक फड़िङ्ग को छोड़कर उसके घर चली गयी।

वह निश्चिन्त हो गया। वह टिया की चिन्ता नहीं करता था, अवश्य किन्तु इस खबर से उसे जैसे शान्ति मिली। टिया ने अच्छा किया। अच्छा किया। तू सुखी हो। तुम्हारी कलकल बोली से शेख के घर जलसा जम जाय।

दूसरे ही दिन टिया का अबोध भाई फड़िङ्ग आया। टिया के चले जाने पर वह क्या करेगा ? बाप मर गया, टिया नहीं, वह कहाँ जायगा ? किसके साथ रहेगा।

—तुम मुझे रखो कारीगर। मैं खूब काम करूँगा, जो कहोगे करूँगा।

उसे कारीगर को छोड़कर कोई अपना दिखाई नहीं पड़ा। मलिन हँस कर बोला—रह, तू मेरे पास ही रह।

मनुष्य जानवरों के प्रति जैसी माया रखता है, उसी माया से उसे रखने की इच्छा हुई। इसके अतिरिक्त उसे एक आदमी की आवश्यकता है। काम करने के लिये आवश्यकता है, बात करने के लिये आवश्यकता है, और क्रोध आने पर क्रोधवश लांछना करने के लिये भी आवश्यकता है। —रह। तू ही रह।

फड़िङ्ग रह गया। अबोध जड़ बुद्धि फडिङ्ग।

दो

टिया की बात याद नहीं रही। याद करने का समय भी न रहा। उसको नये नशे ने पकड़ लिया। वह मतवाला हो गया। केवल यही नहीं, सोहन चूड़ीवाली की मूर्तियाँ थीं शीशे के शो केस में सबसे ऊपर, उसको वहाँ से हटा दिया ; दाम सस्ता कर दिया। शो केस के ऊपर कतार की कतार मूर्तियाँ सजा दीं। नया नशा, नयी मूर्तियाँ, रामकृष्ण, विवेकानन्द, देशबन्धु, रवीन्द्रनाथ।

उन्नीस सौ तीस साल। देश उस समय पागल हो उठा था। आँधी के समान हवा चल रही थी, पीपल, बरगद, शाल, सागौन से लेकर झाड़ियों के तन में समान धक्का लगा है।

आरम्भ हो गया था तीस साल का आन्दोलन। चन्दननगर ठंडा था, किन्तु हुगली, चिन्सुरा, तेलिनीपाड़ा, कोन्नगर, श्रीरामपुर में मनुष्यों के जीवन में जैसे तूफान आ गया था। मलिन ने नवद्वीप में रहते समय अवसर पाकर कुछ लिखना-पढ़ना सीख लिया था। चित्रों की पुस्तकें ही उसकी प्रधान आकर्षण थीं। चित्रोंसे कहानियाँ। पुस्तकें पाते ही वह पढ़ता।

त्रिवेणी में रघु उसे पुस्तकें देता। उन पुस्तकों में चुम्बन में खून, प्रणय में विष, राजकन्या की गुप्त कथा आदि इसी प्रकार की अनेक पुस्तकें रहती थीं। बीच-बीच में लोरियों की पुस्तकें, किन्तु वे कहानियों की लोरियाँ होती थीं। चन्दननगर में इस तूफान के समय वह समाचारपत्र पढ़ता था। पढ़ने से उसने अनेक बातें जानी हैं, अनेक बातें समझी हैं। उसको भी मतवालापन लगा था, किन्तु उस मतवालेपन में वह किस प्रकार मतवाला होगा, समझ नहीं पाया। हठात् समझ लिया कि रास्ता मिल गया—उन मूर्तियों को मत बेचे।

—कौन मूर्तियाँ ? क्यों ?

—वही डुप्ले की मूर्ति ? मत बेचो। एक दिन दुकान तोड़ दूँगा।

—क्यों ? मलिन भय नहीं करता। उस दिन भी नहीं किया, किन्तु जिज्ञासा की थी। सके मन में कुछ जैसे लग गया था। अपने आप लगा था। नहीं तो वह पूछता नहीं, हँस कर कहता—अच्छा देखा जायगा।

—क्यों उन साहबों की मूर्तियाँ बेचोगे ? तुम्हें क्या और मूर्तियाँ बनाने को नहीं मिलीं ? क्यों ? देशबन्धु की मूर्ति क्यों नहीं बनाते ? रामकृष्ण की मूर्ति क्यों नहीं बना सकते ?

मलिन ने मूर्तियाँ उठा कर साथ-साथ बक्स में रख दीं। घर लौट कर गंगाजल में फेंक दी। उनके साँचे भी। फिर देशबन्धु, रामकृष्ण, विवेकानन्द की मूर्तियाँ जुटा कर सबसे पहले विवेकानन्द की मूर्ति बनायी। पहली मूर्ति बड़ी बनायी थी इसके बाद रामकृष्ण, इसके बाद देशबन्धु। किन्तु रंगते समय रुक गया। हाथ में कूची लेकर देर तक बैठा

रहा। इसके बाद उठ कर तेजी से जाकर डुप्ले साहब की मूर्ति के सामने खड़ा हो गया। देख कर चला आया। हो गया। वह नहीं रंगेगा। कूची नहीं चलायेगा। नेत्र नहीं बनायेगा। केश भी नहीं रंगेगा। सफेद पत्थर का रंग देगा? उसने उन तैयार मूर्तियों को रख दिया। मिट्टी लाकर फिर बैठ गया। लकीरें खींच कर मिट्टी पर दाग बना कर उसने केश दाढ़ी मूछें बनायीं, कपड़े की रेखायें तैयार कीं। राम-कृष्ण देव के कन्धे पर कपड़े का आँचल काट कर निकाला। विवेकानन्द की की पगड़ी बनायी। देशबन्धु की तुरन्त जेल से लौटी हुई मूर्ति तैयार की! दाढ़ी-मूछों से भरा हुआ मुँह, सिर पर बड़े-बड़े केश, नेत्रों में चश्मा! इसके बाद बड़े परिश्रम से तैयार किया हुआ सफेद रंग लगाया। सरस्वती का सफेद रंग। मूर्तियाँ बहुत सुन्दर बनी थीं। वह बहुत देर तक रास्ते में खड़े होकर इधर से उधर देख कर खुश हुआ। ऐसा उल्लास उसे बहुत दिनों से नहीं हुआ था। शायद जीवन भर में नहीं हुआ था।

कई दिनों में ही उसकी दुकान के सामने लोग खड़े होने लगे। उन्हीं मूर्तियों को देखने के लिये। कई दिन बाद उसी लड़के ने आकर कहा— तीनों मूर्तियाँ प्रवर्तक संघ में ले चलो। मालिक लोग देखेंगे।

उस समय चन्दननगर में प्रवर्तक संघ विख्यात था।

वह पिछले साल प्रवर्तक संघ के अक्षय तृतीया के उत्सव में गया था। उसने संघ के प्रधान को देखा है। उनके अनेक नाम और अनेक कहानियाँ हैं। वहाँ के मेले में मिट्टी की मूर्तियाँ बना कर अगले समय की अनेक घटनाओं के चित्र सजा देते हैं। उसने उन मूर्तियों को देखा है। घोष पाड़े की सती माँ की दीक्षा। नवाब सिराजुद्दौला और रामप्रसाद।

तीनों मूर्तियाँ देख कर संघ के प्रधान बहुत खुश हुए। उसको बुला कर बातें कीं, अपने हाथ से लिख कर प्रमाण-पत्र दिया। उन्होंने पूछा—इतने दिनों तक अक्षय तृतीया के उत्सव में इन मूर्तियों को क्यों नहीं लाये। मलिन ने उत्तर नहीं दिया। उसी लड़के ने उत्तर दिया—पहले यह दूसरी मूर्तियाँ बनाता था। इन्हें नयी बनाया है।

—बहुत सुन्दर बनी हैं! इसके बाद प्रश्न किया—तुम्हारा नाम क्या है?

—मलिन राय।

—राय? तुम कौन जाति हो? कुम्हार या सूत्रधारों की तो राय उपाधि नहीं होती। होती है क्या?

—नहीं। सूता कुम्हार मैं नहीं हूँ। मैं ब्राह्मण हूँ। थोड़ी कठोरता के साथ उसने उत्तर दिया।

—ब्राह्मण?

—हाँ।

—अच्छा है। किन्तु तुम्हारी मूर्तियाँ तो प्रदर्शनी में भेजना उचित है।

उन्होंने उसी लड़के से कहा—श्रीरामपुर में एक प्रदर्शनी हो रही है न? वहीं भेज दो।

वह उत्साहित होकर घर लौटा। फडिङ्ग को बुलाकर रुपये देकर बोला—जा, शराब ले आ। इलायची की गन्धवाली, समझा। और सुन। एक सूते का बण्डल लाना। सूते का वण्डल। समझा।

सूते का बण्डल कातकर उसी दिन जनेऊ बनाकर पहिन लिया।

श्रीरामपुर के मेले में उसे पुरस्कार मिला। अच्छी चाँदी का पदक और प्रमाण-पत्र। केवल यही नहीं, वहीं से संयोजकों ने मूर्तियाँ कलकत्ता भेज दीं। वहाँ भी एक विशाल प्रदर्शनी हो रही थी। उसे कलकत्ता में भी पुरस्कार मिला। केवल इतना ही नहीं, तीनों मूर्तियाँ डेढ़ सौ रुपये में बिक भी गयीं।

ये रुपये और पुरस्कार लेकर वह अनमना-सा कलकत्ता से लौटा।

अबोध फडिङ्ग उसका चेहरा देख कर डर गया। क्या हुआ कारीगर?

मलिन चुपचाप बैठा रहा, कुछ उत्तर न दिया।

—मिट्टी लाओ।

फिर तीन मूर्तियाँ बनानी पड़ेंगी।

कुछ कुछ मिट्टी तैयार ही रहती है। फडिङ्ग मिट्टी लाया।

वह मिट्टी लेकर बैठ गया। मिट्टी का ताल बना तख्ते पर बैठ कर काम शुरू किया। किन्तु क्या हुआ, सब फेंक दिया। क्या होगा? चन्दननगर में कौन खरीदेगा? उसे फेंक कर रास्ते-रास्ते घूमने लगा। फडिङ्ग भय के साथ सोचने लगा कि कारीगर को क्या हो गया? जो उसको बराबर होता है, वही हुआ। वह त्रिवेणी से केवल रघु-दस्यु के भय से ही नहीं भागा था। वह तो केवल उपलक्ष्य मात्र था। उसे बहुत पहले से चन्दन नगर अच्छा लग गया था। कलकत्ता भी बहुत दिनों से अच्छा लगा है। वह बीच-बीच में कलकत्ता जाता है। चन्दननगर आकर कलकत्ता की रंग की दुकान का पता पाया था। बिलायती रंग था विलायती कूँची थी। और कुम्हार टोली में प्रतिमा भी देखने आता। थियेटर भी देख आया है।

चन्दननगर छोटा हो गया था, हजार बत्तियों के प्रकाश के सामने पच्चीस बत्तियों के प्रकाश के समान। कितने दिन वह मरी हुई बड़ी तितली खोजने जाता। वह खोजने जाता था नये रंग, नये पंखे के लिये। एक-एक तितली ऐसी मिलती है कि अवाक् हो जाना पड़ता है। इस प्रकार के रंगीन पंखे और रंगों की बहार सोच नहीं सकता। इसीलिये वह खोजता था। रात को बड़ी तितलियाँ निकलती हैं। वे प्रकाश देखकर भागी आती हैं। किन्तु उसकी दुकान पर कोई बड़ी तितली नहीं आती थी। आती तो, स्ट्राण्ड के किनारे एक मेम साहब का एक होटल है, वहाँ पर। सन्ध्या से रात भर प्रायः प्रकाश जलता। एक सौ कैण्डेल पावर की बत्तियों की कनारें। फाटक के ऊपर, मकान के ऊपर जो बत्तियाँ जलती थीं—उनमें और भी जोर था। ढाई सौ कैण्डेल पावर। सवेरे जाने पर वहीं मरी तितलियाँ मिलती थीं। असंख्य कीड़ों में दो-एक पायी जाती थीं। कलकत्ता में हजार बत्तियों, लाख बत्तियों का प्रकाश जलता है। चल रे मन, जब पंख खोला है तो चल उस लाख बत्तियों के प्रकाश की छटा की चकाचौंध में चल। इसमें अगर मरना पड़े तो वह मरना अच्छा है। चलो कलकत्ता। अगर मरना पड़े तो वह कलकत्ता जाकर मरेगा।

चन्दननगर और नहीं। उसे अच्छा नहीं लगता। चन्दननगर छोटा हो गया है, चन्दननगर सिकुड़ गया है। चन्दननगर में अँधेरा ही अँधेरा जान पड़ता है। कलकत्ता का प्रकाश नेत्रों में चमक रहा है। जायगा, वह कलकत्ता ही जायगा। रात में वह अपना संचित धन लेकर बैठ गया। गिनने लगा। तीनों मूर्तियों के दाम डेढ़ सौ रुपये समेत उसने बारह सौ रुपये संचित किये हैं। बहुत है। बहुत है।

कलकत्ता चलो।

वह और फड़िङ्ग कलकत्ता आये। मकान किराये पर लिया। चितपुर सड़क के पास बागबाजार का अन्नपूर्णाघाट है, विचाली घाट भी है उत्तर की ओर। नहर पर काशीपुर ब्रिज के दक्षिण, गैलिफ स्ट्रीट के दक्षिण की बस्ती में एक बड़े आँगन वाला मिट्टी का घर लिया। थोड़ी ही दूर दक्षिण बढ़ने पर कुम्हारटोली है। किन्तु वह कुम्हारटोली में नहीं गया। अलग, उन सबसे दूर रहेगा। उसने काम आरम्भ कर दिया। शरीर का कपड़ा उतार कर उसने फेंक दिया। साथ में फड़िङ्ग था।

अबोध होने पर भी फड़िङ्ग शरीर में खूब अपटु नहीं था। उसकी बुद्धि में अपटुता थी और बोली में जड़ता। उस समय उसकी युवावस्था थी। वह परिश्रम कर सकता था और चन्दननगर में तीन वर्ष मलिन के साथ रह कर काम भी समझ गया था, सीख लिया था। फिड़ङ्ग में एक और अद्भुत गुण उसकी निष्ठा था। काम में परिपाटी न होने से किसी प्रकार इच्छानुसार नहीं होता। भट्ठी लगाने के पहले वह मिट्टी इस प्रकार लीपता है, जैसे कर्नी से माँजी गयी है। लीपता है, देखता है और लीपता है। वह बहुत सुन्दर मिट्टी बनाता है। उसमें और भी गुण हैं—वह मलिन से प्रेम करता है। बुद्धिहीन हँसी हँस कर वह प्रायः ही कहता है—कारीगर तुम इतने चतुर और इतने अच्छे हो!

बीच-बीच में बात के अन्त में विसर्ग लगाने से जैसा उच्चारण होता है, जड़ता के कारण जोर देकर बोलने से जैसा ही उच्चारण हो जाता है। जैसे बातें धक्के खाकर छाती खोल कर चलती हैं। और दन्त्य 'स' और 'द' का उच्चारण स्पष्ट नहीं होता। अकारण या बहुत साधारण कारण पर

ही-ही कर हँसता है और अकस्मात् डर कर सबके हँसी रहित मुँहों को देख कर गम्भीर हो जाता है। काम न रहने पर चुपचाप बैठा रहता है। मुख खुल जाता है। जगत के कर्म कोलाहल, कर्म चंचलता के न रहने पर निर्जन स्थान में अकेले शिशु के समान असहाय हो जाता है। वैसे फड़िङ्ग में अनेक गुण हैं। फड़िङ्ग ही मलिन से प्रेम नहीं करता, मलिन भी उससे प्रेम करता है। फड़िङ्ग इन ढाई वर्षों के भीतर मलिन की कारीगरी के यन्त्रों के समान ही उसके लिये अपरिहार्य हो गया है। यंत्रके खो जाने पर खरीदा जाता है, तैयार किया जाता है। फड़िङ्ग नहीं मिलता, भाग्य से जुट गया है। जो वस्तु उसे अच्छी लगती है, उसको देख कर वह कहता है—कारीगर! दुकान में अच्छा जूता देख आया हूँ। तुम खरीद कर पहनो। स्त्रियों के जूते देखकर यह बात बहुधा कहता है।

सस्ता भोजन खरीद कर उसके आगे का भाग मलिन के सामने रख कर कहता है— खाओ कारीगर!

साधारण वस्तुयें—बादाम भाजा, चनाचूर, सोनपापड़ी अपने पैसे से खरीद लाता है। दोनों ने कलकत्ता का जीवन आरम्भ किया। घर-संसार, कारखाना, व्यवसाय सब। देर नहीं हुई, दोनों ने प्राणपण से परिश्रम कर कई दिनों में ही प्रारम्भ समाप्त कर दिया। उसका वह साधारण प्रारम्भ तीन वर्षों में जो हो गया था, उसे असाधारण तो नहीं कह सकते, किन्तु यह कहा जा सकता है कि उसी ओर अग्रसर हो रहा है। कम बाधा-विघ्न नहीं पड़े, किन्तु अपनी शक्ति से उन्हें पार कर गया। वह विरक्त नहीं होता, क्रोध नहीं करता, हँसकर कहता है—कुछ परवा नहीं। देखा जायगा।

आँगन में भट्ठी के धुयें के लिये पड़ोसियों ने विरक्त होकर प्रतिवाद

किया था, दरखास्त दी थी। वह यथारीति लाइसेंस लेकर धुआँ निकलने के लिये टिन की एक चिमनी बनाकर ही शान्त नहीं हुआ, उसने चिमनी के पास-पास दो और भट्ठियाँ तैयार कर डालीं। फड़िङ्ग को छोड़ और दो आदमियों को नौकर रखा। एक कारीगर, एक छोकरा। उसने कालीघाट के पटवापाड़े से कुम्हारटोली तक कई दिन अविराम घूम कर लोगों को चुना था। इच्छा हुई थी कि नवद्वीप से बड़े सिरवाले गोपेश्वर को ले आयें। किन्तु नहीं। यहाँ वह मलिन राय है। उसके गले में जनेऊ है। वह ब्राह्मण है। गोपेश्वर योगेशपाल का दिया हुआ उसका परिचय जानता है। वह परिचय मिथ्या है। वह ब्राह्मण है। उसकी माँ ब्राह्मण-कन्या थी। वह ब्राह्मण है। उसका यह रूप, उसकी ऐसी बुद्धि, उसकी इतनी प्रशंसा, वह ब्राह्मण है। वह जाति नहीं मानता। जाति कैसी? किन्तु सब जाति मानते हैं, इसलिये वह ब्राह्मण है। इसीलिये वह कुम्हारटोली नहीं जाता। वह किसी से छोटा नहीं होगा, किसी प्रकार भी नहीं होगा। इसके लिये बहुतों से झगड़े भी हो चुके हैं। मलिन पीछे नहीं हटता। झगड़े में अगर कोई घूँसा उठाता है, तो वह भी घूँसा तान कर ही रहता है। अगर कोई छुरी निकालता है, तो वह भी छुरी निकाले बिना नहीं मानता। —ठीक है आओ। तुम भी अपने हाथ से साढ़े तीन हाथ हो, मैं भी अपने हाथ से वही हूँ। जिसका हाथ माप में बड़ा है, वही जीतेगा। फड़िङ्ग भी उसके पास ही आकर खड़ा हो जाता, हाथ में मिट्टी तोड़नेवाली लकड़ी की हथौड़ी लेकर। वह खड़ा होकर ही शान्त न होता, वरन् हथौड़ी नचाता है, यह उसका अभ्यास है।

झगड़ा भी हुआ है और मेल भी हुआ है। मेल ही अधिक हुआ है।

उसके अनेक मित्र हो गये हैं। कर्मयोग से ही उसका मित्रभाग्य बहुत प्रसन्न हो गया है। उसके अनजाने में ही हो गया है, वह स्वयं ठीक-ठीक समझ नहीं सका। एक वर्ष में ही उसकी मूर्तियों ने जो प्रशंसा और आदर पाया था, उसी का सूत्र पकड़ कर उसके पास अनेक लोग आये। मूर्ति बनानी होगी। फोटो लाकर दे जाते। एक दिन बुलाहट हुई कालेज स्ट्रीट के कमर्शियल म्यूजियम से। माडल तैयार करने होंगे। अनेक प्रकार के माडल। अधिकारी ने सामने चित्र रख दिया। मकान के कमरे-कमरे में घूम-घूम कर मलिन ने देखा। कमरे-कमरे में अनेक चित्र टंगे हुए थे। जिसप्रकार के सब मनुष्य विचित्र हैं, उसी प्रकार उनके चित्र भी अद्भुत हैं। ये अलाहदा मनुष्य हैं, इनकी बात अलाहदा है, मन का रंग अलाहदा है, शरीर की गन्ध अलाहदा है, सब कुछ अलाहदा। उसको बहुत अच्छा लगा था। केवल अच्छा ही नहीं लगा, कुछ ही दिनों में जीवन में जैसे नयी मिट्टी, नया जल, नया प्रकाश आ गया। नया स्वर हो गया। नया नशा। आश्चर्य है, ये केवल पुरुष ही नहीं हैं, वरन् स्त्री-पुरुषों की एक अलग जाति है। अभी तक इन्हें दूरसे देखा है, अब हठात् इनके पास चला आया है। ये सब पुरुष-स्त्रियाँ उसके लिये नहीं हैं। ये युवतियाँ भुवनपाल की बनायी हुई उस युवती की तरह नहीं है। इनके केशों से सुगन्ध नहीं निकलती, ये उसके समान स्वर में बातें नहीं बोलतीं। ये अलाहदा हैं। यह जैसे उसके नये जगत का नया जन्म है। ये सब नये जगत के नये जीव हैं। फिर भी उसकी छाती में आग धुँधुआती है किन्तु जल नहीं पाती। साहस-उल्लास की हवा नहीं चलती, उस आग को एक भींगे हुए आवरण के समान संकोच घेर लेता है। पूर्व जन्म के संस्कार के समान। उस जीवन की स्मृति उसको चमकने नहीं देती।

जलती है वह आग।

उस आग की आँच जिनके शरीरों में लगी है, उन्होंने ही उसे घेर लिया है। घर में आग लगने से मनुष्य जैसे दौड़ कर उसके सामने कूद पड़ता है, और उस आग को मिटा देना चाहता है, उसी प्रकार उन्होंने मलिन को घेर लिया है। जो हो गया, हो गया कह कर उसे नहीं छोड़ देंगे। जब आग लग गयी हो, तो जल जाय, जल कर भस्म हो जाय, इस प्रकार कह कर छोड़ देने का स्वभाव मनुष्यों का नहीं है। वह लड़ाई करता है, जल-जल कर उसे बुझाता है, धूल-बालू फेंक कर उसे दबाता है, केवल बुझाने के लिये ही नहीं करता, आग के आक्रमण को विध्वंस कर उसका बदला लेता है। आग बुझ जाने पर अंगार फेंक देता है, अधजली लकड़ी भी फेंक देता है किन्तु उन जलती लकड़ी को लेकर बहुत भूख लगने पर भी रसोई का चूल्हा नहीं जलाता। इसी प्रकार के क्रोध में उन्होंने मलिन पर आक्रमण किया है।

उसके उस मकान के आँगन में ही लोगों ने उसे घेर लिया है। उसे पीड़ा देना चाहते हैं।

कलकत्ता आने के समय से इस बीच आठ वर्ष बीत चुके हैं।

पागल की तरह चिल्ला रहा है एक वृद्ध।

वह वृद्ध है, बात से पंगु बंकिम भटचाज। चिल्ला कर कहता है—इतना पाषण्डी, इतना शैतान है तू। इतना बड़ा पाप, इतना अन्याय करने में तुझे संकोच नहीं हुआ।

मलिन ने साँप के समान फुफकार कर कहा—नहीं, मैंने अन्याय नहीं

किया है । अच्छी लगी थी, प्रेम किया। अगर मेरा खून करना चाहो, करो । खून होगा । मैंने कोई अन्याय नहीं किया ।

कुछ दूर पर एक स्त्री रो रही है। वह बंकिम भटचाज की कन्या माया है ।

तीन

संकोच के बीच जीवन की कामना लेकर वर्षा के वाष्प भरे वातावरण में धुँआ देती हुई आग की तरह जब वह भीतर ही जलकर राख होता जा रहा था, उसी समय इस वृद्ध को कन्या माया पास आयी । देखते ही घृताहुति से जैसे उसकी छाती की आग भभक उठी थी, मन ने कहा—यही है। यही है । इसी को जीवन भर खोज रहा था । माया उस समय नारी शिल्प मन्दिर में काम सीखती थी । उसी जगह उसको देखा था। शिल्प-मन्दिर के अधिकारियों ने कमर्सियल म्यूजियम के अधिकारियों द्वारा मलिन से स्त्रियों को मिट्टी की मूर्तियाँ बनाना सिखाने के लिये अनुरोध किया था । उनमें वेतन देने की सामर्थ्य नहीं थी, वह प्रतिष्ठान दान से चलता था। असहाय नारियों के कल्याण के लिये उन्हें कारीगरी सिखा कर आत्मनिर्भर बना देना उसका उद्देश्य था ।

म्यूजियम के एक अधिकारी ने उसको बुलाकर नारी कल्याण की प्रयोजनीयता और उसके प्रति प्रत्येक सामर्थ्यवान व्यक्ति के कुछ करने के दायित्व के सम्बन्ध में एक लम्बी वक्तृता देकर कहा—उन्होंने मुझ से विशेष अनुरोध किया है कि तुम वहाँ सप्ताह में तीन दिन एक-एक घण्टे के लिये जाकर काम सिखाओ ।

मलिन आनन्दपूर्वक राजी हो गया। जीवन की तृष्णा थोड़ी-सी उन्मुख हो गयी। रक्तधारा चंचल हो गयी। फिर भी उग्र लालसा जगी, ऐसा कहना उसके प्रति अविचार होगा। वह नहीं जगी। स्त्रियाँ सुन्दर होती हैं, पुरुषों से सुन्दर, महानगरी के चारों ओर नारी-रूप की शोभा दिखाई देती है। कमर्सियल म्यूजियम में इसे लेकर विचित्र बातें उसने सुनी हैं। सुना है—यह अन्याय है। शायद उसके मूल में लालसा है। मलिन की भौंहें टेढ़ी हो गयीं। साथ ही हँसी भी आयी। पृथ्वी पर पेड़ पेड़ में फल होते हैं और खेत-खेत में फसल। इसका लोभ? घर-घर में दीपक जलता है, आग जलती है, वह क्या आग जलाने की प्रवृत्ति है, या छाती की आग का संकेत है? नारियाँ सुन्दरी होती हैं, विधाता की हाट में पुरुष बल और नारी रूप है। यदि पुरुष से ही पृथ्वी चलती तो वह होती दैत्यों की पृथ्वी। महिषासुर के समान आकार—अवयव के मनुष्य भर जाते। प्रेम कहाँ रहता? वे हैं, उनको देख कर नेत्र शीतल हो जाते हैं। नेत्रों में अब भी जल हैं, नहीं तो केवल आग जलती। स्त्रियाँ जल हैं, पुरुष धूप। वे धरती की छाती ठण्डी करती हैं, नर्म कर देती हैं, इसी से पृथ्वी हरी है। नहीं तो पृथ्वी जल जाती, मरुभूमि हो जाती। किन्तु उनके सामने तो ये सब बातें नहीं कह सकता। वह नित्य सन्ध्या को चौरंगी-धर्मतल्ला जाता। मनोहारिणियों को देख कर नेत्र शीतल कर आता। बहुत समय चितपुर की ट्राम पर चढ़कर घूमने जाता। खिड़की के पास बैठकर देखते-देखते जाता, देखते-देखते लौटता। उन्हें देख कर बहिन की याद आती। बहिन अमर है, उसका मरण नहीं है।

नारी-शिल्प-मन्दिर जाकर जितना अच्छा सोचा था उतना अच्छा

नहीं लगा। नारियों में नेत्र शीतलकारक रूप नहीं है। और दस नारियों के कोमल मुँह देख कर माया लगती है, किन्तु अच्छा लगने का नशा नहीं होता। हठात् सामने आयी वही युवती माया।

उन्नीस-बीस वर्ष की युवती है। उज्ज्वल श्यामवर्ण घुँघराले केश, लम्बी आँखें, पतला शरीर, मुखमें शान्त रूपके मध्यमें दीप्ति है। माया काले फीते की पाढ़वाली सफेद साड़ी पहनती है। शरीर के ब्लाउज के हाथ पर पतला बार्डर है। हाथ में दो जोड़ी चूड़ियाँ। सोने की नहीं, सोने के पत्तेे में मढ़ी हुई, माथे पर सिन्दूर नहीं। माया को देख कर मलिन का मन प्रसन्न हो गया। व्यग्र हो उठा—यही है! यही है वह युवती! वह युवती, वही नयी युवती, जिसे उसने देखा है। उनकी जाति की है, किन्तु उनकी तरह दूर नहीं है; यह युवती दीप्त है, किन्तु इसमें उतना उत्ताप नहीं है। उनके समान उज्ज्वल नहीं है, किन्तु स्निग्ध रूप से प्रसन्न है। इसकी भी मार्जना है, किन्तु उनकी मार्जना में वह हाथ नहीं लगा सकता। उस पालिश की महार्घता मलिन को संकुचित कर देती है। इसकी मार्जना और पालिश नहीं है, जो कुछ है, मलिन उसका मूल्य जानता है। वह उसे दे भी सकता है। वह उसको बहुत अच्छी लगी।

माया जामा काटना और सीना सीखती, सुईकारी और ऊन के काम सीखती। उस दिन अर्थात् जिस दिन मलिन ने सिखाने का काम प्रारम्भ किया, उस दिन वह उसके क्लास के अन्त में उसके कमरे के सामने से जाते-जाते रुक गयी। मलिन अपनी दुकान से मूर्तियाँ ले गया था। उन्हें टेबिल पर सजा कर रखा। मिट्टी के काम बहुत स्त्रियाँ नहीं सीखतीं। जो सीखती थीं वे भी बाजार से खरीदे हुए घड़े, पात्र आदि पर रंग

करना सीखती थीं। काम पुराना था, किन्तु इस समय—उस समय सन् १९३८-३९ ई० थी—के शिल्पियों ने उसे नया चेहरा दिया था। विशेष कर यामिनीराय ने। बागबाजार में राय साहब का मकान मलिन के मकान के निकट न होने पर भी मुहल्ले में ही था। वह अनेक दिन जाकर देख आया है। उसके साथ मलिन कच्ची मिट्टी की मूर्तियों का काम सिखायेगा। साँचा तैयार है, उससे मूर्ति बनाकर रंगना कठिन नहीं है। साँचे से नयी वस्तु प्लास्टर आफ पेरिस देकर बनायी जा सकती है। मलिन ने आजकल उसे भी सीख लिया है।

माया ने आकर अन्य नारियों के पीछे खड़ी होकर मुग्धतापूर्वक उन मूर्तियों को देखा। मलिन उसकी ओर देख कर मुग्ध हो गया। माया की दृष्टि हठात् उसकी दृष्टि की ओर पड़ गयी। वह दृष्टि देख अशान्त होकर जाने के लिये माया दरवाजे की ओर लौटी थी।

मलिन चकित हो उठा। उसने कहा - जा रही हैं? फिर कर माया ने कहा—मैं यह काम नहीं सीखती।

—नहीं सीखतीं?

—नहीं! मूर्तियाँ देख रही थी। बहुत सुन्दर हैं।

—सीखने से आप भी बना सकेंगी।

—नहीं। गर्दन हिला कर थोड़ा हँस कर, नहीं कहती हुई माया चली गयी।

दूसरे दिन गंगा स्नान का एक पर्व था। इन पर्वों पर वह गंगा घाट पर मूर्तियाँ लेकर फड़िङ्ग को बिठा देता था। बागबाजार में एक छोटी दुकान भी कर ली थी। उस दिन माया से भेंट हो गयी। माया माँ के

साथ गंगा स्नान कर लौट रही थी। माया के घुँघराले केश उस दिन खुले थे। सद्यस्नाता माया का यह रूप देख कर उसका मन और भी व्यग्र हो गया। माया ने उसकी ओर वक्र कटाक्ष से देखा, किन्तु कुछ बोली नहीं। उसने भी बोलने का साहस नहीं किया।

इसके दूसरे दिन नारी-मन्दिर से लौटते समय माया से रास्ते में भेंट हो गयी। माया भी वहीं से घर लौट रही थी। मलिन के मन में धुँधुआती आग में उस समय शिखा दीख पड़ी। मलिन की आकांक्षा कम नहीं होती, वह जीवन भर बाधा-विघ्न को हटाते चल रहा है। वह कभी नहीं रुका, रुकना उसे नहीं आता। आगे बढ़ कर उसने कहा—आप कुछ ख्याल न करेंगी? हमारे पाढ़े में ही आपका मकान है न?

माया ने एक बार उसकी ओर देखा, फिर भूमि की ओर देख कर चलते चलते बोली—मैं बागबाजर में रहती हूँ।

—यही कह रहा हुँ। कल आप को देखा था न?

—हाँ, गंगा स्नान कर लौट रही थी।

इसके बाद बात खतम हो गयी। हठात् मलिन ने कहा—आप मिट्टी का काम क्यों नहीं सीखतीं? आप बहुत अच्छा कर सकेंगी।

माया हँस पड़ी—आपने कैसे जाना कि मैं कर सकूँगी?

—आपकी उँगलियों की बनावट देख कर। आपकी उँगलियाँ खूब पतली और लम्बी हैं। यदि बड़ी मूर्ति बना सकें तो, उसका इस समय खूब आदर है।

माया ने हँस कर कहा—आपकी बनायी हुई परमहंस की मूर्ति मैंने देखी है। वास्तव में सुन्दर है।

—आप सीखिये। आप भी बना सकेंगी। मैं कह रहा हूँ।

—बना सकूँगी ?

—मैं कहता हूँ। मैं सिखा दूँगा उस दिन उसने माया का हाथ पकड़ कर उँगलियाँ देख कर कहा—बहुत सुन्दर पतली और हल्की उँगलियाँ हैं ? इसमें सबसे बड़ी बात उँगलियों का खेल है। हल्के रूप से लकीर खींच कर पतला घना खिंचाव बहुत अच्छा होगा।

माया ने मृदु आकर्षण से हाथ छुड़ा लिया। मलिन थोड़ा अप्रतिभ हो गया, उसने समझा कि हाथ पकड़ना अच्छा नहीं हुआ। माया नमस्कार कर बायीं ओर घूम कर चली गयी। वह प्रतिनमस्कार के लिये नहीं रुकी।

किन्तु दूसरे ही दिन माया क्लास में आयी, वह मिट्टी का काम सीखेगी।

मलिन ने खुश होकर कहा—आप मूर्ति बनाना सीखिये।

एक दिन बंकिम भट्टाचार्य अपनी कन्या को लेकर स्वयं उसके कारखाने में आये। उसके हाथ में एक बेंत की झोली थी। उसमें थी एक मिट्टी की मूर्ति—मूर्ति बहुत बड़ी थी, प्रायः एक फुट ऊँची। परमहंस देव की मूर्ति। माया ने बनाया है। मूर्ति को दिखाने ही नहीं लाये हैं, वरन् उसकी त्रुटियाँ दूर कर उसे निर्दोष कर देना होगा। भट्टाचार्य परमहंस के भक्त हैं। वे कन्या की बनायी मूर्ति की पूजा करेंगे और उसे रँगना होगा। नहीं तो यह मूर्ति मूर्ति-मूर्ति लगेगी। उसमें से मिट्टी मिट्टी भाव नहीं जायगा। दिव्य नेत्र से देखेंगे तभी तो।

माया लज्जित होकर मुँह झुकाये खड़ी थी। बाप की बात से उनकी शिल्पज्ञान की अज्ञानता पर उसे लज्जा लगती। बंकिम भट्टाचार्य बराबर बकते ही जा रहे थे—बातरोग हो गया है, नौकरी चली गयी है। पहले बालिकाओं के स्कूल में पण्डितगिरी करते थे और शाम-सबेरे, जितना हो सकता पुरोहिती करते थे। मकान में एक शालग्राम थे—उनको लेकर लोगों के घर क्रिया-कर्म करते थे। इच्छा थी—दोनों लड़कों को पढ़ा-लिखा कर मनुष्य बना कर शान्ति की साँस लेंगे। किन्तु—। हाथ हिला कर कहा—क्या कहते हैं? भाग्यम् फलति सर्वत्रम् न च विद्या न च पौरुषम्। एक थियेटर करता है, वह भी अपरेण्टिस, बेतन नहीं देता। और एक अड्डा मारता-फिरता है। कन्या लक्ष्मी है। उसको बचपन में मैं उसी स्कूल में पढ़ने ले जाता, जिसमें मैं पण्डिताई करता था। बुद्धि-शुद्धि अच्छी ही थी। इसपर भाग्य! फर्स्ट क्लास में पहुँची थी, किन्तु मुझे दुर्गति समा गयी! पढ़ना छुड़ा कर—।

—रहने दीजिये पिताजी ये बातें।

भट्टाचार्य ने बैठ कर कहा—खड़ा नहीं रह सकता। बात कन-कन कर रहा है।

मलिन ने व्यस्त होकर एक टिन की कुर्सी रख कर कहा—बैठ जाइये।

कुर्सी पर बैठ कर भट्टाचार्य ने कहा—बीड़ी-सिगरेट पीते हैं, दीजिये एक, आप तो ब्राह्मण हैं न?

—हाँ। ब्राह्मण।

—तो थोड़ा जल पिलाइये।

मलिन ने एक ग्लास जल ला दिया—पीजिये। जल पीने के बाद ग्लास नीचे रख कर भट्टाचार्य ने कहा—इस समय जिस काम के लिये आया हूँ, कहता हूँ, सुनिये।

मलिन अधिक सहन नहीं कर पा रहा था। उसने कहा—वह हँसने की मूर्ति नहीं है। फिर बोला—कर दूँगा। लीजिये सिगरेट पीजिये। सिगरेट पीते-पीते भट्टाचार्य ने कहा—रंग दीजियेगा। और भी बात है। महाशय, जब मैंने सुना कि माया मिट्टी का काम सीखेगी, तो आपत्ति की थी। समझते हैं न। हाँ, मैं सत्य कह रहा हूँ। वह सिलाई-कटाई सीखती थी, उसका सीखना प्रायः समाप्त हो चुका है। इस समय घूम-फिर कर दुकान से कुछ काम पाने पर परिवार में कुछ आयेगा। और मिट्टी की मूर्ति बनाने से क्या होगा? कौन बेचेगा? कितनी झंझटें हैं? मिट्टी लाओ, सुखाओ, बनाओ, फिर सुखाओ; सूखने के लिये जगह चाहिये, धूप चाहिये, इसपर अगर वर्षा हुई तो गली, गिरी तो टूटी। अनेक दिक्कतें अनेक झंझटें। किन्तु यह किसी प्रकार नहीं छोड़ेगी। आज कई महीने से यही चल रहा है। अन्त में क्रोध में कहा—बना तो कोई चीज, मेरे आगे बना। इसने परमहंस की मूर्ति बनायी। देखा, अच्छा बनायी है। मैंने अपने पाढ़े के बहुत बड़े चित्रकार राय साहब को दिखाया। वे मेरे देश के हैं। उन्होंने कहा—अच्छा है। सिखाइये। सीखने दीजिये। इसीसे उसका भविष्यत् अच्छा होगा। समझते हैं न, इसलिये उसे लाया हूँ। थोड़ा ध्यान देकर। समझते हैं न।

मलिन हँस पड़ा।—ध्यान देकर तो सिखाता हूँ। थोड़े ही दिनों में माया ने अच्छा सीख लिया है।

—और थोड़ा अधिक ध्यान दीजियेगा।

—अच्छा।

माया काठ होकर खड़ी थी। जान पड़ता है लज्जा से मरी जा रही थी। अब उसने कहा—चलिये पिता जी।

—चलता हूँ। खड़े होकर चारों ओर देख कर कहा—जान पड़ता है कि वे भट्टियाँ हैं। मूर्तियाँ पकाने के लिये? किन्तु ब्राह्मण के पुत्र होकर—। इस कुम्हार मिस्त्री के काम में कैसे रुचि हुई?

—मुझे बचपन से ही इसका शौक है।

—अच्छा है। देश कहाँ है? कृष्णनगर है न? मेरा देश बाँकुड़ा—बिष्णुपुर है, हमारे देश में गोपेश्वर बाँडुज्जे बहुत बड़े गवैये हैं, वह गायकों का घर है। वे बहुत दिनों से गाते हैं। विष्णुपुर भी ऐसा ही है। हम सब कर सकते हैं। मैं भी गाता था। बजाना भी जानता हूँ। गला नहीं था, बजाने में हाथ अच्छा था। वही कहा न, भाग्य। भाग्यम् फलति सर्वत्रम्। बचपन में पिता जी आये थे शालग्राम छाती पर झुला कर पुरोहिती का व्यवसाय करने। साथ में मुझे लाये थे। बाँकुड़ा रह कर बजाना सीखता तो इससे अच्छा होता।'

मलिन की इच्छा हो रही थी कि वृद्ध को उंगली से रास्ता दिखाकर कहे—जाइये, किन्तु माया के कारण ऐसा नहीं कर पाता था। माया सकरुण दृष्टि से उसकी ओर देख रही है, उसके मुख की प्रति रेखा का संकुचन-प्रसारण लक्ष्य कर रही है। उसने फिर दुहराया—

—चलिये पिता जी!

—चलता हूँ। तब तो आपका घर कृष्णनगर है, इसीलिये ऐसा हाथ है, अच्छा हाथ है। मेरी मूर्ति भी तब रंग दीजियेगा।

जाते समय एक और सिगरेट लेकर भट्टाचार्ज चले गये। जाते-जाते लौट कर बोले माया को कुछऔर जल्दी सिखा दीजिये। उस पर थोड़ा अधिक ध्यान दीजियेगा।

उनके चले जाने पर मलिन प्रायः व्यग्र-सा हो गया । अनन्त महाराज की याद आ गयी । पूछता है—ब्राह्मण है न ?

किन्तु नहीं । माया का बाप है । माया ने सब त्रुटियों का संशोधन कर दिया है । उसने करुण दृष्टि से देखकर सौ बार क्षमा-भिक्षा चाही है । माया के नेत्रों की उस दृष्टि ने उसके भीतर-बाहर व्याप्त होकर जैसे माया का एक रंगीन जाल फैला दी है ।

दूसरे दिन नारी-मन्दिर के क्लास में माया थोड़ा हँसी थी । वहाँ बहुत सावधान रहना पड़ता है । अन्य नारियों की तीक्ष्ण और सजग दृष्टि बचानी पड़ती है ।

नारी-मन्दिर से निकल कर कुछ दूर आने पर देखा कि माया उसकी प्रतीक्षा में खड़ी है । माया के साथ बीच-बीच में रास्ते में भेंट होती, किन्तु इस प्रकार नहीं, माया उसकी प्रतीक्षा नहीं करती । इसीलिये उसके पास आकर चारों ओर देखा और जल्दी से उसे साथ लेने पहुँचा । आज माया उसके लिये इन्तजार कर रही है । उसके आते ही माया बोली कल आपने बुरा तो नहीं माना ?

—नहीं-नहीं-नहीं । बुरा क्यों मानूँ ? वे तुम्हारे पिता जी हैं ।

—मुझे ऐसा ही लग रहा था । इसीलिये क्षमा माँगने के लिये खड़ी थी ।

—क्षमा ! नहीं । साथ ही साथ उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—मैं तुमसे प्रेम करता हूँ माया, क्षमा तुम्हारे लिये नहीं है । तुम्हारे न रहने पर मेरा सब मिथ्या है । माया !

माया के हाथ के स्पर्श से उसने समझ लिया कि वह चौंक पड़ी है। माया क्या चिल्लायेगी? नहीं। चिल्लायी नहीं। अकारण हाँफने लगी। जैसे वह जल में डूबती जा रही है, उसकी सांस रुक रही थी। हाँफते-हाँफते ही मृदु स्वर में बोली—छोड़ दीजिये।

—नहीं। मलिन ने दृढ़स्वर में कहा—वह नहीं छोड़ेगा। उसकी छाती में फिर उन्मत्त आँधी चल रही थी। जो आँधी न तो बाधा मानती है, न बन्धन मानती है, जो दुर्निवार है। मलिन को कुछ ज्ञान नहीं रहता, सब कुछ तुच्छ हो जाता है। उसके लिये प्राण तुच्छ है, अर्थ तुच्छ है, विश्व-ब्रह्माण्ड तुच्छ है। विश्व-ब्रह्माण्ड भी मिट जाता है; रहता है वह और रहता है वह, जिसे वह चाहता है।—तुमसे मैं व्याह करूँगा माया!

—मैं विधवा हूँ। मुझे छोड़ दीजिये।

मलिन चौंक पड़ा। हाथ की मुट्ठी अलग होकर अपने आप खिसक पड़ी। केवल यही नहीं। वह स्थावर की तरह खड़ा हो गया। किन्तु माया रुकी नहीं, हाथ छूट जाने पर उसे अतिक्रम कर चली गयी।

उस दिन सारी सन्ध्या वह लक्ष्यहीन होकर प्रायः विकृत मतिष्क के समान कलकत्ता के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमता फिरा। सारी रात नींद नहीं आयी। माया के न रहने पर उसका जीवन वृथा है, उसका जीवन व्यर्थ हो जायगा। विधवा? कैसी विधवा? विधवाओं का विवाह होता है। अगर न होता, तो भी क्या? वह प्रेम करता है—उसका प्रेम—विश्वग्रासी है उसका प्रेम है; वह प्रेम क्यों मानेगा? वह कुछ मानता नहीं है, कुछ समझता नहीं है, ईश्वर के स्वयं आकर कहने पर भी नहीं मानेगा। आग के अक्षर में लिखा हुआ विधान उसके सामने रख देने पर

भी वह नहीं मानेगा। वह ईश्वर को नहीं मानता। यम मृत्यु—इनको मानता है, न मानने का चारा नहीं है, उनके आकर आँख लाल कर शासन कहने पर भी वह नहीं मानेगा। वह नहीं मानेगा, माया के पाने की वासना नहीं छोड़ सकेगा। वह माया को लेकर दूर-दूरान्तर चला जायगा।

सवेरे उठकर वह गंगा के घाट पर खड़ा रहा। शायद माया आवे। कुछ ही देरमें वह अधीर हो गया। माया नहीं आयी। वह माया की गली में से होकर उसके घर के सामने से चला गया। घर का नम्बर देख कर रुक गया। दरबाजा बन्द है। पुकारेगा ?

बंकिम भट्टाचार्य से सीधे कह दे—वह विधवा माया से व्याह करेगा। उसके परिवार का सारा भार ले लेगा। किन्तु वह नहीं कर सका। खड़े रहने का भी साहस नहीं हुआ। चला गया, फिर लौट आया। फिर लौटा। साधारण मकान है। पुराने एकतल्ले दालान के सामने एक टुकड़ा आँगन है, अहाते से घिरा हुआ। हठात् ऊपर की ओर एक आर्तनाद के समान शब्द आया, उसी शब्द की ओर मुँह उठा कर देखा कि माया छत की सीढ़ियों का दरवाजा खोल कर खड़ी है। दीवार के ऊपर से केवल मुँह दिखाई दे रहा है। उसकी छाती में उथल-पुथल मच गयी। माया ने हाथ हिला कर संकेत किया—जाओ। जाओ। जाओ।

वह शिर हिलायी—नहीं, नहीं, नहीं।

माया ने इशारा किया—जाओ। और साथ ही साथ उतर कर चली गयी।

वह क्या करे ? उद्भ्रान्त की तरह बड़ी सड़क पर आकर खड़ा हो गया। कई मिनटों के बाद ही उसके उल्लास की सीमा न रही। माया। माया निकल आयी है। सड़क पर खड़ी होकर इधर-उधर देख रही है। देखा-

देखी होते ही माया तेजी से चलने लगी। उसके हाथ में नारी-मन्दिर जाने का बेग था। मलिन ने अनुसरण किया। बहुत दूर जाकर माया खड़ी हो गयी। चितपुर की सड़क के एक ट्राम-स्टाप पर। सवेरे का समय था। उस समय भीड़ नहीं थी। मलिन आकर उसके पास खड़ा हो गया। वह हाँफ रहा था।

माया अकेली खड़ी थी। माया भी हाँफ रही थी। उसके नेत्र लाल थे और दृष्टि उद्भ्रान्त। जैसे उस पर से एक आपत्ति आकर चली गयी थी। वह बोली—चलो, कहाँ ले चलोगे ? मैं आ गयी हूँ।

—माया ! वह बोल न सका।

—चुप रहो, ट्राम आ रही है, चढ़ जाओ।

वे ट्राम पर चढ़ गये। माया पहले चढ़ी। ट्राम में बहुत कम लोग थे। उस समय १९३९ साल था। कलकत्ता के जीवन में भीड़-भाड़ नहीं थी। ट्राम में चढ़ने पर पास में बैठकर माया बोली—कालीघाट जाऊँगी। उसने एस्प्लेनेड में उतर कर कहा—चलो, थोड़ा पैदल चलें, बातचीत करें। चलते-चलते उसने कहा—कल सारी रात मैं सोचती रही।

—मैं आंगन में पागल के समान घूमता रहा। मन में आया कि रात को ही तुम्हें चिल्लाकर पुकारूँ, माया, तुम्हारे न रहने पर मैं नहीं बचूँगा। सवेरे उठकर—।

—मैं भी सारी रात जागती रही। मन के साथ युद्ध किया। हार गयी। तुम्हारे न रहने पर मैं नहीं जिऊँगी। अकस्मात् उसका गला भर आया; उसने भरे गले से कहा—तुमने मुझे यह क्या कर दिया ! उसकी आँखों से जल गिरने लगा।

—माया ! काण्ड-ज्ञान-विहीन के समान मलिन उसकी आँखें पोछने गया ।

माया दूर हट कर बोली—लोग देख लेंगे । एक गाड़ी या टैक्सी बुलाओ ।

टैक्सी में चढ़कर माया ही ने कहा—कालीघाट चलो । मलिन ने उसका हाथ अपने हाथ में खींचकर जोर से पकड़ कर कहा—आह ! तुम्हें न पाने पर मैं आत्महत्या कर लेता ! शायद—

—शायद क्या ?

—शायद तुम्हारा भी खून करता । तुम्हें छुरी मारकर अपनी छाती में मारता । मुझे नहीं जानती माया । मैं जो चाहता हूँ, उसके न मिलने पर पागल हो जाता हूँ ।

माया हँसी । उसने कहा—ऐसा जानने पर मैं न आती । मेरा खून करते, खून होने पर मुझे सुख-स्वर्ग मिल जाता । पहले ही क्यों नहीं बताया ?

मलिन भी हँस पड़ा ।

माया ने कहा—कालीघाट जा रही हूँ । तुम मेरे माथे में सिन्दूर लगा देना । हमारा व्याह होगा । उसके बाद जहाँ जाओगे चलो, मैं तुम्हारी हूँ ।

व्याह ! चौंक कर मलिन ने माया की ओर देखा । प्रश्न सुनकर माया ने भी उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखकर कहा—हाँ । नहीं तो मैं क्या—? मैं क्या व्यभिचारिणी बनूँगी ? विधवा के भी विवाह का नियम है ।

—नहीं। मैंने यह नहीं कहा है।

—तो चौंक क्यों पड़े ?

—अन्य कारण से।

—क्या ?

—व्याह क्या इस प्रकार होता है। दिन में, केवल सिन्दूर डालकर। हठात् मलिन हँस पड़ा और बोला—और सोचता था—यदि मैं तुम्हें ठगूँ—तो क्या व्याह होने पर—।

बाधा देकर माया बोली—ठगोगे ? मुँह की ओर कुछ देर तक देखकर बोली—वह तुम्हारा धर्म है। अपने धर्म में मैं ठीक रहूँगी। और व्याह इसी प्रकार होगा। सुना है, ऐसा होता है।

मलिन अन्य कारण से चौंका था। मलिन के मन में है। वह चौंका था—उसके साथ ब्राह्मण की कन्या माया का व्याह होगा ?

गाड़ी कालीघाट आकर खड़ी हो गयी। टैक्सी से उतर कर पाकेट में हाथ देकर मलिन ठंडा पड़ गया। माया ने पूछा था— क्या हुआ ?

—रुपया।

नहीं लाये ? मेरा दुर्भाग्य। उसने हँसकर अपने ब्लाउज के भीतर से एक छोटा बेग निकाली और उसमें से एक पाँच रुपये का नोट बाहर किया।

टैक्सी से उतर कर माया के रुपये से भाड़ा चुका देने के बाद पहले मलिन ने अपनी सोने की बटनें बेची। कितने रुप'। रुपयों को हिला डुलाकर बोला—इनसे कैसे काम चलेगा ?

माया ने पूछा— क्या करोगे ? प्रेम में पागल हो जाने पर ऐसा ही होता है। तुम्हारे प्रेम में मुझे अब सन्देह नहीं है।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोला— मेरे पास कुछ नहीं है। एक चीज है, एक अंगूठी। उसको बेचने से कितने रुपये मिलेंगे ! फिर उसको मैं बेच भी नहीं सकूँगा।

कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहने के बाद हठात् मलिन ने कहा— चलो। मेरे साथ आओ।

—कहाँ ?

—लौट जायेंगे और रुपये लेकर आयेंगे।

—अच्छा, मैं मन्दिर में बैठी रहती हूँ। तुम जाकर ले आओ।

—नहीं। तुम पाँच रास्ते के मोड़ पर खड़ी रहना। मैं चेक बही और रुपये ले आऊँगा।

—उतने ही समय में यदि वहाँ से मैं चली जाऊँ ? माया हँस पड़ी। मायाने उस दिन इतने ही समय में बात-चीत से रूप और रंगमें किसी जादू का स्पर्श पाया था। ट्राम स्टापेज के पास जब देखा था, उस समय उसका उज्ज्वल श्याम वर्ण मुँह जैसे सफेद हो गया था। जैसे रात भर उसके हृदय का रक्त क्षय होकर खतम हो गया था ! दोनों आँखें लाल थीं। जैसे बाकी रक्त ने उसके नेत्रों में आश्रय लिया था। दृष्टि उद्भ्रान्त थी। उसमें सर्वनाश के आतंक की विह्वलता थी। इसी बीच सब कट गया। सूर्योदय के साथ ही साथ माया में कार्तिक की प्रथम हिमरात्रि के ओस से लदे हुए लाल कमल के समान, रूप, रस, गन्ध में नयी — तेजस्पर्श लावण्य से भरा हुआ जीवन फूट उठा था। मुखरा उठी है। वह सूर्य है।

मलिन बोला— तुम कहाँ जाओगी ? यदि मरोगी, तो मैं वहाँ भी दौड़ूँगा।

मलिन घर पर अधिक रुपये नहीं रखता था। उस समय उसने बैंक में रुपये रखना सीख लिया था। चार वर्षों में उसने कम रुपये नहीं जमा किये थे। उसके पास प्रायः पाँच हजार रुपये थे।

—बाहर एक बड़ा काम मिला है। बहुत रुपयों का। बहुत सी मूर्तियाँ गढ़नी होंगी। बड़ी बड़ी मूर्तियाँ, गान्धी जी की, देशबन्धु की, मोतीलाल नेहरू की और बहुत से महापुरुषों की। मैं वहाँ जा रहा हूँ। हठात् खबर मिली है। लौटने में कुछ दिनों की देर होगी। रोज की बिक्री से तुम लोग काम चलाना।

साथ में फड़िङ्ग को लिया। चले, फड़िङ्ग चले। फड़िङ्ग को साथ ले जा रहा हूँ। और एक सूटकेस लिया। काम पक्का होते ही लौट आऊँगा। और भी लोगों की जरूरत होगी। आने पर ठीक करूँगा।

चलो मुसाफिर। नहीं, मुसाफिर नहीं। मुसाफिर अकेला होता है। इस बार वे दो हैं।

बैंक से प्रायः सब रुपये निकाल कर माया को लेकर फिर चला था। बाजार में बहुत रुपयों की वस्तुयें खरीदीं। माया बोली—

—इतनी क्यों ?

—आवश्यकता है। और भी बहुत-सी आवश्यकतायें हैं। गहने खरीदूँगा। कई सौ रुपये के गहने भी खरीदे। सब समाप्त करने में भी उसे आपत्ति नहीं थी। आपत्ति ! इसी में तो उसका सबसे बढ़कर उल्लास था।

फड़िङ्ग, विचित्र फड़िङ्ग है। वह अवाक् भी नहीं हुआ। वह मलिन का उल्लास देखकर उल्लसित हो गया। उल्लास सहित वस्तुयें ढो-ढो कर टैक्सी में रखीं।

इसके बाद मलिन के मस्तिष्क ने मूल्यवान स्विस घड़ी के समान काम किया। सुई के काँटे के समान निर्दिष्ट गति से काम करता गया। उसने अस्सी रुपये से एक घड़ी भी माया के लिये खरीद दी।

वह माल-असबाव लेकर एक होटल में उतरा। माया से कहा—घूँघट न निकालना। उसने वहाँ एक कमरा लिया। सारे रुपये अग्रिम देकर होटल के ब्वायों को बखशीश दे उसने शोरगुल मचा दिया—वे बहुत दूर से आये हैं। स्वामी-स्त्री हैं। वे बहुत दूर जायेंगे, रास्ते में एक दिन विश्राम का प्रयोजन है। कल सवेरे ही चले जायेंगे।

माया के नेत्रों में उस समय जीवन का रंग और भी गाढ़ा हो गया था। उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी, कि उसके लिये कोई इतना आयोजन करेगा। उसका जीवन रिक्त हो गया था। रंग मिटी हुई पुरानी साड़ी के समान विवर्ण, जीवन के चारों ओर प्रायः एक सौ वर्ष पुरानी दुर्गन्धवाली दीवारों का घेरा। उसके उसी जीवन के चारों ओर इतने रंगों का आयोजन इतने रंगीन, इतने आभरण सजाये हुए, इतनी सुगन्धित प्रसाधन की वस्तुयें, इतनी सुन्दर रंगीन दीवारों का घर, ऐसी खाट, ऐसा बिछौना, फर्श पर सतरञ्जी बिछी हुई, उधर ड्रेसिंग टेबिल, एक ओर एक सोफे की सेट, सिर पर पंखा, इतना सुन्दर शेड दिया हुआ प्रकाश। इसके जीवन में यह कितना आवेग है! कैसा उल्लास है! इतना मूल्य? शीशे में

अपना प्रतिबिम्ब देखकर भी वह अवाक् हो गयी। उसके दोनों गाल इतने लाल हो गये हैं! नेत्रों की दृष्टि में ऐसी माधुरी है!

वह बोली— क्यों? कल ही क्यों चले जाओगे? कहाँ जाओगे?

—कहाँ, यह तो ठीक नहीं है। किन्तु जाऊँग। तुम्हारे पिता बूढ़े हैं, किन्तु तुम्हारे भाई लोग? उनके हुँकार से पाड़ा काँपता है। वे उथल-पुथल मचा देंगे!

—नहीं। दो-तीन दिन ऐसा नहीं करेंगे। कल रात को खूब झगड़ा किया। छोटे भैया ने भोजन न पाने पर लात मारी थी। पिता को भी जबाब दिया। मैंने कहा—दिन भर परिश्रम कर दासी वृत्ति नहीं कर सकूँगी। पिता ने कहा—जाओ कहाँ रानीगिरी की गद्दी तेरे लिये बिछी है! उस समय मेरा मन हू-हू कर रहा था। मैंने समझा लिया कि तुम्हें छोड़कर मैं जी नहीं सकती। सब तीता है, सब गर्म है, सब अँधेरा है। झगड़ा बीच-बीच में क्यों, प्रायः होता रहता है। किन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ। झगड़ा अधिक होने पर मैं क्रोध कर चली जाती हूँ, कभी नारी-मन्दिर में और कभी अपनी मौसी के घर जाकर रहती । दो दिन वे नहीं खोजते। माँ रोगिणी है, उसे बारहोमास वायु का रोग है। आग की गर्मी उससे बर्दाश्त नहीं होती। माँ दो-तीन बनाती है, फिर उसे पीड़ा उठती है। वह बिछौने पर पड़ जाती है। उस समय मुझे खोजते हैं। मैं भी लौट जाती हूँ।

क्षण भर के लिये माया के मुँह पर म्लान हँसी दीख पड़ी। दूसरे ही क्षण उसका मुख उज्ज्वल हँसी से भर गया। म्लान हँसी ही जैसे बत्ती उसकाये हुए दीपक के समान उज्ज्वल हो उठी। उसने कहा— अब न

जाऊँगी। तुमने मेरा इतना सम्मान किया। रानीगिरी की गद्दी दे दी। आह, अब मैं बच गयी!

इसके बाद लुका-छिपी के खेल में छिपी हुई छोटी बालिका के समान गर्दन हिलाकर कौतुक की हँसी हँस कर बोली— दो-तीन दिन चिन्ता न करो। दो दिन तो निश्चय ही। इसके बाद भी खोजना खोजना कहने में एक दिन। इतना सुन्दर घर। इतनी सुन्दर जगह! दो दिन यहाँ रहने के बाद जहाँ होगा, जाऊँगी।

सन्ध्या होने के पहले बनारसी साड़ी पहन कर, अत्यन्त यत्न से प्रसाधन करके वे कालीघाट के लिये निकले। पुरोहित आदि तो पहले ही ठीक किये हो थे। माया को होटल में छोड़ कर मलिन जाकर ठीक कर आया था। विवाह के बाद फूल खरीद कर लौटे।

घर की सब बत्तियाँ जला कर—दरवाजा बन्द कर वे एक-दूसरो की ओर देखते हुए खड़े हो गये। स्वप्न के समान। माया के मुख पर कितनी सुन्दर हँसी थी!

विष रहने पर मलिन उस दिन पहले माया को खिलाता, फिर स्वयं खाता और उसे सबल आलिंगन में बाँध कर उस फूल के बिछौने पर सो जाता। जिससे यह नींद न टूटे। यह बन्धन जिसमें फिर न खुले! जिसमें यह आवेग खतम न हो जाय।

मलिन इसी प्रकार के उन्माद में रहना चाहता है। अन्यथा वह हाँफ उठता है, उसे लगता है जैसे उसकी मृत्यु हो रही है। वह वेदनाहत होकर केवल हाय-हाय करता है। तृष्णा समाप्त होने पर मनुष्य जीता है! क्यों वह उन्माद खतम हो जाता है?

चार

तीन दिन बाद वे चले गये। उस समय आश्विन मास का प्रारम्भ था। मलिन के ख्याल की कैफियत केवल वही दे सकता है। एक दिन गंगा के किनारे स्टैण्ड में घूमने जाकर उसने निश्चय किया, वे ट्रेन से नहीं जायेंगे, स्टीमर से जायेंगे। साथ ही साथ उसने पता लगाया कि एक स्टीमर इस समय पटना तक जाता है।

उसी स्टीमर से पटना गया

पटना में ही ठहर गया। घर छोटा और सुन्दर था। उसने थोड़ी जगह देखकर लिया। शहर के एक सिरे पर। शहर उसी ओर उस समय बढ़ रहा था। भाड़ा सस्ता। अपनी इच्छा के अनुसार सजाया। अनेक विचित्र वस्तुयें खरीद कर अपूर्व परिवेश तैयार किया।

लम्बा पेकिंग बक्स खरीद कर उस पर सफेद रंग किया। फिर उस पर उजले रंग की चादर का टुकड़ा काट कर बैठने का आसन बनाया। उसे देख कर माया की आँखों में भी विस्मय फूट पड़ा। वह भी शिल्प की शिक्षा पाती थी, उसे भी थोड़ा शिल्प-ज्ञान था। और यह अनदेखी भी नहीं थी। किन्तु कहाँ उसके मन के अनुसार तो नहीं हुआ। दीपक रखने का स्थान और वहाँ की पकाई हुई गाँव की मूर्तियाँ खरीद कर और उन पर रंग करके मलिन ने उसे अपूर्व बना दिया। ये सब अपने पाड़े के विख्यात शिल्पी राय के यहाँ देखा है। मलिन ने भी देखा है। किन्तु

माया ने नहीं सोचा था कि मलिन इतना अच्छा अनुकरण कर सकेगा। एक दिन कई चटाइयाँ खरीद लाया। माया ने कहा— बच्चों की चटाइयाँ ? और वह सब ? शोले का खेल के फूल ! क्या होंगे ये सब ?

—जरूरत पड़ेगी।

माया का मुँह लाल हो गया था। किन्तु मलिन उस ओर नहीं गया ; सोचा भी नहीं। माया का मुँह देख कर भी मन में नहीं आया। वह उसके लाल मुँह की ओर देख कर आवेश में मतवाला होकर कदम कदम आगे बढ़ा और उसे प्रगाढ़ आलिंगन में बद्ध कर लिया। इसके बाद उसे छोड़कर चटाइयों में लग गया। चारों ओर की दीवारों में चार चटाइयाँ काँटे में लटका दी। खेला-फूलों को चटाइयों के सिरों पर झुला दिया। उनकी शोभा देख कर माया बोली— तुम मैजिक जानते हो। तुम जादूगर हो।

इसके बाद काम आरम्भ किया।

मूर्ति गढ़ना आरम्भ किया, तीन जनों ने—उसने, माया ने और फड़िंग ने।

फड़िंग को मूर्तियों के काम से प्रेम था। उसने कहा—भट्ठा बनाकर मूर्ति बनाओ, मूर्तियों का काम अच्छा है।

—बना, तू ही बना। मैं साँचा लाया हूँ। भूला नहीं।

मूर्तियाँ तैयार कर वह बड़े-बड़े बंगालियों के मकानों पर दिखा आया। बिक्री शुरू हो गई। वह व्यवसाय बुद्धि में चतुर है। वह गान्धीजी, देशबन्धु, मोतीलाल की मूर्तियों के साथ बिहार के नेताओं की मूर्तियाँ बनाना नहीं भूला। उसके कमाने का रास्ता खुल गया।

उसी दिन दस मूर्तियाँ दो सौ रुपये में बेचा और वहाँ के एक

जमीदार की मूर्ति बनाने का आर्डर लेकर माया को जकड़ कर बोला—मैं कभी नहीं हारूँगा माया। मेरी जीत होगी ही।

लो, रुपये लो। तुम सोचती थी खर्च अधिक होता है, आमदनी खतम हो रही है। लो यह शुरू हो गया।

अपार आनन्द है! उसने मूर्ति बनाने का स्थान बनाया था बरामदा घेरकर, देवदास काठ के फ्रेम में कन्वास लगाकर, सफेद रंग कर एक छोटा सा स्टूडियो चमक रही थी। उसी में बीच-बीच में दोनों का कलहास्य मुखरित हो उठता। समय समय पर स्तब्धता, बीच-बीच में फुटकल बातें। कभी-कभी एक दूसरे के मुँह पर उँगली से कीचड़ लगा कर भाग जाता। वह उसके पीछे दौड़ता। पकड़ लेता। बोलता—अधिक न लगाओ। अधिक न लगाओ! मलिन कहता—हार मानता हूँ, और नहीं करूँगा। कभी कहता—खड़ी रहो,मुँह सामने कर देता हूँ। लगाओ। लगाओ।

रातें मधु-रात्रियाँ थीं। विश्व-ब्रह्माण्ड विलुप्त हो जाता। रहते केवल वे ही दोनों। माया का रूप दिन दिन आश्चर्यजनक रूप से खुल रहा था। माया जैसे मोहिनी माया हो गयी थी। विश्वसंसार में जैसे उतर आयी थी एक शरद् की पूर्णिमा की रात्रि। आश्विन की पूर्णिमा थी। उस रात वे दोनों नेत्रों में मोहांजन लगा कर जागते ही रहे—जागते ही रहे।

अकस्मात् कहीं से जैसे मेघ और तूफान आ गये। जैसे आश्विन का साइक्लोन। चारों ओर अन्धकार हो गया। खिड़कियाँ, दरवाजे जैसे टूट रहे थे। चौंक पड़ा मलिन। नशा कट गया। एक दिन माया बोली—डाक्टर को दिखाना होगा।

—क्या हुआ? शरीर खराब है? क्या हुआ है! उसने सिर पर हाथ रखा।

माया ने हँस कर मुहँ फेर कर कहा—लेडी डाक्टर को।

—लेडी डाक्टर ?

हाँ, हाँ। तुम कैसे बेवकूफ हो। वह हँसकर चली गयी।

मलिन ने अपने हाथ की लकड़ी की छुरी फेंक कर उसका अनुसरण किया और घर में आकर कुछ देर तक खड़े होकर उसकी ओर अपलक दृष्टि से देखता रहा। उसकी वह दृष्टि देख कर माया विस्मित हो गयी। फिर भी हँस कर बोली— क्या देखते हो इस प्रकार ?

—कुछ नहीं। वह बाहर चला गया।

—अच्छा न लगने का स्वर बज उठा। बहुत देर तक घूमने के बाद वह घर लौटा।

माया ने सीधे आकर कहा— क्या, शुरू हो गया ?

—क्या ?

—अनादर ? अच्छा न लगना ? बोलो, मैं अपना रास्ता जानती हूँ।

—रास्ता जानती हो ?

—गंगा के किनारे का रास्ता मैं पहचानती हूँ।

मलिन सिहर उठा। चन्दननगर का मलिन पलट गया। वह कह न सका— अभी नहीं, रात में जाना माया। जिसमें लोग न देख सकें। किसी के कान में जिससे शब्द न पड़े।

मलिन पलट गया है। वह सिहर उठा और बोला— नहीं, माया नहीं। तुमने रास्ता जानने की बात कही, कहा कि रास्ता जानती हो। मैंने समझा— तुम भाग जाओगी।

—कहाँ ? तुम्हें छोड़ कर मेरा आश्रय कहाँ है ? बाप के घर ? वह—। माया हँसी।

मलिन ने एक छोटे बच्चे की बात सोचने की चेष्टा की। बच्चा। उसका बच्चा। उसके समान सुन्दर, माया के समान नेत्र, उसके समान कूँची का हाथ, माया के समान बोली। खिल खिला कर हँसी, गाल फुला-फुला कर रोना, अण्ड-बण्ड बात, अपटु पैरों से नाचना, छोटे नर्म हाथ से क्रोध में आकर मारना! नया रंग, नयी गन्ध, नया स्वर!

इसके पहले ही किन्तु मलिन को असह्य हो उठा। माया उस समय पूर्णगर्भा थी। इस पर बीमार हो गयी थी। वह बिछौने पर पड़ी रहती। मलिन उसकी ओर ताक न पाता। दिल का क्षोभ क्रुद्ध आक्रोश फट नहीं पड़ता, वह आक्षेप के हाहाकार में फैल जाता। जाड़े की हवा में स्नान-घर की सिटकनी टूटी हुई एक खिड़की के कब्जे से गम्भीर रात्रिमें एक जोरदार कैं-कैं शब्द होता। वह शब्द सुनकर पहले मलिन को आश्चर्य हुआ—भीतर का स्वर बाहर कहाँ बज रहा है, किस प्रकार बज रहा है?

मलिन क्रोध करने की चेष्टा करता। क्रोध आने पर कर सकता है,। सब कर सकता है। उसने शराब पीना बढ़ा दिया। पहले माया ने आपत्ति की, झगड़ा किया, मलिन क्रोध नहीं कर सका; दृढ़ भाव से बोला—न पीने से नहीं चलता। उसका शरीर नहीं चल रहा है।

माया को मानना पड़ा। शराब पीकर झगड़ने की इच्छा होती। किन्तु माया के सामने जाकर शान्त हो जाता। शान्त ध्यानमग्ना के समान माया सोयी रहती। बाहर निकल कर अकारण फड़िंग को मारता।

फड़िङ्ग बाधा न देता। कहता— आह, छोड़। लगता है, खूब लगता है। माया श्रान्त पद से निकल पड़ती, क्लान्त स्वर से हँस कर कहती—छोड़ो, छि; छिः क्या करते हो? छुटकारा पाकर फड़िंग कहता— सोः ओ, लेइःट जाः ओ, हवाः कःरःता हूँ।

जीवन में जो साइक्लोन चल रहा है वह कटता नहीं है। दिन-दिन जैसे बढ़ रहा है।

फड़िंग ही उसको सुला देता है।

इसी बीच हठात् एक दिन। एक क्षण के लिये मलिन क्रुद्ध हो गया, तिक्त हो गया। एक ही खिंचाव में बन्धन जैसे टूट गया। उसने तिक्त क्रोध भरे स्वर में कहा— रोओ मत, रोओ मत,। मैं सह नहीं सकता। तुम्हारा अच्छा भाई था! क्या होगा? गुण्डे को फाँसी न होगी, तो क्या होगा! उसके लिये रोना कैसा?

माया अकस्मात् चिल्ला कर रो पड़ी थी।

उसने समाचारपत्र में पढ़ा था, समाचार पत्र में छपा है— 'हत्या के अपराध में अपराधी को प्राणदण्ड' वेश्या-गृह में मित्र-मित्र के झगड़े का शोचनीय परिणाम!

माया का छोटा भाई छने—बिमल ने अपने एक मित्र को छुरी मारी थी, मित्र साथ ही साथ मर गया। युवती चिल्लायी, उसको भी उसने छुरी मारी, किन्तु वह मरी नहीं। आसपास के लोगों ने उसे पकड़ कर पुलिस के हाथ दे दिया था। जूरियों ने सर्व सम्मति से अभियुक्त विमल भट्टाचार्य को दोषी घोषित किया। उनसे सहमत होकर न्यायाधीश ने प्राण-दण्ड का आदेश दिया है।

माया रो पड़ी। काम छोड़ कर मलिन भागा आया और पूछा—क्या हुआ?

माया ने रोते-रोते खबर दिखा दी—मेरे लिये। मेरे लिये! माया फफक-फफक कर रो रही थी।

वेश्यालय में शराब पीकर निहत व्यक्ति ने अभियुक्त बिमल भट्टाचार्य से झगड़े के प्रसंग में उसकी बहिन के सम्बन्ध में कुत्सित बातें कही थीं।

कागज फेंक कर मलिन बोला— छने का यह परिणाम होना निश्चित था। उसके लिये मत रोओ।

—मेरे लिये। मेरे लिये।

—नहीं। तुम्हारे लिये नहीं। वेश्या के घर में शराब पीकर छने किसी भी बात पर झगड़ा कर सकता था। रोओ मत। मुझे रोना अच्छा नहीं लगता। मैं रोता नहीं, रो नहीं सकता। मलिन अकस्मात् क्रोधित हो उठा— मेरी माँ मरी, मैं रोया नहीं।

माया उठकर लुढ़कते-पुढ़कते बाहर निकल रही थी। बाधा देकर मलिन ने पूछा— कहाँ जाओगी ?

—रोने। मैं रोने जाती हूँ। गंगा किनारे।

—नहीं। उस घर में जाकर रोओ। जितना रो सको, रोओ।

उसने भयंकर क्रोध में आकर उसे प्रायः ठेल कर घर में ताला बन्द कर दिया। उसे बड़ा क्रोध आया था। क्रोध आया था विश्व-ब्रह्माण्ड के ऊपर। उसने कारण नहीं समझ पाया। आज भी समझ नहीं पाया है। कुछ देर तक पतले शरीर वाली आसन्नप्रसवा माया का रोना खिड़की से देखता रहा। फिर घर से निकल पड़ा। सीधे बैंक में गया, वहाँ से रुपये निकाल कर स्टेशन गया, फिर काशी का टिकट कटा कर काशी गया। काशी से लखनऊ। चार महीने बाद पटना लौटा। पटना में घर सूना था। वहाँ उसने सुना था कि कई मास आगे माया को एक बच्ची हुई थी। माया खूब बीमार पड़ी। कुछ दिन आगे उसका भाई पत्र पाकर उसे कलकत्ता ले गया। फड़िंग साथ गया है, उन्होंने यहाँ का घर छोड़ दिया है।

कलकत्ता में घर लौट गयी है माया ?

माया को उसने पत्र लिखा। माया ने लिखा—तुम लौट आओ। मुझे फिर एक बार बचाओ। मैं स्वयं नहीं आयी। मैं उस समय बीमार थी, फड़िंग ने किसी से पिताजी को खबर दे दो। उस समय प्रसव के बाद मेरो बड़ी संकट की अवस्था थी। बड़े भैया जाकर लिवा आये। मुझे पिता जी ने प्रायः बन्दिनी बना कर रखा है। तुम मुझे बचाओ। तुम्हारे बिना मैं नहीं बचूँगी।

नहीं बचेगी ? मलिन हँसा। मरना जितना सहज है, उतना ही कठिन भी है। किन्तु पहला सत्य नहीं है, सत्य है अन्तिम। माया ! माया पर वैसा आकर्षण अब नहीं है। ना— नहीं है। छुटकारा पाकर वह बच गया है। नहीं, यह ठीक नहीं है। फिर वह क्यों लौट आया ? माया ठीक टिया के समान नहीं है। माया देह में दिवालिया हो गयी है; रूपश्री झुलस गई है, तो भी उसकी याद आती है। माया का एक मन है। है। नहीं मन। अवश्य वही सब नहीं है। माया के पास उसकी बहुत सी मूल्यवान वस्तुयें हैं। उनकी उसे आवश्यकता है। उसके रुपये-पैसे समाप्त हो आये हैं। कुछ रुपये माया के पास रहने की बात है। उसे गहना भी कम नहीं दिया है। किन्तु उन्हें वापस नहीं चाहता। वह माया का ही रहे। माया को उसने मूर्ति बनाने भी सिखाया है। वह मूर्ति बना कर खा सकती है। वह केवल प्रमाण-पत्र चाहता है, अपने प्रशंसा-पत्र चाहता है। लखनऊ घूम आया है। वहाँ अच्छी मूर्तियाँ बनती हैं। वह लखनऊ जायेगा, वहीं बसेगा। उसे अपने प्रशंसा-पत्र चाहिये।

वह कलकत्ता वापस आ गया। अपने पुराने स्थान पर उतरा। वह

नहीं जानता था कि वह स्थान है या नहीं। उसने मकान मालिक को बहुत रुपये—पाँच सौ रुपये एक साथ दिये थे। मकान में भट्टी बनाने के लिये छः मास का भाड़ा अग्रिम देने का करार था। मकान मालिक की आवश्यकता पर उसे पाँच सौ रुपये देकर भाड़ा कुछ कम करा लिया था। तीस रुपये से पचीस रुपये, बारह महीनों में साठ रुपये कम। यह सुयोग उसने नहीं छोड़ा। उसकी रसीद सूटकेस में है। गैलिफ स्ट्रीट में टैक्सी से उतर कर वह मकान में घुसा।

मकान तो है, किन्तु साँय-साँय कर रहा है, खाँय-खाँय कर रहा है! कोई आदमी नहीं है। भट्टियाँ टूट गयी हैं। चिमनी टूट कर गिर पड़ी है। दरवाजे खुले हैं। एक कमरा भीतर से बन्द है। उसने धक्का दिया—कौन है? कौन है? कौन?

फड़िङ्ग निकल आया।

—फड़िङ्ग!

—कारीगर! उसका मुँह ऐसा हो गया, कि उसको देख कर फड़िङ्ग रोया कि हँसा नहीं जान पड़ा। मलिन नहीं समझ सका कि वह रोना चाहता है या हँसना चाहता है।

—वस्तुयें उठा कर रखो। बैठने के लिये कुछ हो तो दो। माया को खबर देनी होगी।

वस्तुयें कम थीं। एक सूटकेस, एक बिछौना। बैठने के लिये कुछ नहीं था। मलिन रुमाल से झाड़ कर ड्योढ़ी पर ही बैठ गया। उसने पूछा—माया के साथ तेरी भेंट होती है? वह कैसी है?

उत्तर न पाने पर पुकारा—फड़िङ्ग। इसबार भी उत्तर न मिला। कैसा छोकरा है—?

मलिन को अशान्ति अनुभव हुई। चिल्ला न सका, क्योंकि फड़िङ्ग बहरा है।

पास के घर से कौन झाँक रहा है। —कम्पाउण्डर नृपेन।

—राय महाशय, कैसे हैं? कब आये? मर्तधाम में कब पदार्पण हुआ! बलिहारी! बलिहारी! ओ श्याम, मलिन राय, विख्यात मलिन राय—आये हैं। देखो, देखो!

मलिन को बोली का स्वर अच्छा नहीं लगा। उसने उसपर ध्यान भी नहीं दिया। एक सिगरेट सुलगायी। ठीक इसी समय हाँफते-हाँफते फड़िङ्ग लौटा। उसके पीछे वह कौन है? माया? वही रोगिणी, रूपमें शरीर में दिवालिया माया? यह माया का नया रूप है। यह कैसा रूप! विचित्र! उसकी गोद में बच्चा है!

माया रुक कर खड़ी हो गयी। उसके नेत्रों में जल और मुँह में हँसी थी। होठ काँप रहे थे। वह बात कहना चाहती है, किन्तु बोल नहीं पाती।

—माया! वह आगे बढ़ा। किन्तु पीछे जैसे कुछ गिरा। माया के नेत्रों में भय फूट पड़ा। देखते ही उसने मुँह फेर लिया और घूम कर खड़ी हो गयी। पास के मकान से नृपेन, श्याम और दो-एक और आदमी घेरा लांघ कर कूद पड़े हैं।

—खबरदार! तुम्हें काट कर तुम्हारी लाश खाल में डुबा दूँगा। बदमाश कहीं का!

मलिन भय नहीं करता। वह नहीं डरता। इसपर उसने बहुत घूम-फिर कर बहुत सीख लिया है। उनसे बहुत ऊपर उठ गया है। वह सीधा खड़ा हो गया। गम्भीर कण्ठ से बोला—आप लोग क्या चाहते हैं? खून-खराबी? उधर से एक बर्बर चिल्लाहट सुनाई पड़ी। टूटी हुई वृद्धता से जर्जरित पशु समान एक चिल्लाहट। उसके साथ मिल गया माया का कण्ठ स्वर, पिताजी! बातग्रस्त बंकिम भटचार्ज अपनी जड़ देह लेकर चिल्लाते चिल्लाते मलिन पर झपट पड़ा—शैतान! पाषण्डी! इतना बड़ा पाप-इतना बड़ा अन्याय—! पिशाच! उसके केश मुट्ठी में पकड़ लिये।

मलिन सीधा खड़ा रहा। बोला—मैंने कोई पाप—कोई अन्याय—नहीं किया है।

—किया नहीं? मेरी विधवा कन्या को—। अरे—। इतना बड़ा अन्याय!

—अच्छी लगी थी, उससे प्रेम किया था। विवाह किया है। मैंने कोई अन्याय नहीं किया है?

—तू जुआचोर है! तू जातिहीन है। तू-तू जारज है;

मलिन चिल्ला उठा—नहीं—।

—नहीं। यह देख योगेशपाल का पत्र। तेरा मकान कृष्णनगर नहीं है। तेरा घर है देवीग्राम। तेरा, तेरा—।

मलिन फिर चिल्ला उठा। नहीं। उसने एक झटका देकर अपने को छुड़ा लिया। वह झटका वृद्ध बंकिम भटचार्ज सँभाल न पाया, गिर पड़ा। क्षणभर में चार आदमी भूखों की तरह मलिन पर कूद पड़े।

माया चिल्लाकर रो पड़ी।

बंकिम भटचार्ज फट पड़ा—कुलटा, कलंकिनी, चुप रहो।

माया चिल्ला कर बोली—नहीं।

आदमी इकट्ठे हो गये! एक-दो नहीं, अनेक। उस समय अफवाह फैल गयी कि मलिन लौट आया है। लोग जानते हैं,—बंकिम भटचार्ज ने चिल्ला कर जना दिया है। उस समय छने जीता था, उसने भी उछल-कूद कर मलिन - माया की कहानी सबको जना दिया है। जो नहीं जानते थे उन्होंने भी छने की फाँसी के मामले से सारा इतिहास जान लिया। उन्हें मालूम है कि मलिन कारीगर विधवा माया को लेकर भाग गया। उन्होंने जान लिया कि मलिन ब्राह्मण नहीं है, ब्राह्मण होना तो दूर रहा, उसकी जाति ही नहीं है। वह जारज है। सारा कलकत्ता जान गया है। क्रोध से वे फटे जा रहे हैं। छने को फाँसी हो गयी है।

मलिन शैतान है! महा पाखण्डी है!

माया कुलटा है! उसको निर्लज्जता की तुलना नहीं है! मलिन को मार-पीट कर हो वे शान्त नहीं हुए। उन्होंने उसे बाँध दिया—बाँधो उसको।

माया को कइयों ने खींच कर घर में बन्द कर दिया। माया चिल्लाती थी—नहीं, नहीं, सब झूठ! सब झूठ। मेरे स्वामी हैं। मैं अपने स्वामी के साथ जाऊँगी। बस्ती के मुँह से प्रतिध्वनि उठकर माया का आर्तनाद उसी गली में—पुराने घर के अन्धकूप में विलीन हो गया।

पाँच

बन्धन में भी मलिन ने भय नहीं किया। वह रोया नहीं। दाँत से दाँत दबाकर पड़ा था। उन्होंने उसको निष्ठुर पीड़ा दी है। करें, खून करें, तो माया का भी करें। दोनों साथ जायँगे। खून करने में उसकी एक ही आपत्ति थी---माया। माया अपूर्व हो गयी है। यह एक नया रूप है! अपूर्व! कैसा रूप? कितनी शान्ति! वह फिर नये रूप पर पागल हो गया है। इस निर्यातन में भी उसने माया की ओर से भरसक आँखें नहीं फेरीं। माया चिल्लायी थी, नहीं, नहीं मेरे स्वामी हैं। मैं अपने स्वामी के साथ जाऊँगी। वे उसको पकड़ ले गये। उस समय उसके सिर का कपड़ा खिसक गया। उसके घुँघराले केश खुल कर पीठ पर बिखर गये। तीसरे पहर घर खोल कर अमल घुसा, उसके साथ मकान का मालिक भी था। अमल भटचार्जे माया का बड़ा भाई है। वह थियेटर करता है। अमल ने पास में बैठ कर चुपचाप उसका बन्धन खोल दिया। कहा---तुम चले जाओ। भागो। माया खूब रो रही है। तुमने उस पर बहुत अन्याय नहीं किया है। मैं देख आया हूँ। पटना में तुमने उसे सुख से ही रखा था। किन्तु उसे छोड़ कर इस तरह क्यों चले गये? क्या कहूँ? रोजगार नहीं करता। इसपर ब्याह कर लिया है। दोनों को पिता जी पुरोहिती कर खिलाते हैं, बहू खाना पकाती है। माँ जीवित रहने पर शायद उसे भी भात न देती। माँ के मरने पर ही उसे जगह मिली

है। मेरा रोजगार रहने पर, घर रहने पर, माया को लाकर वहाँ न रखता! तुमको भी इतनी लांछना न सहनी पड़ती! क्या करूँ? इस समय तुम चले जाओ। पाढ़े में खूब गोलमाल चल रहा है।

पहले तो मलिन अवाक् हो गया। इस व्यक्ति को इससे पहले ऐसा समझ नहीं पाया था। आगे देखा था। खाता और केश सँवारता। पाकेट में कंघी रखता, रास्ते में चलते-चलते भी केश सँवारता रहता। हा हा कर ऊँचे स्वर में हँसता। व्याख्यान देने के ढंग पर बात करता। मलिन सोचता यह भी छने की ही तरह है। किन्तु यह तो वैसा नहीं है।

मकान मालिक ने कहा—काम तो तुमने बुरा किया है। जाति नष्ट कर तुमने अन्याय किया है। छने को फाँसी हो गयी।

अमल बोला—छने का परिणाम उसके भाग्य का फल है भाई। उसके स्वभाव का फल है। और जाति लेकर तुम लोग अधिक चिल्ल-पों करते हो, वह भी व्यर्थ है। माया कहती है कि वह अपने ससुर का नाम जानती है। कहती है कि वे वास्तव में ब्राह्मण हैं।

मलिन ने बाधा देकर कहा—मेरी जाति हो या न हो, माया मेरे न रहने पर नहीं बचेगी। मैं माया को नहीं छोड़ूँगा। माया को ला दीजिये। मैं उसे लेकर चला जाऊँगा। उसके सब गहने आप लोग ले लीजिये। उसको छोड़ दीजिये।

हँस कर अमल बोला—मैं नहीं चाहता। उसका लोभ मुझे नहीं है। पिता जी को है। किन्तु ऐसा कहना भी झूठ है। माया जब घर में आ गयी है, तब सब कुछ मिल ही गया है। वह आशा तुम न करो। फिर

भी तुम यहाँ और न रहो। हमारी तरफ भी मत जाओ। पाढ़े के छोकरों को तो जानते हो। वे ताक में हैं। घर पर कड़ी नजर है। पाढ़े के लोगों ने तुम्हें छोड़ने के लिये कहा है। मनुष्य का खून नहीं किया जाता। किन्तु वह दल अभी राजी नहीं है। वे तुम्हारी और लांछना करना चाहते हैं। कोई कहता है नाक-कान काट कर छोड़ दो। कोई कहता है कि सिर मुड़ा कर गुड़ रुई लपेट दो और गले में रस्सी डाल कर रास्ते-रास्ते घुमा कर छोड़ दो। क्यों यह सब किया जाय? तुम चले जाओ। एक स्त्री के लिये—क्या काम है तुम चले जाओ। कहाँ रहोगे, मुझे ठिकाना बता देना, पीछे सुयोग पाकर माया को भेज दूँगा। यहाँ अब न रहो।

मलिन गहरी साँस लेकर बाहर जाने के लिये बढ़ा तो इधर-उधर देखा, सूटकेश नहीं है, चप्पल? एक पड़ा है और एक? खोजने पर नहीं मिला। कहीं छटक गया है। एक ही हाथ में लेकर वह चुपचाप निकल पड़ा। गली-गली से गैलिफ.स्ट्रीट पास कर वह रुक गया। उसके हाथ में एक ही चप्पल थी।

अमल हँसा। बेचारे का दिमाग ठीक नहीं है।

उस समय गंगा जल लाल हो गया। उस पार सूर्य उतर कर बाली-बेलूर के मकानों की आड़ में चला गया था। आकाश पर मेघका परदा था। उस पर से होकर सूर्य को छटा कई सीधी-लम्बी रेखाओं के समान ऊपर की ओर जाकर मिल गयी है। मेघ का परदा लाल हो गया है। उसका प्रतिबिम्ब गंगाजल में पड़ रहा था। वह उसी ओर चला। शरीर के कपड़े-जामे धूल से एकदम धूसरित हो गये हैं। भारी लगते हैं, झाड़ने से धूल झड़ती है, फट गये हैं। मुँह-सिर पर कालिमा पड़ गयी है। सिर के केश बिखर

गये हैं, उनमें भी धूल भर गयी है। उधर उसका ध्यान नहीं है। उसे लज्जा नहीं लगती, जो कुछ थी, वह बस्ती के मैदान की धूल में आज खतम हो गयी। उसके मन में दुर्जय क्रोध दुरन्त संकल्प है। वह उसी में मग्न हो गया है। इस क्रोध को मिटाने का उपाय नहीं है। कितनों से बदला लेगा? केवल एक बंकिम भट्टाचार्ज का खून कर सकता है। ऐसा कर सकता है। छुक-छिप कर उसके सूने घर में घुस कर उसको छुरी मार सकता है। और क्या कर सकता है? और कुछ नहीं कर सकता। और कर सकता है, नाम और धन अर्जन कर इसी पाड़े में माया को लेकर रह सकता है। उसे माया चाहिये। माया को पाना ही होगा। अपनी छाती में ऐसा उत्ताल आवेग कभी किसी के लिये उसने अनुभव नहीं किया था।

उसे माया चाहिये। कैसे? किस उपाय से? सोचना पड़ेगा। यही सोचता-सोचता वह गंगा की ओर जा रहा था। लाल छटा मिली हुई गंगा की ओर देख कर वह सोचेगा। इसके बाद—।

वह मरने से नहीं डरता। अन्त में गहरी रात में घुस कर माया और बंकिम को छुरी मारेगा और खुद भी मरेगा।

—का:रीग:र! का:रीग:र! का:रीग: र!

पीछे से शरीर पर हाथ रख कर फड़िङ्ग ने पुकारा—का:रीग:र! मलिन ने फिर कर देखा—फड़िङ्ग।

—कहाँ था? भाग गया था? मलिन को प्रचण्ड क्रोध आ गया। एक लात मारने की दुर्निवार इच्छा हो उठी।

उसकी दृष्टि देख फड़िङ्ग थोड़ा पीछे हट गया। वह मलिन के छोटे नेत्रों के प्रत्येक सिरे के लाल होने का संकेत समझता है। पीछे हटते-हटते

उसने कहा—भागूँगा क्यों ? भाभी की गोद से बच्ची गिरी जा रही थी। मैं गोद में लेकर हट गया था। नहीं तो मर जाती।

—कहाँ है ? बच्ची कहाँ है ?

—दे आया हूँ।

—किसको ? उनके घर में ?

—हाँ! बहू भाभी को दे आया। और किसी को नहीं दिया। कहा, मैं नहीं दूँगा। मार कर फेंक देने पर भी नहीं दूँगा। उस समय घर ले गयी। उसके हाथ में दिया। उसने तुम्हें ठहरने को कहा है। मौका पाते ही बहू को भेज देगी।

—आओ।

—कुछ खाओ। मेरे पास पैसा है। मूढ़ी तेल भाजा लाऊँ ?

मूढ़ी तेल भाजा उसने चार-पांच वर्षों से नहीं खाया है। आज गंगाके किनारे बैठ कर उसने गोग्रास निगाला। अंजलि भर कर गंगा जल पिया। झूलते चूल्हे पर पीतल की केतली रख कर जो रास्ते-रास्ते चाय बिक्री करते हैं, उन्हीं में से एक को बुला कर उसने एक भाँड़ चाय पी। वह पैसा भी फड़िङ्ग ने दिया। उसके पास रुपये-पैसे हैं। वह छिपा कर इकट्ठा करता है। वह मोटे सोलवाला बम्बई की चप्पल पहनता है। नयी चप्पल है। खरीद कर बहुत छिपा कर सोल के पास काट कर उसमें एक दस रुपये की नोट रखता है। एक चप्पल है। और भी है। हाथ में वह एक मोटा ताँबे का तागा पहनता है—उसके साथ और एक चौकोर ताबीज है। बहुत बड़ी। उसमें देवता का निर्माल्य या मन्त्र लिखा हुआ भोजपत्र नहीं है। उसमें एक सौ रुपये की एक नोट है। वह हाथ में ही रहती है, ताँबे की ताबीज

और तांबे के तार पर किसी की नजर नहीं पड़ती। उसके पास एक सौ दस रुपये हैं। किन्तु अभी रहने दो। थोड़ी आवश्यकता होने पर वह दस रुपये की नोट निकाल लेगा।

फड़िंग को मलिन ने फिर भेजा, तू जा! किसी प्रकार कह आ कि मैं यहाँ बैठा हूँ। रात भर रहूँगा। भीड़ कम होने पर अन्नपूर्णा घाट पर जाकर खड़ा हो जाऊँगा, ठीक खड़ा रहूँगा। वह जिसमें आये। जिस तरह हो, वह चली आवे? पहरा रहने पर—छत से कूद पड़ने को कहना। बच्ची रह जाय, तो रह जाय। पीछे देखा जायगा। पुलिस लेकर बच्ची ले आऊँगा।

वह जिसमें आवे। माया। माया जिसमें आवे। बच्ची न आये, नहीं सही। कितने मरे हैं, फिर होंगे। माया को न लेकर वह नहीं जायगा।

गंगा का कल्लोल बढ़ रहा है; ज्वार आ रहा है।

वह गेलिफ स्ट्रीट के पास मरहठा डिच खाल के साथ गंगा के संगम के मुँह पर, लाल गेट के पास, एक पेड़ के नीचे तने की आड़ में बैठा है। ऊपर का रास्ता पतला है, सामने लाल गेट का पतला-ब्रिज है। इधर लोग कम आते हैं। रास्ता पतला, इसपर दुर्गम है। अत्यन्त आवश्यकता न पड़ने पर कोई नही आता। कदाचित दो-चार दुस्साहसी छोकरे शौक के साथ अथवा गोपन परामर्श के लिये, आकर खड़े हो जाते हैं। वह ध्वजा के समान खड़े होते हैं। ध्वजा देखकर दूसरे के आते ही वे उतर कर पेड़ के नीचे बैठते हैं। कभी-कभी दुस्साहसी खड़े होकर ज्वार देखते हैं।

गंगा के जल में लाल रंग के साथ काला रंग मिल रहा है, पड़ रहा है, पड़ रहा है, पड़ रहा है! क्षण-क्षण में रंग पलट-पलट कर गाढ़े बैगनी से शीशे की तरह हो रहा है। और भी गाढ़ा होकर काला होते-होते सारी

गंगामें मिल गया है। केवल यहाँ-वहाँ प्रकाश जल उठा। नावों का प्रकाश। उस पार उस ओर हबड़ा स्टेशन ब्रिज से लेकर दूर पर वेलिंगडन ब्रिज तक प्रकाश की पंक्तियाँ जल रही हैं। बीच-बीच में बहुत ऊँचाई पर एक-एक प्रकाश जल रहा है। हबड़ा स्टेशन के सिरे का प्रकाश बहुत बड़ी-बड़ी जूट मिलों के सिरों के प्रकाश। अन्धकार में उनके प्रतिविम्ब काँप रहे हैं।

मलिन स्थिर दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए निस्पन्द होकर बैठा है। गंगा का कल्लोल सुन रहा है और सुन रहा है अपनी छाती का धक-धक शब्द। माया की बात सोच रहा है।

माया आयेगी। गहरी रात में अकस्मात उसे गली के मुँह पर देखेगा। चितपुर रोड पार होकर पोर्ट कमिश्नर की लाइन की मालगाड़ियों की छाया में आकर खड़ी हो जायगी। क्षण में इशारा देकर चलना आरम्भ कर देगा। किस रास्ते से? बागबाजार पकड़ कर नहीं, चितपुर पकड़ कर भी नहीं। कलकत्ता दिन-रात नहीं सोता। उसकी लाख-लाख आँखें हैं। कलकत्ता में जितने लोग हैं, उनसे दूनी हैं कलकत्ता की आँखें। एक सौ आँखें जागती ही रहती हैं। पुलिस हैं, गुण्डे हैं, हजारों प्रकाश हैं; उन रास्तों पर नहीं जायगा, उत्तर के रास्ते। उस ओर।

—काःरीगःर। फड़िंग ऊपर खड़ा होकर पुकार रहा है।

—फड़िग। यहाँ। पेड़ के नीचे।

फड़िंग बोला—बःड़ी भीःड़। लोःग खूःब बःक रःहे हैं। तुम्हें गाःलियाँ देःते हैं।

—तुमसे भेंट हुई या नहीं?

गाली देते हैं। दें। कौन गालियाँ देगा? गालीगलौज और पीड़ा पर वह ध्यान नहीं देता।

—उससे भेंट नहीं हुई। किन्तु उस घर की भाभी से भेंट हुई थी। बहुत अच्छी है! खूब चालाक :

फड़िंग ने अपनी जड़ जीभ से जो कहा, मलिन ने उसे समझ लिया।

उनके दरवाजे पर पाड़े का एक दल इकट्ठा हुआ है। वह गालियाँ दे रहा है उसको, गालियाँ दे रहा है माया को। माया ने जल स्पर्श नहीं किया। फफक-फफक कर रो रही है। दरवाजे पर स्वयं बंकिम भटचार्ज बैठा है। वही माया को गालियाँ दे रहा है। और अमल को गालियाँ दे रहा है। उसने क्यों उसे छोड़ दिया? कोई-कोई कहता है उसे पकड़ लाया जाय। कहाँ जायगा? दो-चार लोगों ने थोड़ी खोज भी की है! अमल की बहू खूब भली और चालाक है। माया के साथ फड़िंग उसके घर पन्द्रह-बीस दिन रहा था। माया रोगिणी थी। वह उस बच्ची को लिये रहता और माया की सेवा-शुश्रूषा करता। भटचार्ज को बिना पैसे के नौकर पर आपत्ति नहीं हुई।

उस समय माया की बहू भाभी उस पर बहुत ध्यान देती थी। वही फड़िंग से मीठी बातें बोलती, उसे खाना देती। जब पन्द्रह-बीस दिन के बाद माया थोड़ा स्वस्थ हो गयी, तो भटचार्ज ने उसे भगा दिया। फड़िंग ने उस खाली घर में आकर आश्रय लिया। बोझा-टोझा ढोकर पेट भर लेता था। किन्तु अवसर पाते ही उनके घर जाकर खड़ा हो जाता। माया का काम-काज कर देता। भटचार्ज बीच-बीच में उससे तम्बाकू भरवाता। पैर दबवाता। बहू अवसर पाते ही उसको बुला कर खाना देती। बहू बहुत अच्छी है। आज उसके जाते ही लोग उसे मारने पड़े थे। कहाँ है? तुम्हारा मालिक कहाँ है? उसने कहा—मैं नहीं जानता। कहाँ भाग गया।

फिर भी लोगों ने उसे पकड़ रखा था।

फड़िंग ने कहा—तब उस भाभी ने कहा—

भाभी ने कहा था—वह कैसे जानेगा? वह तो बच्ची को गोद में लेकर सबसे पहले भाग आया था। उसी ने उसे मुक्त किया था। भटचार्ज ने भी कहा—नहीं, नहीं। वह नहीं जानता। उसे छोड़ दो। अरे एक बार तम्बाकू भर ला।

तम्बाकू भरते समय चतुर भाभी ने आकर पूछा—जानता है वह कहाँ है? फड़िंग ने चुपके-चुपके सारी बातें बता दीं।

उसने उससे कहा—ठीक है। वहीं रहने को कह। मैं माया को ठीक निकाल दूँगी। ग्यारह बजे के बाद। जैसे भी हो।

यह सुन कर मलिन आश्वस्त हो गया। माया आयेगी। मन ही मन उसने परिकल्पना शुरू कर दी। सबसे पहले उसे स्वच्छ होना पड़ेगा। अपने मैले-कुचैले कपड़े की ओर देख कर फड़िंग से बोला—अपना गमछा दो।

फड़िंग का गमछा लेकर वह गंगाजल में उतरा। स्नान किया। जामा-कपड़ा साफ कर सूखने को डाल दिया। गमछा पहन कर बैठा रहा। अभी बहुत देर है। अभी साढ़े सात-आठ बजे हैं। घाट के पास कालीतल्ले में, शनि-सत्यनारायण तल्ले में और अन्नपूर्णा तल्ले में पीतल के घण्टे बज रहे हैं। अभी बहुत देर है। फड़िंग से छुरी लेकर चप्पल काटी और नोट निकाल उसके हाथ में देकर बोला—उसे भुना ला और बीड़ी ले आ। सिगरेट नहीं। सिगरेट बाद में। इस निर्जन में सिगरेट की गन्ध लोगों को कौतूहली बना देगी। जामा-कपड़ा मैला होने से अच्छा हो गया है

इस समय गमछा पहन कर और भी निरापद है। माया के भी कपड़े मैले रहने से अच्छा होगा।

माया आयेगी। अवश्य आयेगी। वह माया का मन जानता है। अपने मन से वह समझ सकता है। यम आकर यदि रास्ता रोकें, तो उनके साथ लड़ाई में हार कर वह शान्त होगी। भय से नहीं रुकेगी। घर के कोने में औंधी लेट कर नहीं रोयेगी।

फड़िंग दियासलाई बीड़ी लेकर, रुपये भुना कर लौटा। वह और लाया है अपना एक धोया कपड़ा और हाफ शर्ट। पहनो।

वाह! मलिन का काम चल गया।

टन टन शब्द कर घड़ी कहीं बज उठी। दीवार घड़ी। मलिन चंचल हो उठा। कितने बजे? माया के आने का समय नहीं हुआ? नहीं। अभी नौ बजे हैं। अभी कुल नौ बजे हैं। घाट यहाँसे दूर होने पर भी दिखाई दे रहा है। अब भी वहाँ बहुत से लोग हैं।

फड़िंग से बोला— तू अभी जा। तू अभी से वहाँ जा। एक दम घर के पास ही कहीं रहना। बाहर निकलते ही चले आना। जा।

फड़िंग के चले जाने पर मलिन स्थिर होकर खड़ा रहा। कुछ देर बाद अस्थिर के समान ब्रिज पर चढ़ गया। कैसा निष्ठुर उद्वेग है! उफ! इतने दुरन्त उद्वेग से भरी हुई प्रतीक्षा मलिन को कभी नहीं करनी पड़ी थी। कन्धे के नीचे दोनों ओर की पसलियाँ जैसे कन-कन कर रही हैं। छाती में क्या हो रहा है! वह उत्कण्ठा के उद्वेग से अस्थिर हो गया। अब उससे नहीं रहा जाता। आने के समय में बहुत देर है। फिर आंखें फाड़ कर पलक-हीन दृष्टि से देख रहा है। आंखें जल रही हैं। ग्यारह कब बजेगा?

× × × ×

ग्यारह बजा। मलिन ने एक बीड़ी मुहँ में डाली। हाथ में दियासलाई की एक काठी और बक्स था। लगाने का अवसर नहीं हुआ। विस्फारित नेत्रों से देखते हुए गिनता जा रहा था— एक-दो-तीन। ग्यारह का अन्तिम घण्टा बजते ही फस करके काठी जलाकर बीड़ी धरा ली। इसके बाद अग्रसर हुआ। आकर खड़ा हो गया पोस्ता बँधे हुए बड़े घाट के मुहँ पर। घाट प्रायः जनहीन हो गया है। ऊँचे प्रकाश के खम्भे के सिरे का प्रकाश भी जैसे स्तब्ध, स्पन्दनहीन हो गया है। मनुष्य की छाया की चंचलता चंचल नहीं है। प्रतिबिम्ब शान्त पड़ा हुआ है। केवल दो-चार कीड़े उड़ रहे हैं। वह तेजी से आगे बढ़ा। वाचमैन है, कान्स्टेबिल भी एक-दो कहीं-कहीं हैं। रहें! वे थोड़ी देर बाद ही चले जायेंगे। वह आकर घाट के रास्ते की ओर मुहँ करके बैठ गया।

नहीं। यदि बड़े रास्ते से न आकर दक्षिण की गली से आये? हाँ, उसी से आयेगी। अँधेरे-अँधेरे आकर केवल चितपुर रोड पार करते ही फिर गली का रास्ता है। वह रास्ता पकड़ कर एकदम गंगा किनारे आया। पोर्ट कमिश्नर के तार का घेरा है। वही रास्ता! छाती में आघात पर आघात पड़ रहा है। फट रही है जैसे। सारी छाती में उद्वेग की यन्त्रणा और सहन नहीं हो रही है! माया कब आयेगी? माया सफेद कपड़ों से ढँकी हुई द्रुतचारिणी रहस्य के समान किसी समय अकस्मात आ जायगी, किसी भी क्षण। घाट से उठ कर वह गली के रास्ते के मुँह पर खड़ा होगया। अंधेरी गली के मुँह पर एकाग्र निष्पलक दृष्टि से उस पार की गली के मुँह की ओर वह देखता हुआ खड़ा रहा। वह स्वयं स्थिर निस्पन्द है। उसकी

पं० मू० १२

दृष्टि निष्पलक है। वह अपनी श्वसी-प्रश्वास सुन पा रहा है। किन्तु वह भी विलुप्त हो गयी। कहाँ? कहाँ? दृष्टि के सामने सब अँधेरा, अर्थ हीन होता जा रहा है। माया! माया! माया आ रही है। कहाँ? जान पड़ता है कि उसका बाह्यज्ञान एकदम लुप्त हो गया है अथवा भ्रान्ति छा गयी है, केवल माया आ रही है, यही बात जाग रही थी, वह चौंक पड़ा!

माया!

उसके पास से वह छोटे-छोटे कदम रखती हुई तेजी से गली में चली गई। कब आयी? किन्तु इसे सोचने का अवसर नहीं है। वह भी पश्चिम की ओर घूम कर आगे बढ़ा। वह माया जा रही है। सफेद कपड़ों से ढँकी हुई तेजी से छोटे-छोटे कदम रखती हुई माया जा रही है। जैसे उड़ी जा रही है। उसे पुकारने का साहस नहीं है, उसने जान बूझ कर भी नहीं पुकारा। चले, चले। चल रही है। दाहिनी ओर उत्तर मुँह दो कतार मालगाड़ियों के बीच के अन्धेरे में होकर सफेद कपड़ा पहने हुए माया ठीक जा रही है। उत्तर की ओर जा रही है। मलिन भी चला। चल रहा है। आधी रात की शान्ति में माया का अनुसरण कर मलिन उद्भ्रांत के समान चल रहा है।

एक-एक कर लेविल क्रासिंग पार होकर गहरे अन्धेरे में रेल लाइन, स्लीपर, डगनल, सिग्नल के तार, शण्टिंग प्वाइण्ट के बाधा-विघ्न भौहों पर लाये बिना पारकर वह उसका अनुसरण कर चल रहा है। सामने एक इंजिन खड़ा है। माया उसे पार कर किस ओर जायगी? इंजिन पार होकर ब्रिज पार कर बरानगर की ओर? हाँ, उसी ओर वह घूमी। वह पार कर गई इंजिन।

मलिन भी क्षण भर में घूम पड़ा। वह इंजिन के पीछे के वैगनों के पीछे से लाइन पार करेगा।

उसी समय इंजिन ने तीक्ष्ण स्वर में सीटी दे दी। साथ ही साथ सामने की सर्चलाइट जल उठी। एक आदमी भी चिल्ला उठा—कौन है ?

उसने उछल कर मलिन को पकड़ लिया—कहाँ जायगा ?

—माया ! दबी जबान से मलिन बोला—माया !

—क्या ?

—माया जा रही है। मैं भी जाऊँगा।

कहाँ ? कौन ? कहाँ ? कोई भी तो नहीं है कहीं पर। सर्चलाइट के प्रकाश में उसके आगे का सब दिन के प्रकाश के समान स्पष्ट हो गया। कौन कहाँ है ? कोई कहीं भी नहीं है। गंगा का किनारा जनहीन है। बड़े-बड़े वृक्षों की छाया ने जैसे भयंकर बना दिया है। स्तब्धता छायी हुई है। कोई कहीं नहीं है—चारों ओर सुनसान है। केवल गंगाजल कल-कल खल-खल चल रहा है, नैश प्रकृति की क्रूर हँसी के समान। मलिन स्तम्भित होकर खड़ा रहा। शब्द के साथ एक राशि भाप फेंक कर ट्रेन हिल पड़ी। चलने लगी। लम्बी मालगाड़ी जब यांत्रिक शब्द करती हुई उसे क्रमशः पार करने लगी और जब अन्तिम गाड़ी लाल विपद् संकेत दिखा कर पार हो गयी, तो वह थर-थर काँप कर वहीं गिर पड़ा। उसमें और सहने की शक्ति नहीं थी।

माया नहीं है। उसके मन का भ्रम है। उसकी छाती की वासना उसकी छाती से निकल कर उसे भगा लायी है। मलिन की छाती में दुर्दान्त वासना है।

पञ्चम पर्व

एक

दुर्दान्त वासना की अनिर्वाण चिन्ता की आँच में झुलस जाने पर भी मनुष्य नहीं मरता, मर नहीं सकता। इस पर वह मनुष्य है, मलिनदास, मलिन कारीगर, मलिन राय। किन्तु आँच का प्रभाव कहाँ जायगा?

इस घटना के बहुत दिनों बाद इसी आँच में झुलस कर वह प्रायः प्रेत-मूर्ति बन कर कलकत्ता लौटा।

यह दिन उसके जीवन को चरम पीड़ा का दिन है। जिस दिन उस घोर रात्रि में अपने मन की वासना की चरमतम तृष्णा से अलीक माया के पीछे-पीछे दौड़ कर रेल की पहियों से थोड़ा बच कर अज्ञान हो गया था, उसके बहुत दिन बाद।

आज उन्नीस सौ पचपन साल के अक्टूबर मास की बारहवीं तारीख है। इससे कई वर्ष पहले—अड़तालीस साल के अप्रैल मास में—प्रेतमूर्ति के समान आकृति लेकर मलिन लौट आया।

उसी दिन उसी रात के सवेरे फड़िंग लौट आया था। उसीने उसे खोज निकाला। उस समय वह स्वयं चेतना लौट आने पर उठ बैठा था। किन्तु समझ नहीं पाता था कि उसे क्या हो गया है, वह यहाँ क्यों है? सब मिल कर जैसे गोलमाल हो गया। सिर की जटा में पथ खोयी

हुई गंगा के समान उसकी स्मृति उस गोलमाल में विभ्रान्त होकर गोलक धन्धे में पड़ गयी ।

फड़िंग ने उसे देखा, किन्तु उसके पास जाकर कुछ पूछा नहीं ।

—वह उस रेल लाइन पर क्यों है ? सिहरा भी नहीं । यदि ट्रेन आ जाती तो क्या होता इसे सोचकर । इस प्रकार कैसे हुआ, यह भी नहीं पूछा । जड़बुद्धि फड़िंग के सिर में ये सब प्रश्न नहीं आये । उसने केवल उसके सामने बैठ कर सकरुण भाव से कहा—आःयी नहीं । साःरी राःत खःड़ा रःहा । भोःर बेःला उःसी बहू ने कःहा वःह नहीं जाःयेगी । मैंःने दो बाःर पुःकारा, किन्तु उःसने घःर का दःरवाःजा नहीं खोःला । उःसने घःर में से एःक बाःर कहा कि मैं नहीं जाःऊँगी । एःक बार संःकेत नहीं किःया । अःब वह सो रःही है ।

—कौन ? कौन नहीं आई ? ओह ! माया !

चकित होकर सब याद पड़ गया । माया की उस छाया-मूर्ति देखने की बात याद आने पर वह सिहर उठा । फड़िंग से कहा—एक रिक्शा बुलाओ ।

रिक्शे पर सवार होकर वह बागबाजार से हवड़ा पहुँचा । हवड़ा में स्नान कर स्वस्थ होकर वह जामा कपड़ा और जूता खरीद कर पटना गया । रहने दो माया को । उसका माया का मोह कट गया है । कई दिनों तक अवश्य वह गुमशुम था । लांछना-अपमान की स्मृति, माया के न पाने के क्षोभ ने उसको मोहित कर रखा था । इसके बाद सब कुछ झाड़ कर उसने फेंक दिया । कुछ नहीं । कुछ नहीं । पहलेपहल लगता था कि वह जीवन में पहली बार हार गया है । इसके बाद उसने सिर ऊँचा कर पराजय के समस्त चिह्नों, समस्त ग्लानियों को दूर कर कहा—हार कैसी ? लड़ाई अब

भी समाप्त नहीं हुई। हार किसकी? वह फिर कलकत्ता लौट जायगा। इस समय उसे रुपये चाहिये। उसे रुपयों की आवश्यकता है। रुपये इकट्ठा कर वह कलकत्ता जायगा और वहाँ मामला करेगा। वह माया और उसकी कन्या के पाने के लिये मुकदमा करेगा। वह खुली अदालत में मुक्तकण्ठ से अपना परिचय देगा। थोड़ा झूठ भी कहेगा—इतना जानते हुए भी माया ने उससे विवाह किया था, और कहेगा—उसकी माँ ब्राह्मण-कन्या थी। वह अपने पिता का परिचय नहीं जानता, किन्तु उसके बाप ब्राह्मण थे, यह बात जानता है। अतएव वह ब्राह्मण है।

सिर ठण्डा होने पर सोचता नहीं। पहले रुपये हो जाय, फिर वह उस लोभी ब्राह्मण, उस बंकिम भटचार्जे को खरीदेगा, रुपयों के बदले लोभी ब्राह्मण अपनी कन्या का हाथ पकड़ कर पहुँचा जायगा।

उसे बहुत रुपयों की आवश्यकता है। वह नये उत्साह से काम में जुट गया।

बीच-बीच में अकेला पाकर वह सिहर उठता। उसे उस रात की छाया-माया याद पड़ जाती। क्या? उसने क्या देखा था? क्या? साक्षात् माया। भ्रान्ति? भ्रान्ति के पीछे-पीछे इतने सँकड़े मार्ग, दोनों ओर मालगाड़ियों के बीच के अन्धकार, कठोर लोहे की कतार-की-कतार लाइन, लकड़ी के स्लीपर, लोहे की कील, इन्हीं में से होकर एक मील रास्ता चला गया। आँखों के सामने से एक बार भी खोयी नहीं। एक बार भी नहीं। उसकी आँखों के सामने अब भी फिर रही है। आँख बन्द करने पर वह अब भी फिर रही है। आँख बन्द करने पर वह अब भी देख पाता है—उसी छाया-माया को। चल रही है, चल रही है। अब लीला क्रम से चल रही है।

यह क्या भूल है ? उसके मन की भूल है ? भूल नहीं, वह भूल नहीं करेगा।

वह माया, उसके मन की माया है, मन से निकल कर गंगाजल में गंगा जल में नहीं, खाल के जल में डूब गयी है। जाने दो।

उसके मन की वासना के खेल भी बीच-बीच में याद पड़ते। वह सिहर उठता। सोचता, नहीं, उससे रूप की हाट अच्छी है। वह धो देगा— बहिन के मुँह को छाप मिटा देगा। बहिन के मुँह की छाप, उनके मुँहों पर नहीं है, वरन् उसके मनमें है। वह अपने मनसे मिटा कर फेंक देगा।

उसे पटना में जमने में देर नहीं हुई। उसकी प्रतिष्ठा थी ही, उसे वापस पाने में कितनी देर लगती ? इस बार उसने पहले मूर्तियों पर ध्यान दिया। सस्ती चीजों के चलने में देर नहीं लगती। फड़िंग उसके साथ था, इसलिये उसे चिन्ता नहीं करती पड़ी। साँचा तैयार कर ही वह छुट्टी पा जाता। बाकी काम फड़िङ्ग करता। देखते-देखते दो-तीन महीनों में ही मलिनराय फिर मलिनराय हो गया। इस बार उसने बुद्धि लगा कर नया मंडल बनाया। मोगलसराय स्टेशन पर वह छोटी टोकरी में गृहस्थी का सेट, चूल्हा, कड़ाही, हाँड़ी, बाल्टी, कलछुल, जन्तु-जानवरों के सेट, पीतल के सेट, लकड़ी के सेट, चुनार में तैयार किये हुए पाइप कल के सेट देख आया था। उसे वह कल्पना पसन्द आयी। इस बार उसने उसे काम में लगाया। कमरे में, विशेष कर ड्राइंग रूम में सजाये जाने वाले विविध सेट उसने बनाये। चार-चार सेट। चार रंगे हुए छोटे घड़े, ऊपर चार हरे नारियल; चार रँग किये हुए दीयट। चार जानवर—बाघ, सिंह, भालू-भैंसा। चार शिकार—हाथी के हौदे में शिकारी और हाथी के सिर

पर बाघ ; बाघ ने कूद कर भैंसा पकड़ा है। अजगर ने हरिण को कुण्डली में जकड़ लिया है, मगर ने मछली पकड़ी है। चार कमल—कमल की डंठल और पत्तियाँ अधखिला कमल, खिला हुआ कमल, उसके ऊपर भौंरा ; चार मूर्तियाँ—वैष्णवी, कन्या-मूर्ति, मोइन चूड़ीवाली, मोहिनी माया। इस बार उसने माया की मूर्ति बनायी। वही उस रात में देखा हुआ रूप। वही छाया की माया। वह जैसे आकाश में फिर रही है। उसका एक ही पैर भूमि में लगा हुआ है। थोड़ी तिरछी होकर मुँह घुमा कर आह्वान कर रही है। ड्राइंगरूम के चारों कोनों में चार ब्राकेटों पर अपने पसन्द की चार मूर्तियाँ सजा देगा। दाम है चार रुपये, छः रुपये, आठ रुपये और दस रुपये। नारियों की मूर्तियाँ बड़े आकार की बनायी हैं, और इन मूर्तियों के रँगने में उसे अधिक समय लगता है। इन पर वह फड़िंग को कूँची फेरने न देता।

रंग जब रूप होकर फूटता है, तो मोह विस्तार करता है। उस समय केवल आँखें ही नहीं भूलतीं, मन भी मुग्ध हो जाता है। मन मुग्ध हो जाने पर फिर रक्षा नहीं। वह उसे पाने के लिये प्रण कर लेता है। अगर वह वस्तु बेची जाय तो उसके बिकने में कितनी देर लगेगी ?

कई महीनों में ही मलिन नया मलिन हो गया। वह एस० राय बन गया। पोशाक-परिच्छेद में, भाव-भंगी में, बात-चीत में नया, अब तक के मलिन के साथ अनमेल न होने पर भी बहुत अन्तर था। उसके मुँह पर एक विचित्र वक्र हँसी फूट पड़ी। वक्र व्यंग से भरी तीक्ष्ण हँसी। बात-चीत ने भी टेढ़ा रूप धारण किया; कपड़ा-पोशाक में उसने पश्चिमी ढंग पकड़ा। ढीला पाजामा, महीन पंजाबी, दाढ़ी-मूँछ रखी और केश रखे।

एक दिन एक आदमी ड्राइंग रूम का सेट खरीदने आया, उसने नारियों की मूर्तियाँ देख कर कहा—मूर्तियाँ—

—क्या ?

—क्या कहूँ ? थोड़ी रंगिनी !

—क्या—उनमें रूप से रस अधिक है ? रंगसे ढंग चढ़ा है ? वह थोड़ी टेढ़ी हँसी हँस रही है।

—हाँ, बहुत अंशों में ऐसा ही है।

—रस और ढंग ही तो मनुष्य है साहब ; नहीं तो फूल के रूप और रंग के सामने मनुष्य कैसा लगता ? सुना है—शायद राधा जन्मी थीं कमल में। राधा जितनी भी सुन्दरी और मोहिनी थीं, किन्तु पद्म के रूप और रंग से तुलना करने पर निश्चय ही पद्म की जीत होती। किन्तु रस और ढंग से ही तो राधा-राधा हुईं। कुछ ख्याल न करें, साहब मैं मूर्तियाँ बनाने वाला कारीगर हूँ। सत्य कहता हूँ, मनुष्य मुख्य है। उन दो के बाद देने पर क्या रूप फूटता है ?

भद्र पुरुष विरक्त हो गये। उन्होंने यह सेट नहीं खरीदा। नहीं वह रहने दो।

—रहने दीजिये

—आपके यहाँ देव-मूर्तियाँ नहीं हैं ?

—नहीं।

—क्यों ?

—जानता नहीं क्यों ? किन्तु बनाता नहीं।

—क्यों ? वही तो पूछ रहा हूँ।

—थोड़ी बात बढ़ रही है, साहब !

—अच्छा तो जाऊँ। कह कर सज्जन पुरुष चले जा रहे थे।

मलिन ने कहा—कुछ भी नहीं खरीदा, सर ?

—नहीं। यह सब मुझे पसन्द नहीं आयीं। अगर बना दें तो खरीदूँ।

—कौन देवता बनाना होगा। उसे एक बार दिखाइयेगा, तो बना दूँगा।

—अच्छा, मेरे पास चित्र है, दिखा दूँगा।

—चित्र, चित्र नहीं। चित्र से नहीं बनेगी। असली दिखा सकेंगे ? उसने गम्भीरतापूर्वक बात आरम्भ की थी, और समाप्त किया था टेढ़ी हँसी में।

भद्र पुरुष क्रोधित होकर चले गये। पटना में बंगालियों ने पूजा के समय प्रतिमा गढ़ने के लिये उससे अनुरोध किया। उसने हाथ जोड़ कर कहा— महाशय, मैं बिल्कुल, बकरा भेंड़ा या जो कहें वही हूँ, मुझसे खेती का काम न होगा। अगर धोबी का गदहा कहें, तब भी बुरा न मानूँगा, किन्तु मुझसे बैल का काम नहीं होगा। वह मुझे नहीं आता।

इसके बाद ही वह पटना से चला गया। सुना— नवद्वीप या कृष्णनगर से कारीगर लाने की चर्चा हो रही है। परिचय मालूम हो जाने का भय ठीक नहीं है, वह इस समय कहता; जाति-सम्बन्धी कोई बात छिड़ने पर कहता, मेरे निकट दो ही जातियाँ हैं, सद्‌जात और बदजात। मैं और जाति नहीं मानता। जनेऊ था, फेंक दिया। अब मेरी एक जात है—बदजात।

माया की बात चलने पर सीधा कहता— उससे नहीं बनी। उसी

जाति को लेकर। वह सद्‌जात और मैं बद्‌जात। बनी नहीं, अलग हो गया। बचपन में यात्रादल का गाना सुना था—

सुजन - कुजन का प्रेम कमल पर जल का फोंटा।

(फिर) जल में रहता पद्‌म फूल, वृन्त में रहता काँटा।

कहकर तीक्ष्ण हँसी हँसता। एक कन्या के ऋण में ग्रस्त ब्राह्मण ने आकर उसे ऋण-मुक्त करने के लिये पकड़ा। उसने कहा—आप नहीं जानते मेरा एक बिवाह हो चुका है।

—जानता हूँ। किन्तु सुना कि आपलोगों में छोड़-छाड़ हो गयी है।

—यह भी सुन चुके हैं?

—वही सुन कर तो आया हूं।

—मैं जाति नहीं मानता, यह भी आपने सुना है?

—किन्तु आपका जन्म तो ब्राह्मण-कुल में हुआ है?

—हाँ, उसमें भूल नही है। किन्तु मैं व्याह नहीं करूँगा।

—मेरी कन्या सुन्दरी है।

—उसका अच्छा व्याह हो जाय। गंगा की दो धारायें हैं— पद्‌मा और भागीरथी, पद्‌मा में होकर ही सारा जल बहता है, नदी के हिसाब से वही बड़ा है, किन्तु उसका नाम कीर्तिनाशा है। उसके जल में गंगा जल का कोई माहात्म्य-महिमा नह है। मेरे शरीर में ब्राह्मण का रक्त तो है, किन्तु मैं पद्‌मा के समान कुलनाशा । कन्या को जलमें फेंकना ही होगा, पूजा समाप्त हो जाने पर प्रतिमा के समान, उसे घर में रखने का उपाय नहीं है। अगर फेंकना छोड़ कर कोई उपाय न हो, तो उसे कुलनाशा के जल में

मत फेंकिये। कलकत्ता के पास की अनेक सड़ी नालियों का जल पड़ने पर भी भागीरथी, भागीरथी ही हैं। उसी भागीरथी के समान एक नदी देख कर उसी में झप से फेंक दीजियेगा।

उसकी बात सुन कर भद्र पुरुष दुखी होकर चले गये। उस दिन वह दिन भर उन्मना रहा। मन के दिगन्त में जैसे तूफान झाँक उठा। मन में आया— युवती को देखने में क्या दोष है? अगर पसन्द हो –। फिर— फिर वह।

नहीं। केवल एक बार बोल कर शान्त नहीं हुआ। बार-बार कहा था— नहीं-नहीं-नहीं-नहीं-नहीं। किन्तु तूफान में एक अपना वेग होता है, अपनी गति होती है। बाढ़ के जल के समान बाँध बाँध कर उसे रोक नहीं सकते। भूख की पीड़ा रोकी जा सकती है, निर्जीव होकर लुढ़क पड़ने पर भी मर कर छुटकारा मिल सकता है। किन्तु रक्त-माँस की भूख जिसके मन में तूफान बनकर चलने लगती है—जिसके जीवन में रुद्र का प्रसाद नहीं है, उस तीसरे नेत्र की आग का प्रसाद नहीं है, उसके हृदय में तूफान का ताण्डव होगा ही। किंतु नहीं। अब नहीं। जीवन की मूर्तियाँ अब नहीं बढ़ायेगा। उसकी अपेक्षा अपने मन से बहिन मनो का रंग धो-पोंछ कर फेंक देगा। बहिन को अब तक कहता था— मर, मर, मर, मनो बहिन तू मर जा। अब वह उसे मारेगा, उसकी हत्या करेगा। वह अपने को रूप की हाट में बेच देगा।

सन्ध्या समय मद्यपान कर एक अच्छे इक्के पर सवार होकर सिटी की ओर चला। पटना सिटी में रूप की हाट है। उसमें उससे इस मुहल्ले के एक छोर से दूसरे छोर तक घुमाने को कहा। यहाँ उसने एक आविष्कार किया,

बंगाल में मनो बहिन के मुख की छाप जिनके मुहों में देखता, ये उनसे वेश-भूषा, भाव-भंगी में भिन्न हैं। उनमें मेल नहीं है। इन पर मनो की छाप पड़ने पर भी उससे नहीं मिलती। उसने फिर शराब पी। उसकी पाकेट में एक शीशी थी। हठात् एक जगह उसने कहा— बस करो, इक्का रोको, ऊपर के बरामदे में एक तरुणी खड़ी थी। वह चढ़कर उसके घर गया। मनो बहिन मरी है। मर कर मनो बहिन ने जो पथ खोल दिया, जीवन का तूफान उसी में होकर बहने लगा।

दो

दूसरे दिन फड़िंग से बोला— सब बाँध डालो। मैं घूम आऊँ।

फड़िंग ने भय के साथ पूछा— फिर कहाँ जाओगे ?

मलिन बोला— भय नहीं। कुछ दिन में ही लौटूँगा। लखनऊ जाता हूँ, लखनऊ— इस बार लखनऊ। लखनऊ में मकान भाड़ा लेकर वह पटना लौट आया। लखनऊ चलो। वह लखनऊ शहर की मूर्तियों का बाजार जीतेगा। लखनऊ उसे अच्छा लगा है और अच्छा लगा है लखनऊ का सूरत का मुहल्ला, रूप की हाट। लखनऊ का केसरबाग, छत्रमंजिल और गोमती नदी भी अच्छी लगी है, उसे तम्बाकू की फरशी भी अच्छी लगी है। उसने दाढ़ी-मूँछ तो रखी ही है, इस बार जुल्फ भी बनायी। सिर पर टोपी पहनी। इत्र लगाया। कस्मेटिक देकर मूँछे कड़ी कीं। उसने अपना बंगाली परिचय भी मिटा दिया। दिन भर रंग, कूची, साँचा, मिट्टी की मूर्ति— रात में रूप की हाट— सूरत के मुहल्ले में जीवन का तूफान, लूट-पाट। सब झूठा है।

सब झूठा। माया उसका सब मिथ्या कर गई है।

एक-एक कर बारह वर्ष बीत गये।

हठात् एक दिन, विचित्र मलिन के भाग्य में एक विचित्र घटना घटी। उसमें अवश्य कुछ ऐसी विचित्रता नहीं थी। इस प्रकार की अनेक घटनायें घटती हैं। किन्तु उसका परिणाम मलिन के समान मनुष्य के जीवन में जो विचित्र रूप धारण कर लेता है, साधारण मनुष्य के जीवन में नहीं धारण करता। एक दिन चौकोर कोठे के मकानके बरामदे में एक सद्य-युवती नारी को देखकर वह स्तम्भित हो गया। ठीक टिया के समान। टिया के समान नहीं, पैरसे सिर तक, नखसे शिख तक आश्चर्यजनक समानता है। दिन का समय है। फिर भी तनिक भी पृथकता नहीं देख पायी। टिया सूत की माला के समान हैं, उसमें बन्धन की पीड़ा नहीं है, उस माला में बाँधने का कोई भी आग्रह भी नहीं है। वह गले में झूल कर गिर पड़ने के लिये ही होती है। कब गिर जायगी, जाना नहीं जाता। टिया वास्तव में सुग्गी है। जब तक उसका कलकल अच्छा लगे, सुनो, इसके बाद छोड़ दो, वह उड़ जायगी। वह अपने मन से आकाश में पंखा खोलने के आनन्द में चली जायगी। जीवन के तूफान में उस रोज ताण्डव उतर आया था। साथ ही साथ मलिन वहाँ जा पहुँचा। बैठ गया और पान खाने के लिये पाँच रुपये फेंक दिये।—बेगम का क्या नाम है?

—हमीदुन्निसा।

—तुम्हारा नाम तो बड़ा मीठा है। जैसे ठुमरी अलाप की एक कड़ी के समान कान में सुनाई देता है।

हमीदुन्निसा सद्य—युवती हुई है, किन्तु वह है जाति में कसबीर की

कन्या। उसकी माँ बोली— लखनऊ के शेर और हिन्दुस्तान के श्रेष्ठ शौकीन और शायर अर्थात् कवि और दरिया के समान जिसका दिल दराज था, उसी नवाब अमीरुलमुल्क वाजिदअलीशाह के राज्य में उसकी माँ पर शाह की नजर पड़ गयी। गाँव की युवती, घघरा पहन कर, सिर पर गगरी में गोमती का जल लेकर गाते-गाते घर लौट रही थी। वाजिद अली शाह ने एक उड़ता हुआ हंस देखकर अपना बाज छोड़ दिया। वह उसी बाज के पीछे घोड़ा दौड़ाते आ रहे थे। हठात् देहाती युवती का गाना सुन कर उसे अपना प्रसाद दिया। वे जैसे-तैसे घर की नहीं है। तौर-तरीका, बातचीत, अदब-कायदा किसी घर में नहीं मिलेगा। हमीदुन्निसा ने उसे प्रमाणित कर दिया, उसने जवाब दिया, जनाबआली की बातचीत जैसे ठुमरी गाने के साथ सारंगी की संगत के समान है। गानेवाले का गला जितना भी मीठा और कामदार क्यों न हो, तार का सुर छड़ी के कायदे से निर्दोष परदे की बहार बहुत अधिक सम्मान के योग्य है।

मलिन को नशे ने पकड़ लिया। जिस जंगली टिया को उसने छोड़ दिया था, वही जैसे बोलना सीख कर फिर आयी है। मलिन ने इसके बाद वहीं महफिल जमा दी। जैसे पक्की महफिल। उसे जैसे फिर मूर्ति बनानी पड़ेगी। नहीं। नयी मूर्तियों की आवश्यकता नहीं है। यह अविकल टिया है, अविकल। एक दिन अपनी चूड़ीवाली मूर्ति उसके हाथ में देख कर बोला— देखो तो। इसका ढंग तुम्हारे समान है कि नहीं।

उसने कहा— वैसा ही तो है। जनाबआली ने इसे पाया कहाँ?

—मेरी बनायी हुई है।

—हाँ ! आपका ऐसा हाथ ?

—चलो एक दिन मेरा गरीबखाना देख आओ। बहुत सी मूर्तियाँ देखोगी, जितनी इच्छा हो, ले आओगी।

—जाऊँगी। कब ? आज ही। आज ही चलिये, देख आऊँ आपका दौलतखाना; और इस मूर्ति की दौलत की दो-एक मुट्ठियाँ आँचल में भर लाऊँगी।

—जाओगी ? अच्छा। किन्तु मैं तुम्हें नये साज में सजाकर ले जाऊँगा।

—नये साज में ? हमीदन को कौतुक हो गया— उसी टिया के समान दो छोटी आँखों में ! मलिन उसी क्षण बाजार से पसन्द कर साड़ी खरीद लाया। टिया जैसी साड़ी पहनती थी, वैसी ही साड़ी, इसके बाद सजा कर उसे अविकल टिया बना दिया। और कहा— तुम्हारा नाम इस समय टिया है, है न।

इसके बाद मकान पर आया था।

दरवाजे पर धक्का देते ही फड़िंग ने दरवाजा खोल दिया।

मलिन ने उससे कौतुक से कहा— पहचानते हो ?

यही कौतुक करने के लिये वह हमीदन को टिया बना कर लाया था।

जड़बुद्धि फड़िंग यह रहस्य भेद न कर सका। इतना मेल ! वह अवाक् हो गया। वह स्तम्भित होकर खड़ा हो गया। टिया ? उसकी बहिन ? यहाँ ?— यहाँ वही तो है ! मलिन हमीदन का हाथ पकड़ कर घर में घुस गया। फड़िंग स्तम्भितहोकर खड़ा ही रहा। खड़े खड़े हमीदन खिलखिला

कर हँसना सुनकर वह घर में गया, और घर में जाते ही भयंकर क्रोध से चिल्ला उठा। मलिन ने हमीदन को छाती से चिपटा लिया है। जड़बुद्धि होने पर भी फड़िंग अब बालक नहीं है, वह है एक पूर्ण परिणत युवा, युवा क्यों— उसकी अवस्था भी अब चालीस के लगभग है। वह भयंकर चिल्लाहट के साथ मूर्ति पाँलिश करने की एक छुरी उठा कर पशु के समान मलिन पर झपट पड़ा। मलिन गिर पड़ा।

एक क्षण भर में चकित अवस्था में ही यह घटना घट गयी। फड़िंग की भयंकर चिल्लाहट से मलिन चौंक पड़ा, किन्तु इसका अनुमान कर सावधान न हो सका। जब फड़िंग टूट पड़ा— उस समय भी नहीं। उधर हमीदन भय से चिल्ला उठी। मलिन ने सोचा कि शायद फड़िंग हमीदन पर ही आक्रमण करेगा। उसने हमीदन के सामने खड़े होने की चेष्टा की। फड़िंग जब उसपर टूटा तो उसने समझा, केवल समझा ही नहीं, चकित होकर बचपन की स्मृति मन में आयी— मनो के घर में जब 'मनो सुन्दरी' कह कर आगन्तुक आते, उस समय की बात। ठीक उसी समय एक निष्ठुर आघात अनुभव किया पीठ में। जन्तु के समान फड़िंग गर्दन पर सवार है। उसके अपने शरीर से मलिन के सामने का भाग ढँक गया है। उसने छुरी के सामने पीठ ही पायी थी।

वह एक आश्चर्यजनक निष्ठुर यंत्रणा भोग रहा था। ऐसा बलवान शरीर उसके आघात से निदारुण चमक से चौंक कर जैसे लुढ़क पड़ा। विश्व-ब्रह्माण्ड भी चक्कर खाते-खाते अंधेरा होकर खो गया।

वह अज्ञान हो गया।

तीन

अस्पताल में ज्ञान लौटा था। उस समय आधी रात थी। उसे धीरे-धीरे सब याद पड़ा था। नर्स आकर उसके पास खड़ी थी। उसको खुली आँख और स्थिर चितवन देख कर उसने भय पाया था। उसकी ओर दृष्टि पड़ते ही गलिन ने थोड़ा हँस कर उसे आश्वस्त किया था।

नर्स ने पूछा—कैसा जान पड़ता है?

उसने कहा—अभी पीड़ा है। फिर भी अच्छा है। याद आने पर पानी माँग कर पिया। प्यास लगी है, जल दो, और पीड़ा कम होने की कोई औषधि दो।

पानी पीने के बाद नर्स ने उसे औषधि दी। इससे पीड़ा कम हो जायगी।

इस बार उसने पूछा—और एक बात बता सकती हो? मेरे साथ कोई युवती भी छुरी खाकर आयी है? खूब सुन्दरी युवती!

नर्स बोली—नहीं तो। तुमको जब स्ट्रेचर पर ढोकर लाया गया, उस समय मैं ही थी।

उसने निश्चिन्त होकर सोने की चेष्टा की। उसने फड़िंग की बात भी सोची। वह क्या पकड़ा गया है? उसका चिल्लाना याद है और कुछ नहीं। यदि फड़िंग पकड़ा न जा चुका हो, तो पकड़ा न जाय। वह जानता है, फड़िंग की यन्त्रणा वह जानता है। वह फड़िंग का बहुत ऋणी है। थोड़ा रक्त देने से वह नहीं चुकेगा। अन्ततः टिया के लिये फड़िंग का ऋण है। उस

पर टिया का ऋण नहीं है। वह दिया जा चुका है। किन्तु टिया के भाई फड़िंग का ऋण उस पर है।

फड़िंग की खबर पुलिस लायी। एक दिन के बाद ही एक फोटो लेकर उसके पास गयी। यह फोटो देखिये तो।

फड़िंग का ही फोटो है। रेल लाइन की पत्थर की गिट्टियों पर फड़िंग वीभत्स रूप में पड़ा हुआ है। उसके दोनों पैर कट गये हैं, ठीक घुटने के नीचे से कट गये हैं। उसके ऊपर का भाग कुचल गया है, केवल सिर ही अक्षत है।

फड़िंग ट्रेन से कट गया है।

वह पागल की तरह भागा जा रहा था। कारीगर को छुरी मार कर वह पागल-सा ही हो गया था। जान पड़ता है कि रेल लाइन पकड़ कर देश पहुँच जायगा। इसी विचार से वह लाइन-लाइन भागा जा रहा था।

इसके बाद—

उसने एक गहरी साँस छोड़ी। अब किसी का ऋण चुकाना नहीं है। रह गया केवल फड़िंग का ही।

अस्पताल में प्रतिदिन फड़िंग की बातें याद पड़तीं। विशेष कर तीसरे पहर, जब रोगियों के आत्मीय-स्वजन उन्हें देखने आते। अपने अपने प्रिय-जनों को घेर कर बैठते। बातें करते। वह अकेला चुपचाप सोया रहता और सोचता कि फड़िंग रहता तो आता। फल ले आता, फूल ले आता।

उसने संसार में अपने आदमियों का मूल्य इस प्रकार कभी नहीं समझा था। किन्तु अपना कौन है?

एक दिन उसने नर्स से कह कर पोस्टकार्ड लाकर कलकत्ता में पत्र लिखा। माया राय, केयर आफ-बंकिम भट्टाचार्य। पाँच-छः दिन अधीर बना रहा। अस्पताल के अहाते में ताँगे-इक्के का शब्द सुनकर वह उद्ग्रीव हो जाता।

कौन आया ?

सात दिन बीत गये।

माया—मायाविनी है। सब मिथ्या है। अपना कौन है ?

—सिस्टर !

—फरमाइये।

उसका लम्बा शरीर, सुन्दर गोरा रंग, बात-चीत का ढंग, और सबसे बढ़ कर उसकी सहन-शक्ति नारियों के लिये उसे प्रिय बना देती थी। जान पड़ता है उसके साथ करुणा भी थी। इस आदमी का कोई नहीं है। कोई उसे देखने नहीं आता।

—मेरी एक अर्जी है। सुन कर घृणा न करना। मुझसे असन्तुष्ट न हो, क्रोध न करो।

—नहीं-नहीं-नहीं। क्या कहते हो ?

—इस पते पर हमीदन बेगम नाम की एक बाई जी हैं। अपने जमादार-बमादार किसी को उसके पास भेज कर खबर दे दो। कहला देना कि राय साहब एक बार तुम्हें देखना चाहते हैं। मैं जमादार साहब को इक्का भाड़ा और कुछ मजदूरी भी दे दूँगा।

नर्स चुप होकर थोड़ी देर तक खड़ी रही। इसके बाद बोली—अच्छी बात है। किन्तु एक खत नहीं लिख देंगे ?

—जरूरत नहीं। मैं उर्दू में लिखना नहीं जानता। मुँह से कहने से काम चल जायगा।

नर्स चली गयी। जमादार को बुला कर उसके सामने सब समझा कर भेज दिया। किन्तु हमीदन नहीं आयी। जमादार ने आकर कहा—बेगम नहीं आ सकेगी। बड़ा भारी सेठ आया है। महफिल चल रही है। मुलाकात भी नहीं हुई।

उस समय सन्ध्या हो रही थी।

अस्पताल से बाहर के लोग चले गये हैं। उस बड़े वार्ड में कोई सोया है, कोई बैठा है, कोई भयंकर पीड़ा से कातर हो रहा है, कोई मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है, अज्ञान पड़ा हुआ है—मुँह से गों-गों शब्द निकल रहा है।

उस दिन सारी पृथ्वी का रूप उसके लिये वैसा ही हो गया।

* * * *

नहीं। पृथ्वी अस्पताल नहीं है। वहाँ थोड़ी सेवा भी है, स्वच्छता है, शृंखला है।

अस्पताल से निकल कर घर आने पर उसे पृथ्वी रात के अन्त में टूटे हुए जल्से के समान जान पड़ी।

प्रकाश बुझ रहा है। कितने बुझ चुके हैं। सब अपने-अपने घर अपना-अपना हिसाब समझ कर चले गये हैं। धूल से खाली भोजन पात्र, पान की पीच से सब गन्दा हो गया है। उसके समस्त अंग में अवसाद है। कोई नहीं, कुछ नहीं, वह अकेला सूर्योदय की प्रतीक्षा में बैठा है। खूब प्यास लगी है, किन्तु एक बूँद भी जल नहीं है। खाली शराब के बर्तन उलट-पलट गये हैं। सूर्योदय नहीं हो रहा है। शायद होगा भी नहीं।

फिर भी जीना पड़ेगा। हाँ, जीना पड़ेगा।

उसका शरीर टूट गया है। एक आघात ने उसे झकझोर कर टेढ़ा कर दिया है। जैसे भूकम्प में थोड़ा बैठ कर थोड़ा फट कर वह एक खम्भे के समान हो गया है। बहुत रक्त बहा था। वह अपने असाधारण सबल स्वास्थ्य और असीम जीवनी-शक्ति के कारण बच गया है। उसके साथ ही डाक्टरों-नर्सों को धन्यवाद देता है। पेनिसिलिन और ब्लड बैंक के रक्त ने उसे जीवित रहने में सहायता दी है।

उस दिन वह सारी रात जागता रहा। नींद नहीं आयी।

हठात् एक समय मनमें लगा—नहीं, जीवन टूटे हुए एक जलसे की रात का अन्त नहीं है,—। उसके मन में गंगा के किनारे की उसी रात की बात लाइन पर भुलाये आई। उस रात में छाया-माया ने उसको विभ्रान्त मोह-ग्रस्त कर उसी रेल लिये जाकर चलने वाले इञ्जिन के सामने फेंकना चाहा था। वह जीवन भरमाया-मरीचिका के पीछे-पीछे दौड़ता रहा है।

आश्चर्य है कि फिर भी वह जीवित है, विचित्र रूप से जीवित है।

नहीं, विचित्र रूप से नहीं। वह अपनी प्राण-शक्ति की प्रचुरता से और अपने दो और दो-चार हिसाब के ज्ञान के जोर से जी रहा है

वह उठ कर खिड़की के पास खड़ा हो गया।

सबेरा हो रहा था, उसी ओर देख कर उसने जीने का संकल्प किया। सबेरे उठ कर ही वह आदमी खोज लायेगा। फड़िङ्ग नहीं मिलेगा। फिर भी आदमी चाहिये। जो आदमी मजदूरी पर फड़िङ्ग के साथ काम करता, देहात के एक खपड़े के व्यापारी का लड़का, उसको पक्का कर रखेगा। साथ में और दो-एक आदमी लेगा। अपनी सेवा के लिये—।

हठात् मन में आया—उस नर्स को लाने से क्या होगा ?

फिर नया खेल ! फिर नई मूर्ति !

नर्स की मूर्ति बहुत सुन्दर होगी। बहुत सुन्दर !

अकस्मात् उसके शरीर में जैसे ज्वार का संकेत मिल रहा है। मस्तिष्क में उत्तेजना का संचार हो रहा है। शरीर का रक्त निकल चुका है, फिर भी जैसे ज्वार की तरंग उत्पन्न हो रही है। लहर उठ रही है।

उसको वह बहुत कुछ देगा।

उसको रुपयों का अभाव नहीं है।

इन बारह-तेरह वर्षों में एक विराट युद्ध हो गया। युद्ध का कोई चिन्ह भी उसे छू नहीं पाया। उसके काम में नहीं आया। युद्ध अब भी हुआ है। अब जर्मनी हार गया है। जापान भी हारने-हारने कर रहा है। यह देश गर्म हो उठा है। सम्भवतः एक रक्त-गंगा बहेगी। बहे। उससे उसका कुछ नहीं आता-जाता। उसने धन पाया है। उसकी बिक्री खूब हुई है। अब भी होगी। वह नर्स जो माँगेगी, वही देगा। लखनऊ के रूप की हाट में उसका बहुत धन चला गया है। अन्त में इन कई महीनों में टिया ने भी कम नहीं लिया, फिर भी इस समय भी उसके पास बहुत है।

केवल धन ही नहीं—अनेक समादर,—अनेक-अनेक प्रेम, न शेष होनेवाले जीवन का उत्ताप भी उसके पास है। उस युवती को वह मक्खन की तरह पिघला देगा।

स्नान कर खाने-पीने के बाद सज-बज कर वह तीसरे पहर ताँगे पर अस्पताल गया। साथ में अनेक मूर्तियाँ ले गया। किन्तु रास्ते से ही लौट आया।

—लौट चलो, घर पहुँचा दो, ताँगेवाले साहब।

वह बहुत थक गया है। कुछ अच्छा नहीं लगता है।

एक दिन नहीं। दिन पर दिन। किसी दिन पथ से लौटा, किसी दिन उसके साथ भेंट भी की। मूर्तियाँ दीं। कुशल पूछा। दुःख-सुख की खोज ली। चला आया। जिस उल्लास से पुरुष का मन नारी के मन में तरंग उठा देता है, वह उल्लास जैसे कहीं खो गया है। उस युवती को देख कर वह उल्लास उसे खोजने से नहीं मिलता। यही क्यों, कितने दिन वह चौक बाजार घूमा है, ऊपर के बरामदे में खड़ी सजी-बजी विलासिनियों को देखा है, किन्तु उससे भी उसका मन उल्लसित नहीं हुआ।

उसे शराब बेस्वाद जान पड़ती है। सहन नहीं होती। थोड़ी सी पीने पर ही सिर पकड़ लेती है।

तो उसे क्या अच्छा लगेगा?

उसने बाहर निकलना बन्द कर दिया। वह चुपचाप घर में बैठ कर सोचा करता।

बायें हाथ में मूर्ति और दाहिने में कूँची पकड़कर बैठे-बैठे सोचता। सोचना ठीक नहीं है, मन ही मन शून्य हो जाता। सब शून्य—भीतर-बाहर सब शून्य, आकाश, मिट्टी, प्रकाश, अन्धकार, मनुष्य, जन सब अर्थहीन। उनकी आँखों के सामने रहना न रहना सब समान।

इसी बीच-बीच में अकस्मात दिन के सपने के समान उसकी आँखों के सामने वही छाया-माया फिरने लगती। सारा चित्र नहीं। मन में फिरने लगता है कि उस रात को गली के मुँह पर वह खड़ा है, हठात् उसके पास से सफेद वस्त्रों से ढकी हुई माया चली गयी। फिर फिरने लगा है

कि दोनों ओर मालगाड़ियों की छाया में गाढ़ी रात के अंधेरे में माया चली जा रही है। बड़ी तेजी से, शायद उसका पैर भूमि पर नहीं पड़ता और देखता कि इञ्जिन के सामने से वह पार होकर चली गयी। कहाँ गयी? कौन जाने? यही स्वप्न की मायाही उसका जीवन है। सब माया के समान मिल गया।

सोचते-सोचते वह क्षोभ-आक्षेप से स्तब्ध होजाता। हाहाकार नहीं, वेदना नहीं, कुछ नहीं, है केवल एक प्रश्न—'क्या! उसने क्या देखा था?

भ्रम? अपने अत्यन्त व्यग्र मन की मिथ्या सृष्टि? इन मूर्तियों के समान?

उससे मन की ऐसी अवस्था में ये सब भी मिथ्या जान पड़ती हैं। किसी-किसी समय पानी में डूबे हुए मनुष्य के समान उसके भीतर का मन हाँफ-हाँफ उठता है। चिल्लाने की इच्छा होती है। सब कुछ तोड़-फोड़ कर चूर कर देने की वासना तेज हो उठती है।

कुछ नहीं—कोई नहीं—यह सब धोखा—सब मिथ्या। इन सब के मिथ्या हो जाने पर वह जियेगा किस प्रकार? किन्तु उसे चाहिये। जीवन चाहिये। उसके प्राण भरे मन में जीवन का स्पर्श चाहिये। काम शीतल करने वाली नहीं, प्राण को मतवाला बना देने वाली बात चाहिये। रुलाई नहीं, हँसी चाहिये। यह दुःख नहीं, सुख चाहिये। जीवन के इस अँधेरे को दूर करने वाला प्रकाश चाहिये। इन्होंने जैसे उस छाया-माया देखने वाली रात से ही उसे घेर रखा है। इनको फिर समाप्ति नहीं हुई। नहीं, यही क्यों?—देवीग्राम की उस रात के उस उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित नाट्य-मन्दिर में महालक्ष्मी की प्रतिमा योगेश कारीगर की कूँची से बिखर

पड़ी है—आँखें खोली हैं। जाग रही है और वह पंकजिनी का लड़का मलिन—दूर पर उसी अर्जुन पेड़ पर चढ़ कर देखता है। उसके चारों ओर रात का अन्धकार है, उसके सारे शरीर को विषैले कीड़ों ने घेर लिया है, उसका शरीर जल गया। चिल्लाने की इच्छा होती है, किन्तु चिल्ला न सका। वह चिल्लायेगा नहीं।

हठात् एक दिन सजा हुआ सोने का घर खोल कर उसमें घुसा। बहुत दिनों से उस घर में नहीं गया है। यह नारी लेकर विलास करने का घर है। कितने दिनों तक विलासिनी को लेकर इस घर में उसने रातें बितायी हैं। वह कितनी ही विचित्र नंगी नारी मूर्तियों से सजाया गया है। सब उसके हाथ से बनायी हुई हैं।

इसी घरमें आकर उसने हमीदन का आलिंगन किया था एवं हमीदन की हँसी सुन कर फड़िंग ने घर में घुस कर उसे छुरी मारी थी।

सामने ही बड़ा ड्रेसिंग टेबिल है। घर में घुस कर बड़े शीशे के सामने खड़ा होते वह स्तम्भित हो गया। वह कौन है? वह? उफ! इन्हीं कई महीनों में वह ऐसा होगया! इन कई मासों में अपने को अच्छी तरह देखने का अवसर नहीं मिला था। आँख नहीं थी। साधारणतः स्नान के बाद एक छोटे शीशे में देख कर अपने केश ठीक कर लेता। कभी-कभी शीशा भी सामने न रखता। आज वह बड़े आईने के सामने खड़ा होकर स्तम्भित होगया। इन कई मासों में उसके केश जैसे पक रहे हैं। मुँह पर रेखायें पड़ रही हैं। टूटा हुआ शरीर जुटा तो नहीं, वरन् और टूट गया है। उसकी उम्र कितनी है? पचास अभी नहीं पूरा हुआ। जान पड़ता है

सतालीस-अड़तालीस होगी। वह अपने जन्म का वर्ष नहीं जानता। जानता भी कैसे ? हतभागिनी ब्राह्मणकन्या पंकजिनी वैष्णवी होकर दासी का काम करती थी। हिसाब में गोलमाल कर अपनी कलंक कहानी फैला कर वह अप्रतिभ हँसी-हँसती। उसी जीवन के हिसाब की भूल का वह फल है। वह अपने जन्म का साल किस प्रकार जानेगा; फिर भी अभी पचास नहीं हुए, इतना तो निश्चित है। किन्तु---।

किन्तु कई मास पहले, इस घटना के घटने के समय उसके शरीर में यौवन का ज्वार था। प्रथम आश्विन के भरे हुए नदी के समान उसका रूप था। उसका सबल शरीर पश्चिम के जलवायु में और भी सबल सुदृढ़ हो गया था। उसका गोरा रङ्ग और भी उज्ज्वल हो गया था। गालों पर और सिर में एक लाल आभा जैसे अनारदाने के रङ्ग के समान फटना चाहती थी। केवल आँखों के पास काला हो गया था। वह रूप की ठाट में जोर-जुल्म के प्रकाश का कालापन था और शराब पीने की भी कालिमा थी। शीशे में अपना प्रतिविम्ब देख कर हँसता और कहता—चन्द्रमा का कलंक!

साधारणलोग उसे चुस्त पाजामा और पंजाबी पहने देखकर विश्वास ही न करते कि वह बंगाली है। कहने पर भी विश्वास न होता। स्वयं ही उसने अपना बंगाली परिचय इस अवसर पर छिपा रखा था। वह बंगालियों से सम्बन्ध नहीं रखता। उसे इच्छा न होती। राय उपाधि को भी राव कर लिया था। वही रूप, वही शरीर, इन कुछ ही महीनों में टूट गया। वह विवर्ण होगया— किसी की उस पर जैसे छाया पड़ गयी। किसकी छाया ? उपवासी हृदय की छाया ? जल कर खाक हुए मन की

छाप ? मन की आगकी कालिमा ! किसी जल से उसकी यह आग नहीं बुझती । वह क्या करे ? रोना चाहता है, किन्तु रो नहीं सकता ! अकस्मात् उस दिन वह अपने ही पर क्रोधित हो उठा । पागल समान उसने सामने की एक नग्न नारी की मूर्ति उठाकर शीशे पर फेंक मारी ! झन झन शब्द कर शीशा भी टूट गया, मूर्ति भी टूट गयी । मूर्ति बड़ी और भारी थी । वह पकायी नहीं, प्लास्टर की बनी हुई थी । वर्द्धवान के गुलाबबाग की संगमर्मर की मूर्ति के समान ।

इसके बाद ही वह बोतल लेकर बैठ गया । शराब पीकर वह मन को बाँध कर निकलेगा । नयी हमीदन खोज निकालेगा । अथवा जो चाहेगा निकालेगा । किन्तु जा न सका । शराब पीकर थोड़ी ही देर में ज्ञान-शून्य होगया ।

रात के अन्त में ज्ञान लौटा । वह उठकर सबेरे तक चुपचाप बैठा रहा।

सबेरा होने पर स्नान कर स्वस्थ होकर निकल पड़ा और तीन बजे लौटा । बहुत काम करने पड़े । बैंक से रुपये निकालना, मकान मालिक को एक वर्ष का भाड़ा देना, टिकट खरीदना आदि अनेक काम !

चार

दुनिया खोज कर— आवश्यकता पड़ने पर दुनिया की छाती फाड़ कर वह खोजेगा । जिसको पाने से मन भरे, प्राण भरे, जीवन शीतल हो जाय, उसी को लेकर वह लौटेगा ।

वृन्दावन से शुरू किया । वृन्दावन से मथुरा । उसे अच्छा नहीं लगा । देवताओं में उसे विश्वास नहीं है, मन में प्रतीति नहीं होती । उस त्रिभंगी देवता से मन्दिर की दीवारों की मूर्तियाँ बहुत अच्छी हैं ।

आगरा—फतहपुर सिकरी।

विशाल है। सुन्दर है। किन्तु वह भी अच्छा न लगा। ठीक उसी के समान खाँ-खाँ कर रहा है। हा-हा कर रहा है। हठात् मन में आया, इससे तो मन्दिर अच्छे हैं। वे खाँ-खाँ नहीं करते। हा-हा नहीं करते।

पत्थर के देवता— कपड़े-लत्ते अलंकार, आभरण से सजकर, धूप-दीप जला कर भरती कर रखा है। मनुष्य रोते हैं, हँसते हैं। कलरव करते हैं। धक्का देते हैं। सब मिथ्या है— तो भी विचित्र रूप से शोक की सान्त्वना से सजायी हुई कथा-माला के समान सजे हुए हैं

उसी छाया-माया के समान।

हठात् उसका मन व्यग्र हो उठा—किसी वास्तविक साधु के लिये। वह उस छाया-माया का अर्थ पूछेगा। किन्तु क्या उसमें अर्थ है?

वह हरिद्वार चला। यहाँ बहुत साधु हैं। उनमें सच्चे साधु भी हैं। उसने सुना है। उनसे मन मिले या न मिले, वे झूठ नहीं बोलेंगे। वह बहुत जानते हैं।

एक साधु का पता पाया।

साधु उसे अच्छा लगा। स्थविर उदासी एक छोटी कुटिया के सामने—एक धूनी जला कर सामने की ओर देखते हुए बैठे हैं। बैठे ही हैं। जैसे अनन्त काल से बैठे हैं। दृष्टि चलती है-चलती है— दूर से दूरान्तर-सीमा पार कर और भी चलती है। करोड़ों योजन दूर किसी ग्रह के प्रकाश की धारा के सामान— जो चली ही आ रही है— चली ही आ रही है— सृष्टि के आदि काल से— किन्तु आज भी पृथ्वी पर नहीं पहुँची है।

मलिन जाकर कुछ देर खड़ा रहा। और भी अनेक खड़े हैं। उनके

साथ उसने देखा। फिर प्रणाम कर सामने बैठ गया। साधुने केवल एक बार हाथ उठाया। बहुत देर के बाद भीड़ कम हुई। लौटनेवाले लौटने लगे। जो आगे जायेंगे, वे आगे बढ़ें। मलिन ने कुछ कहने की चेष्टा की, किन्तु जैसे कहीं बाधा पड़ रही है।

साधु ने ही पूछा— क्या भाई! तू नहीं लौटेगा?

मलिन भूमि की ओर देख कर सोच रहा था— सिर उठाया।

—कुछ मुझसे कहना है?

—कुछ पूछना है बाबा!

पूछना? एक आश्चर्यजनक हँसी साधु के मुहँ पर फूट पड़ी। इसके बाद बोले— संसार में-सृष्टि में- पूछना ही है भाई—जवाब—। धीरे-धीरे गर्दन हिलायी— नहीं है।

—नहीं है? मलिन जैसे रो उठा।

मृदुस्वर में संन्यासीने कहा—पूछना—प्रश्न! जानने की इच्छा ही तो प्रश्न है। जानना ही उसका जवाब है। सुनाया नहीं जाता। दुनिया का सब कुछ अपनी जिन्दगी से जाना जाता है। थोड़ी देर चुप रह कर फिर बोले— मेरे अपने प्रश्न का जवाब आज तक नहीं मिला। बहुत दिनों से शुरू किया है। प्रश्न का जवाब मैं कैसे दूँगा, बेटा! इतना कह वह धूनी से एक लकड़ी उठा कर कुटी में चले गये।

उस समय सूर्य पश्चिम की ओर ढल गया है। तीसरे पहर का प्रकाश लाल होना शुरू हो गया है। मलिन तेजी से लौटा।

सारी रात नींद नहीं आयी।

दूसरे दिन उठ कर वह फिर चला।

पूछेगा। वह कहेगा— तुम्हारी बात पर मैं विश्वास करूँगा।

खोजने की शक्ति मुझमें नहीं है। तुम बतलाओ। किन्तु पूछ न सका। रास्ते से ही लौट आया। रास्ते के किनारे के एक पत्थर पर बैठ कर विश्राम किया। उसे विश्राम की आवश्यकता नहीं थी। वह विश्राम के बहाने बैठ कर सोच रहा था। संन्यासी छाया-माया की क्या व्याख्या करेंगे? भ्रम! मन को वासना की छलना? किन्तु ऐसा कह कर सब कुछ उड़ाया जा सकता है। उसने अपनी आँखों देखा है; विष की क्रिया के समान उसकी क्रिया आज भी शरीर-मन में चल रही है। जिसकी इतनी बड़ी क्रिया है, वह मिथ्या कैसे होगी?

छाया-माया क्या कह गयी है? क्या संकेत कर गयी है? संकेत कर गयी है कि माया का मोह छोड़ दो। वह भी मेरे समान मिथ्या है!

नहीं— कह गयी है— कायाधारिणी माया ही उसके जीवन का एक मात्र सत्य है।

रास्ते से यात्री जा रहे थे। कोई ऊपर की ओर, कोई नीचे की ओर। हठात् एक खिलखिलाती हुई हँसी से पहाड़ी भूमि जैसे चंचल हो गयी। नारी का स्वर। एक दल नीचे की ओर उतर रहा है। दो नारियाँ और दो पुरुष। कन्धे पर ढोल।

अद्भुत प्राणवाली नारी है। उज्ज्वल पहाड़ी झरने के समान, वे पार कर चले गये। वे नीचे उतर रहे हैं। वे अनर्गल हँसते-हँसते जा रहे हैं। वह हँसी क्षीण से क्षीणतर होकर चली आ रही है। इसके बाद मिट गयी। वह बैठा ही रहा। बहुत देर बाद उठा। किन्तु ऊपर का रास्ता नहीं पकड़ा। नीचे का मार्ग ग्रहण किया। वह साधु के पास नहीं जायगा। वह उसी दल की खोज में चल पड़ा।

साधु क्या कहेगा ? उसे अपने ही प्रश्न का जवाब नहीं मिला, वह उसके प्रश्न का क्या जवाब देगा ? उससे उस नारी की पुकार उसे बड़ी जान पड़ी।

भाव-भंगी और पोशाक कपड़े से वह स्त्री देहाती नाचवाली जान पड़ती है। बुरा नहीं है। उस नारी के साथ कन्धे पर ढोल लेकर देश-देशान्तर घूमना बुरा नहीं है। क्या गायेगी ? गजल ? इश्क पर जोर नहीं—

न लगाये न लगे—और बुझाये न बने—

इश्क पर जोर नहीं।

वह उतरने लगा। उतरते-उतरते हरिद्वार आ पहुँचा, किन्तु वह दल न मिला। दो दिन बाद पाया। वह इस समय हरिद्वार से रवाना हो रहा है। रास्ते के किनारे उनकी महफिल जमी है, लोग जमा हैं। क्या गाती है

रोयेंगे हम हजार बार,
कोई हमें न मनाये क्यों ?

वह युवती आज अत्यन्त कुत्सित लगी। वह कहती है—मैं हजार बार रोऊँगी, कोई मुझे मना क्यों करेगा ? किन्तु वह बाँकी चितवन से कटाक्ष कर रही है और थोड़ा-थोड़ा हँसती है। विश्री, कुत्सित, अत्यन्त कुत्सित ! ये ही दुनिया को मिथ्या बना देती हैं

रोयेंगे हम हजार बार,
कोई हमें न मनाये क्यों ?

जब मनुष्य यह कह कर वास्तव में रोता है, उस समय उस आँखों के जल और गाने के स्वर से मरुभूमि में फूल खिलते हैं ? मरुभूमि मनुष्य शरीर के रोमांच के समान सिहर उठती है। मरुभूमि की छाती अकस्मात्

हरी घास से भर जाती है। रोयेंगे हम हजार बार, कोई हमें मनाये न क्यों ?

यह गाना तो नहीं सुना है, किन्तु यह बात सुनी है और यह रोना उसने पटना में देखा है।

माया का रोना—दुबली आसन्नप्रसवा माया उस दिन छुन्ने की फांसी के हुक्म का सूत्र धर कर रोयी थी।

उसने कहा था—रोओ मत। रोना मुझे अच्छा नहीं लगता।

माया अकस्मात् उठ कर घर के दरवाजे की ओर जाने लगी थी।

उसे रोक कर मलिन ने पूछा था—कहाँ जाओगी ?

माया ने कहा था—रोने। गंगा के किनारे रोने जाती हूँ।

रोयँगे हम हजार बार,
कोई हमें न मनाये क्यों ?

उसने उसे एक घर में बन्द कर ताला लगा दिया था। उसी घर में माया फफक-फफक कर रोयी थी। छुन्ने की फाँसी का सम्बाद उपलक्ष्य था। असली बात थी—वह उसको उस समय सहन नहीं कर पाता था। नहीं। मिथ्या। झूठ। सब झूठ। माया का रोना झूठा। मिथ्या। छाया-माया उसको बता गयी है कि सब झूठ है। माया का रोना झूठा है। इस स्त्री का यह गाना झूठ है। सत्य है वह हँसी और कटाक्ष की ओट में दुनियादारी ! बनियागिरी।

जिस गाना बनानेवाले ने वह गाना लिखा है—उसका यह गाना बनाना भी झूठा है। दुनिया के लोगों की तारीफ के लिये ही उसने लिखा

है। उसके खिलौने की मूर्तियों की तरह। नहीं। अन्ततः उसकी चार मूर्तियाँ वैसी नहीं हैं। नहीं। मिथ्या नहीं है। नहीं, मिथ्या नहीं है।

उसकी वैष्णवी मूर्ति, कन्या मूर्ति, चूड़ीवाली और छाया-माया मिथ्या नहीं है। मिथ्या नहीं है। कितने दिन इन मूर्तियों पर कूँची फेरते समय हठात् एक-एक बूँद जल निकल पड़ा था। कोई जानता नहीं। रंग में उसका चिह्न है। लोग जानते हैं कि वह कभी नहीं रोता। वह स्वयं कहता है कि रोना उसे अच्छा नहीं लगता।

हठात् उसे चौंका कर युवती नाचते-नाचते उसके पास आकर खड़ी हो एक हाथ गाल पर रख कर और दूसरा हाथ हिला कर गाया—

|दिल ही तो है न संग-खिश्त
दर्द से भर न आये क्यों ?|

यह मनुष्य का हृदय है, पाषाण नहीं है, पक्की मिट्टी या ईंट नहीं है, यह वेदना से क्यों न भर उठेगा ?

इसलिये रोयेंगे हम हजार बार, कोई हमें न मनाये क्यों ?

युवती के हाथ पर एक रुपया रख कर वह बोला—अब उधर। कह कर लौट पड़ा।

मिथ्या। झूठ !

चलो मुसाफिर। और झूठे किसी के पीछे नहीं। कुछ सच्चा चाहिये। सत्य कुछ। सफेद हो या काला—जो सदा ही सफेद रहे या काला ही रहे। माया छाया नहीं होगी।

कलकत्ता की ओर लौटो। चलो-खोजो।

लम्बे डेढ़ वर्षों से अधिक बीत गया।

दिल्ली, अजमेर, जयपुर, चित्तौरगढ़। वहाँ से बम्बई। बम्बई से समस्त दक्षिण। इसी में उसका मन थोड़ा लग गया। अच्छा लगा।

बड़े-बड़े मन्दिर, मसजिद, पहाड़ों पर पत्थर के किले, कितने मोती महल, नूरमहल, हवामहल, रत्नमंजिल, कितने बहार के नक्शे, कितनी अपूर्व पत्थर में खुदी हुई मूर्तियाँ। उसने अजन्ता-एलोरा की गुफायें देखीं, कितना अपूर्व चित्र है।

विचित्र भावना मन में जगती इस समय एक, दूसरे समय उसके विपरीत।

इस समय तारीफ करता—कैसा स्वर्ग तैयार कर गये हैं। उस समय लगता—उस स्वर्ग में जो निवास करते—उन्होंने क्या सब पा लिया था? उन्हें कोई दुःख नहीं था। जिन्होंने बनाया था—उनको।

दुनिया के लोगों के मन आर्द्र करने वाले गाने लिखने वालों के गानों के साथ इसका अन्तर कहाँ है?

बीच-बीच में शराब पीने की इच्छा होती। चेष्टा करता। किन्तु शरीर न सहता, और मुँह के पास लगाकर अच्छा भी न लगता। कभी-कभी वह चंचल हो उठता—रूप की हाट की ओर भागता। कभी किसी स्त्री को देख कर कई दिन उसके पीछे घूमता। शायद कई घण्टे तक भी, और फिर बीच रास्ते से लौट आता, और वह जगह छोड़ दूसरी जगह चला जाता।

हरिद्वार के साधु के यहाँ अपनी बात का ठीक जवाब नहीं पाया। उन्होंने अपना जवाब अपने जीवन में ही खोजने को कहा था। किन्तु दक्षिण आकर एक पगले साधु से एक जवाब पाया।

पगला उसे अच्छा लगा। उसने उससे पूछा—क्या मेरे एक प्रश्न का जवाब दे सकते हो ?

पागल बोला—प्रश्न माने दुःख है। जब सुख आता है तो मनमें नहीं आता—यह क्या हुआ ! दुःख आने पर ही मनमें आता है—ऐसा क्यों हुआ ; दुःख है सुख का अभाव, असुख। सुख जिसमें मिले वही कर भैया, दुःख दूर हो जायगा। कोई प्रश्न मनमें नहीं उठेगा। फिर देखो भाई, किन्तु सुख मान कर ऐसा कुछ न पकड़ो, जो पीछे दुःख दे। भूख लगने पर खाओ बाबा, किन्तु ऐसा कुछ मत खाओ जिससे पीछे बीमार हो। संसार में कुछ खाने से जाति जाने का भय झूठा है, किन्तु रोग का भय सच्चा है। आनन्द से रहो भाई। आनन्द से, बस। जिसमें आनन्द है वही है दुनिया के सब प्रश्नों का उत्तर। आनन्द। शराब पीने में आनन्द मिले, पियो। किन्तु तबियत खराब न हो। दिल न दुखे। प्रश्न माने हैं भूख। खाओ भाई खाओ। खाने का एकमात्र चीज है, आनन्द। बस।

इसलिये वह ढूँढ़ रहा है। क्या अच्छा लगता है ? किसमें आनन्द है ?

घूमते-घूमते उसका कच्चे सोने के समान गोरा रंग जल कर तांबे जैसा हो गया। एक दिन रामेश्वरम् के समुद्र के किनारे पहुँच गया, और आने जाने का स्थान नहीं है। अथाह समुद्र ! कूद पड़ें !

नहीं। मरने से भय नहीं करता। वह रघु के साथ लड़ा है, बागबाजार में बंकिम भटचार्ज के दल में खड़ा होकर मार खायी है। छाया-माया ने रेल के इंजिन के सामने लाकर फेंकना चाहा था। उसने उल्लास के साथ उसका अनुसरण किया। फड़िंग ने उसे छुरी मारी थी, किन्तु उससे मरने का भय उसे नहीं हुआ। किन्तु मरने में भी सुख नहीं है। कष्ट है।

नहीं—। वह नहीं मरेगा।

लौटो मुसाफिर।

वह लौट पड़ा। लौटते समय उसे ध्यान आया कि देश में अनेक काण्ड हो गये हैं। अनेक परिवर्तन हुए हैं। उस दिन एकतीस जनवरी सन् १९४८ ई० थी। सन्ध्या समय वह स्टेशन में बैठा हुआ चौंक पड़ा। गांधी जी गोली से मार दिये गये।

देश में दंगा हो गया है—हिन्दू-मुसलमानों का दंगा।

देश बँट गया है। अंग्रेज चले गये हैं।

जो कुछ हुआ है, उससे उसका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। गान्धी जी की मृत्यु से उसे दुःख हुआ है। उसकी हानि हुई। साहब चले गये हैं, इससे उसकी क्षति हुई। वे उसकी मूर्तियाँ बहुत खरीदते थे। रास्ते में एक बार दिल्ली उतरा। उसने स्वाधीन देश की राजधानी घूम कर देखी। एक दिन सभा में नेहरूजी को देखा, पटेलजी को देखा, माउण्टवेटेन को देखा। और उसने देखी बहुत बड़ी भीड़! पंजाबी उध्वस्ती की। बालक-बालिकायें बालिकायें-बालक ; किसी ने कहा—युवती लड़कियाँ बिक रही हैं।

चौक बाजार के आस-पास में, गली-गली में, पार्क-पार्क में। कुतुब-मीनार के पास के निर्जन में हाट लग गयी है।

वह निकल पड़ा, खरीदे या न खरीदे, देखेगा। देख कर पसन्द आने पर खरीदेगा। किसी को देख कर उल्लास जगे—फिर घर बसायेगा। बस। यही ठीक है। आयी। एक-दो। तीन चार दिनों में दस बारह युवतियाँ। गरीबों की कन्यायें। भले घर की युवतियाँ,शहर की युवतियाँ। उनके मुँहों पर विषण्णता की छाप, चतुरता की छाप है। उदासीन दृष्टि, थोड़े चंचल

कटाक्ष के साथ एक हँसी। किसी का हाथ अपने हाथ में पकड़ कर खींचते समय वह चकित होकर हाथ खींच लेना चाहती हैं, कोई छोड़ देती है, चेतनाहीन के समान। कोई पकड़ रखने की चेष्टा करती है; किसी का स्पर्श शीतल है, किसी का ज्वरोत्तप्त। किसी का हाथ पसीने से भरा हुआ काँप रहा है।

नहीं। नहीं हुआ। पसन्द नहीं आयी, होगी भी नहीं। और मत लाओ। नहीं।

नहीं, नहीं। और नहीं लाना होगा। नहीं चाहिये। मुझे नहीं चाहिये।

क्या? अगर नहीं चाहिये, तो लानेको क्यों कहा था? क्या? छुरी! मलिन हँसा। मार डालना चाहते हो, नहीं, रुपये-पैसे ले लेना चाहते हो? मेरे पास भी छुरी है। रुपये चाहो, तो लो। मार डालना चाहते हो, तो वह जरूर एक बार लड़ेगा।

वे रुपये-पैसे लेकर ही शान्त नहीं हुए। शरीर पर का कीमती पंजाबी और कोट भी ले गये। जाओ। मलिन की चप्पलों का जोड़ा है। हाथ में तांबे की ताबीज है। चीज-वस्तुओं के साथ और कुछ है। बैंक में भी है। वह लखनऊ में पड़ा हुआ है।

ठीक है। नमस्ते। चले जाओ साहब। चले जाओ।

× × ×

दिल्ली से लखनऊ आया।

लखनऊ की अवस्था वैसी नहीं है। सब टूट टाट कर गोलमाल हो गया है। हमीदन नहीं है। कोई कहता है—पाकिस्तान चली गयी।

कोई कहता है, भय से भाग गयी। दूसरे मुहल्ले में उसका खून हो गया। कोई कहता है, रास्ते में लूट ली गयी। जाने दो। कितना गया है, कितने गये हैं। जाने दो।

उसने फिर काम आरम्भ कर दिया।

हठात् एक दिन फिर सब बन्द कर दिया।

नहीं। अच्छा नहीं लगता। कुछ अच्छा नहीं लगता। क्षण-क्षण में क्रोध से अधीर हो जाता है। दो एक पुराने पैकारी खरीदारों ने आकर कहा—नये जमाने की नयी मूर्तियाँ बनाइये साहब। गांधी, नेहरू, नेताजी, पटेल साहब, अशोक स्तम्भ, भारत माता की मूर्तियाँ।

मलिन बोला—नहीं। काम बन्द कर दिया। काम और नहीं करूँगा। बस।

नया जमाना। नया जमाना। बिल्कुल झूठ।

जिसका नया जमाना है उसका। उसका नहीं है। उसका सब जमाना झूठा हो गया है।

चलो मुसाफिर।

इस बार कलकत्ता जायगा। दुनिया के सब जमाने में एक ही रात उसके लिये सच्ची है। वही छाया-माया देखने की रात, वही अन्नपूर्णा-घाट। वही आश्चर्यजनक रात। जीवन के केवल एक जटिल प्रश्न के समान उसके सामने खड़ी है।

माया नहीं। वह माया को नहीं खोजेगा। अब उसे माया की आवश्यकता नहीं है। वह तो आज प्रौढ़ा है। मोहिनी माधुरी आज गल गयी है।

वही छाया-माया चिर नवीन है। वह उसे खोजेगा। वह उसी जगह रात पर रात खड़ा रहेगा।

चलो कलकत्ता। चलो सदा के लिये, सदा अब है और कितने दिन ?

फिर भी उसने मूर्तियों के साँचे, कूँची, रङ्ग साथ में ले लिया। सफर के बाकी दिन हैं, उनमें जीवित रहना है, खाना-पीना है।

एक समय मनमें आया था कि उलटा ही असल है। खाना-पहनना। खाने-पहनने में ही सब सुख है। आज पांसा पलटा है। इसबार दान की संख्या कहते हैं—नहीं झूठ है।

वे कहें। किन्तु जीना तो है ही। मरना होता तो रामेश्वर में ही कूद पड़ता।

जीने के लिये खाना होगा ही।

पाँच

वह कलकत्ता पहुँचा। अपर इण्डिया एक्सप्रेस से उतरा। लखनऊ से कलकत्ता आने के रास्ते में उसमें बहुत परिवर्तन हो गया है।

वह हठात् काशी में उतर पड़ा। गंगा स्नान किया। पाजामा छोड़ कर धोती पहन ली। फ्रेंचकट दाढ़ी बनवा दी। जुल्फ भी छँटवा दी। उसका यह गोरा रंग नहीं है, किन्तु लखनऊ में डेढ़ मास विश्राम करने के कारण थोड़ा लौट आया है। धोती और पंजाबी इस लम्बे शरीर वाले मनुष्य को अच्छा जँचता है। आँखों पर एक नीला चश्मा है।

उसने हवड़ा स्टेशन पर उतर कर विस्मय के साथ चारों ओर देखा। अब सन् १९३७।३९ से अनेक अन्तर हो गया है। कैसी भीड़ है। अगणित मनुष्य हैं और हैं असंख्य यान-वाहन। घोड़ा गाड़ियाँ नहीं हैं।

टैक्सी-मोटर, मोटर-बस लारियाँ हैं। हवड़ा स्टेशन से बाहर निकल कर पहचाना नहीं जाता। नया हवड़ा ब्रिज सामने खड़ा है, जब वह तैयार हो रहा था, उसी समय उसने देखा था। वह ब्रिज की ओर देखते हुए कई मिनट खड़ा रहा। हवड़ा ब्रिज की एक मूर्ति बनाने से क्या होगा?

कुछ देर बाद उसका विस्मय टूटा। एक तेज कर्कश आर्तनाद हुआ। उसके साथ ही एक प्रचण्ड शब्द जोर से सुनाई पड़ा, फिर साथ ही साथ हैं-हैं शब्द हुआ। एक टैक्सी और बस भिड़ गयी है। शोरगुल कर लोग भागते हैं। उसने सचेत होकर एक टैक्सी पुकारी।

चलो, इस समय होटल चलो।

होटल में पहुँच कर वह बिछौने पर सो गया।

कलकत्ता! यह वही होटल है, जिसमें ब्याह के दिन माया के साथ ठहरा था। यह कमरा वही नहीं, उसके ठीक पास का है। सब एक ही समान हैं। कमरे पहले से शौकीन हो गये हैं, आराम के साधन बढ़ गये हैं। दीवार का रंग बदल गया है, निऊन लाइट हो गयी है। असबाब-पत्र में नये फैशन का संकेत है। भाड़ा भी बहुत बढ़ गया है। उसके पास रुपये अधिक नहीं हैं। सब खतम हो रहे हैं। केवल कई सौ रुपये। चार अंकों में एक अंक क्षय हो गया है।

कलकत्ता में जनारण्य है। घर मिलना दुस्साध्य हो उठा है। किन्तु खोजना ही पड़ेगा। उसी अन्नपूर्णा घाट के पास खोजना होगा। वह नित्य रात को जाकर खड़ा हुआ करेगा।

हठात् वह उठा। दरवाजे पर ताला लगाकर उतर पड़ा। वह बैंटिक स्ट्रीट के फुटपाथ पर खड़ा हो गया। यहाँ से ट्राम पर चढ़ कर वह घूम

आयेगा। बागबाजार का अन्नपूर्णा घाट देख आयेगा। ठीक वैसा ही है। उसकी छाती में विचित्र अनन्त तृष्णा है, वह तृष्णा केवल अन्नपूर्णा घाट के जल से मिट सकती है। उसके प्राण में मर्मान्तिक घृणा भरी हुई है। उस घृणा की पात्री उसी बागबाजार में है। निष्ठुर क्रोध के बीच-बीच में आग जलने लगती है। बंकिम भटचार्ज उसी बागबाजार में रहता है।

घूम आया।

अन्नपूर्णा घाट वैसा ही है। पोर्ट कमिश्नर का आफिस। लाक गेट सब वैसे ही हैं।

तीसरे पहर फिर आया। इस बार श्यामबाजार की ओर से।

बागबाजार वैसा नहीं है। विस्मय का कोई कारण न रहने पर भी वह विस्मित हो गया। इतना बदल गया है! घरों, मकानों, दुकानों के पहचानने का उपाय नहीं है। घुसते ही मोड़ के उत्तर ओर की वह बस्ती ही नहीं है। कोई बड़ा मकान बन रहा है। थोड़े आगे वाली बोसों के मकान की दुकान उठ गयी है। कच्चे मकान एक भी नहीं हैं। आनन्द चटर्जी लेन में घुस कर वह पत्रिका के मकान के सामने खड़ा हो गया। पत्रिका की विराट मशीन के चलने का उपक्रम हो रहा है। थोड़ा आगे जाकर शिल्पी राय का मकान है। कहाँ? शिल्पी राय नहीं हैं। किसी ने कहा—शिल्पी राय इस घर में नहीं है, बालीगंज चले गये। उससे आगे चला। टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में होकर वह उसी मकान के सामने आ खड़ा हुआ। कहाँ है वह घर? पुराना एकतल्ला मकान। मकान ही नहीं है। उसे तोड़ कर नया मकान बना हुआ है।

वे कहाँ चले गये? कौन बतलायेगा? गली से निकल कर वह बाग-

बाजार स्ट्रीट पर खड़ा हो गया। चारों ओर अनेक परिवर्तन हो गये हैं। निकिरिपाड़ा का चिन्ह नहीं है। नये नये मकान बन गये हैं। चारों ओर लोग ही लोग दिखाई पड़ते हैं। किन्तु पहचाने लोग कहाँ हैं? वह है एक चाय की दुकान— वह उसके सामने जाकर खड़ा हो गया। यहाँ आगे लोग अड्डा मारते थे। माया के भाई छुने का अड्डा था। हाँ, अब भी बैठता है। वही लोग सब बैठे हैं। इसी दल का उस दिन निर्यातन में सबसे अधिक हाथ था। पहचाने हुए मुहँ भी हैं। वही जो। यौवन का भाटा आ गया है। फिर भी उसने पहचाना। वह जानता है कि वह उसे पहचान नहीं सकेंगे। वह मलिन राय मर गया है। वह उसकी शीर्णकान्त प्रेतात्मा है। वह प्यासे की तरह घूम रहा है? वह अपने जीवन काल की प्यारी लीला भूमियों को खोज रहा है। जो सामने बैठा है, उसका नाम शची घोषाल है। छुने का मित्र है। उसी को नमस्कार कर बोला— एक बात पूछता हूँ, यदि आप दया कर उत्तर दें।

शची अब पहले जैसा उद्धत और रूढ़ नहीं है। उसको सिर से पैर तक भली भाँति देख कर बहुत सम्मान से ही बोला— कहिये।

—इस गली में बंकिम भटचार्ज रहते थे?

—बंकिम भटचार्ज — छुने का पिता! हाँ हाँ, बंकिम भटचार्ज तो मर गये?

—उनके पुत्र अमल भटचार्ज? थियेटर करता था और उसके घर का—

—अमल? वह बहुत पहले यहाँ से चला गया। उसके घर एक काण्ड हुआ। इसके बाद ही वह स्त्री लेकर बाप को छोड़ चला गया। वह थियेटर

भी नहीं करता। कहाँ रहता है वह ठीक नहीं बता सकता। बंकिम भटचार्ज इसके बाद भी कुछ दिन जीता रहा। छाती पीटता हुआ घूमता। किन्तु बतलाइये क्यों ? क्या आवश्यकता है ?

—आवश्यकता ! मलिन ने लम्बी साँस छोड़ी। थोड़ी देर सोच कर बोला — कुछ आवश्यकता थी। मेरा घर बाँकुड़ा-विष्णुपुर है। उनके साथ हमारी बहुत दिनों की आत्मीयता है। हम अपना देश छोड़ कर बहुत दिनों—दो पीढ़ियों—से लखनऊ रहते हैं। बंगाल में आया हूँ, इसीलिये उन्हें खोजने का विचार किया था।

थोड़ा रुक कर फिर बोला— हठात् उसे विचार हो आया, वह बोला— मेरी माँ आज भी जीती हैं, खूब वृद्धा हो गयी हैं। उन्हें देखने-सुनने के लिये एक आदमी की आवश्यकता है। माँ ने कहा— बंकिम भट-चार्ज हमारे आत्मीय हैं, उसकी एक कन्या है, यदि वह आये तो देखना। इसीलिये—।

किन्तु पता तो नहीं मिल रहा है !

—ओह ! वह कन्या ! वह तो जीती नहीं है। गंगा में कूद कर मर गयी। बंकिम भटचार्ज ने कैसा काण्ड किया था ! और अन्त में छाती पीटता हुआ फिरता था।

पैरों के नीचे की पृथ्वी हिल गयी। छुटपुटा अंधेरा था, प्रकाश जल रहा है, किन्तु खुला नहीं था। माया गंगा में कूद कर डूब मरी है ! बहुत कष्ट से आत्म संवरण कर उसने कहा— गंगा में डूब कर मर गयी ! बंकिम भटचार्ज—

शची कहता गया— बंकिम भटचार्ज वैसा ही आदमी था। उसने उस

कन्या का ब्याह कर दिया था, एक बूढ़े दूसरे ब्याह वाले वर के साथ। वह विवाह के दो वर्ष बीतते न बीतते विधवा हो गयी। कन्या को काम-काज सीखने के लिये नारी-मन्दिर में दिया था। वहाँ मलिन राय मिट्टी की मूर्ति बनाने का काम सिखलाता था। वह बहुत गुणी था—हमारे ही पाढ़े में रहता था। जैसा हाथ, वैसा ही दरिया दिल मनुष्य। मेरे साथ अधिक मेल नहीं था। लेकिन सुना है, जिन दो चार आदमियों से मेल था, उन्होंने कहा है।

शची वर्णन करता जा रहा था। कुछ बातें उसके कानों में पड़ रही थीं, कुछ नहीं पड़ती थीं। मलिन सोच रहा था कि माया गंगा में कूद पड़ी, किन्तु उसके साथ नहीं गयी? आयी नहीं? उसने भी अन्त में उसका अविश्वास किया। प्रेम लकड़ी के हल्के बर्तन के समान है, एक ही आघात में टूट पड़ा था।

शची बोला— कहावत है— चील कान ले जाती है कहने पर कोई जैसे चील के पीछे दौड़ा था। बंकिम भटचार्ज ने ठीक वैसा ही किया था। वे ब्याह कर पटना गये, भटचार्ज उन्हें खोजने कृष्ण नगर गया। वहाँ किसी ने कहा — उसका मकान कृष्ण नगर नहीं है, और वह ब्राह्मण भी नहीं है— माने मलिन राय। ब्राह्मण तो ब्राह्मण, उसकी जाति ही नहीं है, बाप का ही ठीक नहीं है। इसीलिये भटचार्ज ने उसकी खोज न लेकर पाढ़े में अफवाह फैला दी। उसी अपवाद को लेकर छने को— भटचार्ज के छोटे पुत्र को सुशे ने गाली दी। छने ने उसे छुरी मार दी। सुशे मर गया, छने को फाँसी हो गयी। एक ओर की बात। इसके बाद कन्या के बीमार होने का पत्र पाकर अमल उसे पटना से ले आया। कुछ दिन बाद

मलिन राय आया। उसको लेकर कैसा वीभत्स काण्ड हुआ। उसको मार-पीट और बाँध कर हमलोगों ने ऐसा अपमानित किया— मैं भी था, छने मेरा मित्र था, इसलिये प्राण में चोट पहुँची थी। आह! अब अफसोस होता है, गुणी व्यक्ति, ब्राह्मण का पुत्र—। वह युवती अपने स्वामी के अपमान और दुःख से सवेरे गंगा में जाकर— माँ मुझे ले लो कहकर कूद पड़ी। एक लम्बी चिट्ठी लिख गई थी— वह अपने श्वसुर का नाम लिख कर बता गयी थी—उसने लिखा— मैं जानती हूँ मेरे ससुर का नाम ईश्वर राय, उनके बाप का नाम भगवान राय, गोत्र बन्दघाटी। वे मेरे स्वामी के समान ही सुन्दर थे। मेरे स्वामी हैं ब्राह्मण, ब्राह्मण, ब्राह्मण। उनका जो अपमान मेरे बाप ने किया है, उसके बाद उनके पास जाने लायक मेरा मुहँ नहीं रहा। मेरे लिये उनका जो अपमान हुआ है उसे याद पड़ने पर मैं उनके मुहँ की ओर कैसे देखूँगी। इसलिये मैं मरूँगी। मनुष्य कम दुःख से नहीं मरता। मुझे बड़ा दुःख है। मेरा दुःख पृथ्वी में नहीं समा रहा है। किन्तु मेरे स्वामी का कोई फिर अपमान न करे। वे ब्राह्मण हैं, वे गुणी हैं, उनकी देवता के समान कान्ति है। देवता के समान अहंकार है। क्या वे अब्राह्मण हो सकते हैं?

मलिन ने स्थिर होकर खड़े-खड़े सुना। चंचल नहीं हुआ, पैर नहीं काँपे, उसकी आँखों में जल कभी नहीं आता, आज भी नहीं आया। इतने में ही उसके चारों ओर एक बड़ी भीड़ जमा हो गयी। मलिन बीच में खड़ा था। रास्ते के प्रकाश में उसके केश चमक रहे थे। उसका सिर सबसे ऊँचा उठ गया था। किसी ने उसमें कोई चंचलता नहीं देख पायी। शची की बात समाप्त होते ही, वह नमस्कार कर आदर के साथ भीड़ हटाते हुए

निकल पड़ा। वह तेजी से मोड़ की ओर चला गया।

माया मर गयी। उसे बहुत चोट लगी थी। किन्तु वह मरी क्यों? चली क्यों नहीं आयी? लड़ाई क्यों नहीं की? जाति! जाति! जाति! ब्राह्मण, ब्राह्मण। याद पड़ा जब व्याह के समय पुरोहित ने बाप-दादे का नाम बतलाने को कहा था—उस समय सोच विचार कर कहा था भगवान राय का पौत्र—ईश्वर राय का पुत्र; गोत्र बतलाया था—बन्द्यघाटी। नवद्वीप का बूढ़ा रतनराय कृष्णनगर के राजाओं के यहाँ अन्नपूर्णा के आविर्भाव का गल्प करता। वह कविता में ही कहता। ईश्वरी पाटनी को छल कर जो परिचय दिया था, वही कविता करता था।

ईश्वरी से परिचय में बोली ईश्वरी।
सुन ले ईश्वरी मैं परिचय करी॥

उसमें ही सुना था—'परम कुलीन स्वामी वन्द्य वंश जात।'

बूढ़ा रतन कहता—वन्द्य वंश के असली माने है—ऐसा कुल, जिसकी पूजा विश्व-ब्रह्माण्ड में हो। पाटवी ने समझा बन्द्यघाटी माने बाडुज्जे। उसने भी उस दिन वैसा ही कहा था—उसके पिता ईश्वर। ईश्वर का पिता कौन नहीं जानता, किन्तु कहा था—भगवान। गोत्र बन्द्य-घाटी बतलाया था।

माया यही घोषण-कर मरी।

हठात् वह चौंक कर खड़ा हो गया।

तब क्या उस दिन रात को जिसे देखा था—वह माया की प्रेतात्मा है! क्या उसे साथ लेने के लिये वह छाया मूर्ति होकर—! नहीं-नहीं। वह कैसे हो सकता है? माया दूसरे दिन सवेरे जल में कूदी थी। समस्त

अन्तरात्मा उसकी चिल्ला उठी—माया—माया—माया !

हाय माया ! तुमने यह क्या किया ? छि-छि-छि !

इतना भी विश्वास नहीं रख सकी ! प्रश्न किया था—कैसे मुँह दिखाओगी ? मनुष्य मुँह दिखाता है, माया अपने रूप के जोर से। पिता के अपराध की स्याही से अपना मुँह काला कर तुम गंगा में क्यों कूद पड़ी ?

वह फिर लौटा—फिर लौटा—गैलिफ स्ट्रीट का रास्ता पकड़ा। वह अब लाक गेट के ब्रिज के पास जायगा। इसके बाद अन्नपूर्णा घाट जायगा। वह माया की प्रेतात्मा नहीं है। वह है एक विचित्र छाया-माया। यदि वह आज एक बार आये !

रात भर व्यर्थ जागने के बाद—वह थके हुए कदमों से होटल लौटा। वह चीज-वस्तुयें छोड़ कर दिन भर सोता रहा। रात में फिर जायगा। उस दिन भी फिर आया। कहीं कुछ नहीं। सारी रात पत्थर के पिच की सड़क खां-खां करती रही। प्रकाश स्थिर होकर जलता रहा। पोर्ट कमिश्नर की रेल लाइन पर बीच-बीच में गाड़ी चलती रही। बाकी समय रात में पृथ्वी की निर्जनता फैल रही थी। कहीं दूर पर खड़े इंजिन की भाप एक लम्बी साँय-साँय कर रही है और गंगा का कलकल शब्द हो रहा है।

उस दिन सवेरे वह विचित्र मन लेकर लौटा।

कायामयी पृथ्वी छाया ही छाया है। वह अलीक है, वह मिथ्या है। वह मिथ्या के पीछे और नहीं घूमेगा। यही सोचते-सोचते लौट रहा था। हठात् उसका मन चिल्ला उठा। नहीं, मिथ्या नहीं है। वह छाया, छाया नहीं है, वह माया भी नहीं है, उसने उसका मुँह नहीं देखा। वह है

उसके अन्तर का प्रेम है । अन्तर की तृष्णा माया है—माया है—माया है ! माया को जकड़ कर ही पकड़ रखा था। तैयार हो गया था। उस दिन गंगा के जल में जीवन की सब तृष्णा सब प्रेम डूब गया है।

फिर भी जीना होगा। माया नहीं है ! उसके जीवन का तृष्णा-प्रेम सत्य ही आज नहीं है। उस दिन से आज तक वह कहीं किसी से प्रेम न कर सका ! अन्नपूर्णा घाट के उस एक युग पहले के सबेरे से आज सबेरे तक इतने समय के शुष्क और अधीर जीवन की स्मृति उसकी आँखों के सामने नाच उठी। चलो मुसाफिर। वापस चलो। इस पथ पर और मत चलो। इस घाट के पथ पर। छाया-माया उसके मन का भ्रम हो या जीवन की तृष्णा ही हो—वह उसी रात गंगा जल में डूब गयी है। माया मर गयी। बंकिम भटचार्ज सब धो-पोंछ गया है। रहने वालों में हैं अमल और उसकी बहू। वे कहाँ गये हैं, कोई नहीं जानता। उस रास्ते से जाने से क्या लाभ है ? उसने उस पथ पर चलना वास्तव में छोड़ दिया।

उसने नये आयोजन में मन लगाया।

जीना पड़ेगा। टूटा शरीर, तृष्णा जर्जर क्लान्त मन लेकर ही जीना पड़ेगा।

वह माया के समान जल में कूद नहीं सकेगा।

जियेगा और वह है है कर जियेगा। केवल काम करता-करता जियेगा। बहुत बड़ी दुकान करेगा। कलकत्ता के केन्द्र स्थल में। अच्छे शो-केस में नयी-नयी मूर्तियाँ सजा देगा। हवड़ा ब्रिज की मूर्ति तैयार करेगा। एक बहुत बड़ा हवड़ा ब्रिज तैयार कर सामने रख देगा। गांधीजी, नेताजी और रवीन्द्रनाथ की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ बना कर सजा देगा।

देश अब स्वाधीन हो गया है। चारों ओर कामों की भरमार है। नित्य नई खबरें आती हैं, नित्य नये काम हो रहे हैं। कलकत्ता में अगणित मनुष्य हैं। कैसा कलरव है। उस समय जो उसके पृष्ठपोषक थे वे बड़े-बड़े अधिकारी हो गये हैं। उसके पास उनके परिचय-पत्र हैं। वह एकदम अनजान नहीं है।

होटल के मालिक से कह कर छत पर थोड़े स्थान में काम शुरू कर दिया। हवड़ा ब्रिज। काम में मतवाला हो गया। दिन भर में केवल सन्ध्या समय चौरंगी की ओर जाता। प्रकाश—प्रकाश—प्रकाश। मनुष्य—मनुष्य—मनुष्य। प्रकाश में रंग, मनुष्य की पोशाक में रंग, स्त्रियों के गालों पर रंग, ओठों में रंग, रंग की कैसी बहार है! दीवार-दीवार पर, बड़े-बड़े मकानों पर लगे हुए विज्ञापनों के बोर्डमें रंगीन चित्रों के विज्ञापन लगे हुए हैं। रंगों की उग्रता में रूप खो गया है। मधु जैसे मद हो गया है। दृष्टि कटाक्ष हो गया है। हँसी लास्य में खो गयी है। तृष्णा उसी चीजों की है जिसका विज्ञापन बार और होटलों के नियून लाइट करते हैं। खड़े खड़े देखता, इसके बाद धीरे-धीरे लौट आता। अच्छा न लगता। वह उसे अच्छा नहीं लगता। जैसे सहन ही नहीं होता। दुनिया कितनी बदल गयी है, इसका वह हिसाब नहीं कर सका। वह जैसे अनमेल हो गया है। न तो मिलने पा रहा है—न शामिल होने पा रहा है।

बचपन की बात याद पड़ जाती है। ठीक इसी तरह वह मिल नहीं पाता था। देवीग्राम के रास्ते-रास्ते में, मैदान-मैदान में अकेला घूमता। इसीकी ताड़ना से देवीग्राम से निकल कर उसने दुनिया की छाती पर अपने कठिन परिश्रम से स्थान बना लिया। फिर हठात् उल्का के समान अकस्मात् कक्षच्युत हो गया। आज इसमें दुनिया का दोष नहीं है। जो

कुछ दोष है, दायित्व है, सब उसीका है, सब उसीका है। अच्छा नहीं लगता। कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

लौट कर वह बनाने बैठता है हवड़ा-ब्रिज। उसकी लम्बाई प्रायः पाँच फीट और ऊँचाई चार फीट है। बाखारी छाते की सीक का फ्रेम तैयार कर उस पर प्लास्टर आफ पेरिस से दिन पर दिन बनाता जाता है।

वह दिन समाप्त हो गया। बस।

अब एक घर चाहिये। घर चाहिये, मूर्तियों के बनाने के कारखाने की जगह चाहिये। आदमी चाहिये। फड़िङ्ग के समान आदमी चाहिये। मिशन रोड के पास—बड़े एवेन्यू पर एक घर मिला। भाड़ा अधिक है। एक सौ रुपये। दुकान छोड़ कर और कुछ नहीं होगा। उसने उसे भाड़े पर ले लिया। एक सौ रुपये बयाना में दिया। कल आकर तीन मासों का भाड़ा देकर पक्का कर लेगा।

होटल में आकर सो गया। उसके मनमें, शरीर में कितनी थकावट है, कितनी अवसन्नता है! वह और नहीं सकता। और नहीं सकता।

ब्वाय ने आकर पुकारा—खाने का समय हो गया है।

—नहीं। नहीं खाऊँगा।

अच्छा नहीं लगता। खाकर क्या होगा?

—क्या यहाँ लाकर रख दूँ, साहब?

—नहीं। जरूरत नहीं है।

क्या खाये? कई दिनों से होटल का खाना अच्छा नहीं लग रहा है। ब्वाय चला गया। क्रमशः होटल के नीचे के तल्ले का कोलाहल शान्त हो गया। घर-घर में लोग सो गये। बाहर सड़क पर गाड़ी का शब्द नहीं

सुनाई पड़ता, हार्न नहीं बजता। वह उठ कर खिड़की के पास खड़ा हो गया। सड़क पर लोग नहीं हैं। खाँ-खाँ कर रही है। साँय-साँय कर रही है। दरवाजा खोल कर बाहर निकला और छत पर चला गया। वह अपने हाथ से तैयार किये हुए हवड़ा ब्रिज के सामने खड़ा रहा। हठात् उसके मनमें आया क्या होगा? इसको सामने सजा कर बड़ी दुकान करके क्या होगा? इच्छा हुई—इसको तोड़ कर फेंक दे। नहीं, रहने दो। वह होटल वाले को ही देकर चला जायगा। उसने एक दिन कहा था—मुझे दीजिये न, मैं नीचे के हाल में सजाऊँगा।

इसलिये होटलवाले को दो। दिन-दिन उसकी भी श्रीवृद्धि हो। उसे समारोह का प्रयोजन है। मलिन को नहीं। बड़ा काम, समारोह, कलरव, भीड़ उसे नहीं चाहिये। अच्छा नहीं लगता। बहुत चेष्टा की, भला नहीं लगा।

जीने के लिये बहुत छोटे, अत्यन्त साधारण आयोजन की आवश्यकता है।

रात में सोते-सोते उसने ठीक कर डाला। सारी कल्पनायें उलट-पलट हो गयीं। उसे नयी कल्पना बहुत अच्छी जँची। साधारण जीने का आयोजन होना चाहिये। साग और अन्न। आलू का भर्ता और भात। थोड़ा नमक। सूखा, स्वच्छ एक साधारण घर। सिर घुसाने का आश्रय। काम करने के लिये थोड़ी जगह। गंगा किनारे कहीं पर। छोटी-सी दुकान उसीके आस-पास कहीं। उसके पास जो कई साँचे हैं, उन्हीं से मूर्तियाँ बनायेगा। और नये नहीं। रामकृष्ण, विवेकानन्द, गान्धीजी, रवीन्द्रनाथ, नेताजी, इनके साथ वही वैष्णवी की मूर्ति, कन्या की मूर्ति, चूड़ीवाली,

छाया-माया। कतार-कतार सजा कर रख देगा। बेचेगा और देखेगा। और यदि देखते-देखते थक जायगा, तो दृष्टि हटा कर गंगा की ओर देखता रहेगा।—दुकान से न दिखाई देने पर गंगा किनारे जाकर खड़ा हो जायगा।

फिर हठात् छत पर चला गया। एक लकड़ी से ब्रिज के माडल पर आघात किया। वह टूट गया।

उसके रहने से पीछे उसका विचार बदल जाय, इसीलिये उसे तोड़ डाला।

छः

उसने जो चाहा था, पाया। गंगा किनारे एक स्वच्छ, किन्तु अनाडम्बर घर उसे मिल गया। एक पक्का घर, थोड़ी सहन, एकदम गंगा के किनारे। मकान का कुछ भाग गंगा ने तोड़ दिया है। इसीसे भय के कारण कोई भाड़े पर नहीं लेता। कलकत्ता में नहीं, बरानगर में। उसने अहीरीटोले के आसपास चितपुर पर एक दुकान भी पा ली। उसकी दुकान एक बेला खुलती है—सबेरे से एक बजे तक। तीसरे पहर घर में बैठ कर मूर्तियाँ बनाता है।

इससे भी उसका अच्छा चला। अल्प कुछ महीनों के हिसाब में उसे कुछ भी हानि नहीं हुई। किन्तु यहभी उसे अच्छा न लगा। नहीं। अच्छा नहीं लगता। मन नहीं भरता। क्या अच्छा लगेगा यह भी वह नहीं समझ पाता था। फिर बड़ा काम? बड़ी दुकान?

नहीं।

फिर सब छोड़-छाड़ कर बाहर निकल जायगा?

यही क्या उसने चाहा था? निस्तब्धता ही तो शान्ति नहीं है। परिश्रम कम होना ही तो सुख नहीं है! अब वह जीवन का रास्ता छोड़ने वाली नदी की धारा के समान दूर से दूरान्तर चला जा रहा है। दल बाँध कर मनुष्य चलता है---एक नदी की करोड़ों तरंगों के समान, कल-कल्लोल करता हुआ, नर्म भूमि को काट कर हजारों-लाखों करोड़ों धाराओं में—ज्वार-भाटे में—समुद्र की ओर--और वह जिस रास्ते पर चलता है उस पर बालू केवल बालू है—जितनी दूर दृष्टि जाती है, केवल बालू है।

मलिन सूखा जाता है। उसको जैसे सोख लेता है।

वैशाख का सूर्य कड़ी गर्मी से जल रहा है, आकाश भस्म हो रहा है, भूमि सूखती जा रही है और गंगा जल भाप बन कर उड़ता जा रहा है। दोपहरी खां खां करती है। दुकान में बैठ कर मलिन अनुभव करता है कि इसी तरह वह भी सूखा जाता है। सूर्य में तृष्णा नहीं है, वह केवल जलता है, उस जलने में उसे जलन नहीं होती, आनन्द है, ज्योति है। वह सूखा जाता है मिट्टी के समान, नदी के समान। गंगा को सूर्य सोखता है, किन्तु समुद्र ज्वार से भर देता है। कैलास पर्वत की चोटी से बर्फ पिघलने से जल चला आता है। उसके आदि में है पंकजिनी और अन्तमें सब शून्य है। कुछ नहीं—कुछ नहीं।

वैशाख का दोपहर—शहर के ईंटे, लकड़ी, पत्थर चूल्हे पर रखे हुए पात्र के समान गर्म हो रहे हैं। फिर भी आज गंगाघाट पर लोगों का आना-जाना बन्द नहीं है। आज अक्षयतृतीया है। सवेरे अधिक भीड़ हुई थी। आज उसकी दुकान पर खूब अच्छी बिक्री हुई है। इसीलिये वह अभी तक बैठा है। नहीं तो, अब तब दुकान बन्द कर बरानगर चला

जाता। इतनी धूप में वह नहीं जायगा। डेढ़ बज रहा है। रास्ते-घाट पर धीरे-धीरे लोग कम होते जा रहे हैं। ऐसा समय आयगा, अन्ततः कुछ देर के लिये, जब एक भी आदमी नहीं रह जायगा। चितपुर के पूर्व के फुटपाथ पर उसकी दुकान है। पश्चिम की ओर सामने ही एक गली चली गयी है—गंगा घाट तक। बराबर दिखाई देती है। शून्य मन और तन्द्रा भरी दृष्टि से वह बैठा-बैठा उसी ओर देख रहा है। तन्द्रा की अधिकता से बीच-बीच में पलकें झप रही हैं। बीच-बीच में ट्राम के शब्दों और कभी-कभी मोटर के हार्नों से उसकी तन्द्रा टूट जाती थी। जब तन्द्रा टूटती, तो चिन्ता होने लगती।

उसे एक ही चिन्ता है। कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। बाहर निकलना होगा। जो मूर्तियाँ मौजूद हैं, उन्हें पायकारी दर सस्ते में बेच कर निकल पड़ेगा। यह बारी खतम कर दो। चलो मुसाफिर। बैठे-बैठे जला नहीं जाता। जलते समय इधर-उधर भागना ही स्वाभाविक है। उससे आग नहीं बुझती—किन्तु जलने की बारी शीघ्र समाप्त हो जाती है।

चलो—मुसा—।

उसकी बात मन ही मन पूरी नहीं हुई कि एक प्रचण्ड विस्मय बिजली के समान उसके सामने जल उठा। उसका हृदय धक-धक करने लगा। उसका सारा शरीर थर-थर काँपने लगा। उसका गला सूख कर क्षण भर में काठ हो गया।

यह कौन है—यह कौन है?—वह कौन है? वह कौन है? वह युवती कौन है? कौन है? इस प्रश्न से उसके सारे अंग चंचल हो उठे।

सामने की गली की ओर से दो स्त्रियाँ आ रहीं हैं, सामने है

एक किशोरी; घने काले केशों से घिरा हुआ उसका मुँह जैसे जलते-जलते आ रहा है। वह मिल की सफेद लाल पाड़वाली साड़ी पहनी है। लम्बे शरीर वाली, हाथ में जल से भरी हुई ढँकी हुई एक पीतल की बाल्टी है। सामने की ओर देखती हुई महिमान्विता के समान चली आ रही है। पीछे एक और स्त्री है। वह प्रौढ़ा जान पड़ती है।

चश्मा! चश्मा! चश्मा कहाँ गया?

यह कैसा रूप है! कैसी महिमा है! कौन है?—कौन है—यह कौन है? आश्चर्य है! माया से इतनी मिलती-जुलती! इतनी मिलती-जुलती! माया थी थोड़ी नाटी, दुबली, किन्तु यह युवती है, दीर्घांगी और सबल स्वास्थ्यवती। माया थी श्यामवर्णा— यह युवती है गौर वर्णवाली— फिर भी इसमें माया की छाप है, उसकी छाया मिली हुई है। रंग के साथ छटा के समान, गन्ध के साथ स्वाद के समान। फूल के साथ उसके नीचे की हरी वेष्टनी के समान। यह कौन है?

युवती पीछे की महिला से मुँह फेर कर बात कर रही है। चकित होकर याद पड़ गयी— छाया-माया की बात! इसी प्रकार वह घूम-घूमकर उसकी ओर बार-बार देखती थी। अन्तर यही है कि उसके सिर पर घूँघट था— मुँह ढँका था। क्या यह वही है? क्या इतने समय बाद शरीर धारण कर गंगा की छाती से निकली चली आ रही है— बिना अवगुण्ठन के, प्रत्यक्ष होकर?

आश्चर्य है! आश्चर्य है! यह कौन है?

उसने उठकर बैठना चाहा। किन्तु बैठ न सका। जैसे पंगु हो गया है।

सोलह-सत्रह वर्ष की किशोरी। माया से अत्यन्त मिलती-जुलती।

उसकी छाती में तूफान चल रहा है। प्राणपण चेष्टा कर समस्त अवसन्नता दूर कर वह उठ बैठा। युवती गली के मुहँ पर उस पार के फुट-पाथ पर पहुँच गयी। वह और भी स्पष्ट हो रही है। मलिन की छाती धक-धक कर रही है। वह उठकर खड़ा हो गया। पृथ्वी पर फिर स्वाद पैदा हो रहा है। अच्छा लग रहा है। वैशाख का झुलसाने वाला दोपहर झल-मल कर रहा है।

वह युवती उस पार के फुटपाथ पर रुक गयी। वह विचित्र दृष्टि से उसकी दुकान की ही ओर देख रही है। प्रौढ़ा महिला से कुछ बात कर रही है। उँगली दिखा रही है उसकी दुकान में सजायी हुई मूर्तियों की ओर। किशोरी का मन मूर्तियाँ देख कर मुग्ध हो गया है।

प्रौढ़ा महिला के हाथ में दो शंख की चूड़ियाँ हैं और युवती के हाथ में काँच की चूड़ियाँ हैं। पुरानी अभिज्ञतासे वह समझ रहा है। इसके बाद ही दृष्टि फेर कर सब के अनजान में एक लम्बी साँस छोड़ कर प्रौढ़ा के साथ चली जायगी। उसमें खरीदने की शक्ति नहीं है।

मलिन व्याकुल हो उठा— क्या कह कर पुकारे! कैसे कहेगा, तुम्हारी जो इच्छा हो ले जाओ, जितनी इच्छा हो, ले जाओ।

हठात् याद पड़ गयी। —माँ। माँ कह कर पुकारने की। जीवन में पंकजिनी को माँ कहा था— इसके बाद आज तक माँ कह कर किसी को नहीं पुकारा था। उसने परम आग्रह से पुकारा— आइये माँ। माँ लक्ष्मी आइये, मूर्तियाँ लीजिये। बहुत अच्छी-अच्छी मूर्तियाँ है माँ!

जल्दी-जल्दी उसने सब प्रकार की मूर्तियाँ बाहर निकाल दी। बाघ ने महिष पकड़ा है, साँप ने हरिण को जकड़ लिया है! पैकिंग बक्स

में मौजूद इन मूर्तियों को पर्व के उपलक्ष्य में आज ही लाया है। कुछ बिकी भी हैं। आदर के साथ ही बिकी हैं। ये आँखों को पसन्द आने वाली मूर्तियाँ हैं। इसमें खेल है। पक्षी लेकर खेलने के समान, कुत्ते-बिल्ली पालने के शौक के समान।

—बहुत मूर्तियाँ है माँ। अच्छी अच्छी मूर्तियाँ हैं।

युवती की दृष्टि नारियों की मूर्तियों पर स्थिर हो रही है। वह उसी विस्मयभरी दृष्टि से देखती हुई जैसे मन्त्र-मुग्ध के समान सड़क पार कर दुकान के पास आकर खड़ी हो गयी। इसके बाद भीतर चली आयी।

उसने दुकान के भीतर चारों ओर देखा। मलिन की छाती में सोया हुआ हृत्पिण्ड जैसे आज नींद छोड़ कर जाग उठा है। उसकी विस्मय विस्फारित दृष्टि युवती के मुहँ पर जम गयी है। युवती का मुहँ घूमता है, साथ ही साथ उसकी दृष्टि भी घूम जाती है।

—आश्चर्य है! देखती हो माँ! युवती ने प्रौढ़ा से कहा।

—लीजिये माँ — जो पसन्द हो, लीजिये। कहने की इच्छा हुई कि दाम की चिन्ता न करो। तुमको देकर मेरा जीवन कृतार्थ हो जायगा। किन्तु साहस नहीं हुआ। इस युवती के पास जाने में उसे जैसे भय लगता है।

—नहीं, ये सब मेरे पास हैं।

— पास हैं ?

— हाँ। ये सब मूर्तियाँ— वैष्णवी, परी, कन्या-मूर्ति, चूड़ीवाली मेरे पास हैं और ये सब नहीं हैं।

मोहिनी माया— वह छाया-माया मूर्ति—उसने दिखला दी। इसके बाद बोली— किन्तु ये मूर्तियाँ आपने कहाँ पायीं ? यह तो और कहीं नहीं देखी। जो देखता है, वही कहता है।

युवती के कण्ठ स्वर से अभियोग फूट पड़ा—ये सब मूर्तियाँ तो हमारी हैं।

प्रौढ़ा महिला युवती की इस अलीक रूढ़ अभियोग के लिये लज्जित हो गयी। उसने शीघ्रता पूर्वक कहा— एक आदमी ने एक बनाया, उसे देख कर पाँच आदमियों ने उसकी नकल की। इन्होंने देख कर बनायी है।

युवती बोली— ये सब मूर्तियाँ मेरे पिता ही पहले बनाते थे। आज तक भी कलकत्ता में कहीं नहीं देखा। इसी से पूछती हूँ।

महिला बोली— आप उसकी बात पर ध्यान न देंगे। उसके पिता एक बहुत बड़े कारीगर—

—नहीं, कारीगर नहीं— शिल्पी! वे शिल्पी थे। ये सब मूर्तियाँ स्वयं उनकी कल्पना की हैं। उन्होंने स्वयं तैयार की थी। वह मेढक, वह तितली, वह वैष्णवी, कन्या, चूड़ीवाली-इन सब के साँचे भी मेरे पास हैं।

—तुम्हारे—आपके पिता ?

—मेरे पिता बहुत बड़े शिल्पी थे— मलिन राय— एस० राय।

मलिन के दिल की धड़कन जैसे बन्द हो जायगी। उसकी छाती सबल और शान्त है, किन्तु उसमें जैसे ताण्डव हो रहा है। एक प्रचण्ड चीत्कार उसकी छाती चीर कर निकलना चाहती है। वह थर थर काँप रहा था। हाथ-पैर से पसीना निकल रहा है। विस्फारित दृष्टि और विस्फारित होती जा रही है। उसका मुहँ दोनों हाथों से पकड़ कर रत्ती-रत्ती मिला कर देखने की इच्छा हो रही है। कौन है तुम्हारा पिता ? तुम कौन हो ?

पूछने की इच्छा हो रही है। याद आ रहा है -- माया की मृत्यु का सम्बाद पाकर चले आते समय उसने माया की कन्या की बात नहीं पूछी थी। शची ने कहा था— माया मर गयी। उस समय परिवार ही तहस-नहस हो गया। अमल अपनी स्त्री लेकर कहीं चला गया। बंकिम भटचार्ज पेट पीट-पीट कर घूमता रहा। सब धो-पोंछ गया। इसके बाद वह भी मर गया। उसने सोचा था कि उसी धो-पोंछ जाने में ही बालिका भी बह गयी। माया की मृत्यु हुई— माया जल में कूद पड़ी—उसके अपमान दुःख के क्षोभ में —इसके बाद फिर कुछ जानने की इच्छा नहीं हुई। याद नहीं पड़ा। माया के बाद उसकी कन्या की ओर देखने की प्रवृत्ति भी उसमें नहीं थी। नहीं थी। वह स्वीकार करता है। किन्तु, किन्तु-इसे ही तो इतने दिनों से खोज रहा था। यही है! यही है! इसी को समस्त भारत में खोज आया है। यही तो वह है। गंगा जल से लक्ष्मी की प्रतिमा के समान आज निकल आयी है।

युवती घूम-घूम कर प्रत्येक मूर्ति देख रही थी और कह रही थी— यह हाथ और किसी का नहीं हो सकता। मैं देखते ही पहचान सकती हूँ। मैं स्वयं भी बना सकती हूँ। अंकित कर सकती हूँ। मेरी माँ भी बना सकती थी। पिता जी ने सिखाया था। मैं भी सीखूँगी। स्कूल फाइनल देकर ही आर्ट स्कूल में भर्ती हो जाऊँगी।

युवती क्षण भर के लिये चुप हो गयी। इसके बाद हठात् फिर पूछा- किन्तु आपने बतलाया नहीं कि ये आपको कैसे मिलीं? यह नयी है। उसने मोहिनी माया मूर्ति उठा ली।

नयी ही है। माया की मृत्यु के बाद मलिन ने बनाया था।

महिला ने कहा—क्या कहेंगे मलिना ? देख-देख कर इन्होंने भी गढ़ा है। चलो, घर चलो। कुछ लूँगी नहीं, फिर क्यों व्यर्थ उन्हें विरक्त करती हो ?

—नहीं-नहीं-नहीं। मलिन बोल उठा—उसका गला रुँधा जा रहा है। फिर भी किसी प्रकार बोला—नहीं-नहीं-नहीं। यह कैसी बात है। ले लो माँ, यह मूर्ति। तुम्हारा सेट पूरा हो जायगा।

—नहीं-नहीं। मैं मूर्ति लेना नहीं चाहती। इसके लिये मैं नहीं देखती हूँ। मुझे मूर्ति नहीं चाहिये। उसने मूर्ति रख दी।

—मैं तुम्हें देता हूँ।

—आपके देने से ही मैं क्यों लेने लगी ? वैशाख मास अक्षय तृतीया है। मैं ब्राह्मण-कन्या हूँ। आपका दान क्यों लूँगी ? मेरे पिता को लोग अब्राह्मण कह कर सन्देह करते थे। मेरी माँ पिताजी के ब्राह्मण होने का प्रमाण देकर गंगा में कूद कर मर गयी। मैं आपका दान न ले सकूँगी। यह क्या ? आपको क्या हो गया ?

मलिन और सँभाल न सका। वह दोनों हाथों से मुँह ढँक कर बैठ गया। पचास वर्ष के बाद आज वह भूकम्प से फटने की तरह चूर-चूर हो रहा है।

अकस्मात् मलिन रो पड़ा। रो पड़ा है नहीं—रोना जैसे भूकम्प से फटी हुई पृथ्वी की छाती से निकली हुई जलधारा के समान आँखें फाड़ कर निकल पड़ा है। नेत्रों से अनर्गल जल निकल रहा है। दुरन्त आवेग सिर को कूट रहा है। फफक कर रोने की इच्छा हो रही है।

—उफ ! उफ !

—आपको क्या हो गया ? क्या हो गया ?

—आँख में क्या पड़ गया ? ओह ! असह्य लग रहा है।

—जल से आँख धो डालिये। लीजिये, मेरी बाल्टी में जल है। लीजिये, धो डालिये।

उसने दोनों हाथ फैला दिये। युवती ने बाल्टी से जल ढाल दिया। उसी जल से वह आँखें धोने लगा। आँखों में जितनी स्याही है, सब धो जाय। उसने प्राणपण से आत्मसम्वरण किया। वह मलिन राय है। उसमें ऐसी शक्ति है।

युवती बोली—तो हम लोग जायँ। किन्तु आपने एक बात का उत्तर नहीं दिया। आपने ये मूर्तियाँ कैसे पायीं ? मेरे पिता खो गये हैं। मैं जानती हूँ कि वे संन्यासी हो गये हैं। नहीं तो आपसे पूछती ? क्या आप ही हैं ? वे और सुन्दर थे। सुना है देखने में देवता के समान थे। आप भी सुन्दर हैं, किन्तु देवता के समान नहीं हैं। क्यों क्रोध तो नहीं कर रहे हैं ?

मलिन हँसा। इसके बाद बोला—तुमने ठीक पकड़ा है माँ। ये सब मूर्तियाँ तुम्हारे पिता के ही साँचे से तैयार हुई हैं। यहाँ से अपमानित होकर जब वे पटना लौट गये—उस समय उनसे मेरा परिचय हुआ। कुछ दिन मेरे यहाँ रहे, मैंने उन्हीं से काम सीखा। वे जाते समय साँचे मुझे दे गये। वे मेरे परम मित्र थे। वे कहीं लापता हो गये।

अब युवती जैसे कुछ देर के लिये चंचल हो उठी—क्या फिर उनके साथ कभी भेंट नहीं हुई ? आप जानते हैं कि वे जीते हैं या नहीं। मुझे बड़ा दुःख है कि जीवन में उन्हें कभी नहीं देखा। कभी उनकी गोद नहीं मिली।

फिर, फिर जान पड़ता है सब बाँध टूट जायगा। आँखों से जल गिर ही रहा है—शायद अब वह चिल्ला उठेगा। अरे—किन्तु नहीं। वह अपने को सम्वरण करेगा ही।

युवती कहती जाती थी—आप उनके मित्र हैं—इसीसे आपसे कहती हूँ। मैं ये बातें नहीं कहती, किसी से कहना है भी नहीं। उनके साथ भेंट होने पर पूछता—आपने मेरी खोज कभी नहीं की? यदि ये मामा-मामी न होते—

युवती ने हठात् रुक कर प्रौढ़ा की ओर देखा। मलिन ने जान लिया कि यह महिला अमल की स्त्री है। वह उससे नेत्रों के इशारे से कुछ कह रही है। उसमें तिरस्कार का संकेत है, साथ ही साथ यह सब कहने से मना कर रही है। वह कहती है—नहीं-नहीं। यह सब किससे कह रही हो। चुप करो। ऐसा मत कहो।

सचमुच युवती उस बात को छोड़ म्लान हो हँसकर बोली—हम चलें। कुछ ध्यान न दीजियेगा। आप पिता के मित्र हैं, आपने उनसे काम सीखा है; यह देख-सुन कर बहुत सी बातें कह गयी।

मलिन ने कठिनाई से अपने को संयत रखा। वह चुप ही रहा। छाती में रोने की सहस्रों तरंगें उठ रही हैं, किन्तु वह रोयेगा नहीं। पुत्री के सामने नहीं रोयेगा। वह परिचय नहीं देगा। उसको भय लग रहा है। आतंक हो रहा है। उसके मुँह पर असंख्य रेखायें पड़ी हैं और शिला-लिपि के समान रेखा-रेखा में उसके असंयत जीवन की कहानी लिखी हुई है। उसका बाप शिल्पी मलिन राय ब्राह्मण है। उसके गौरव से वह बहुत गौरवान्वित है। वैशाख मास में अक्षय तृतीया के दिन वह किसी का छोटे से छोटा दान न लेगी। वह क्या उसको अपना बाप मान सकती है?

दोनों दुकान से उतरीं। कहा—चलती हूँ।

वे चली गयीं।

मलिन हठात् उठा। मोहिनी माया मूर्ति हाथ में लेकर दौड़ा।

—माँ ! माँ ! तुम्हारा नाम क्या है माँ ?

वे थोड़ी ही दूर गयी थीं। रुक कर खड़ी हो गयीं। पुकारते हैं ? मेरा नाम है मलिना। मलिन राय की पुत्री।

—कम से कम यह तो तुम ले जाओ, माँ। मैं तुम्हारे पिता का मित्र हूँ। यह तुम्हारे पिता के हाथ की गढ़ी हुई है ? न लेने से मुझे दुःख होगा।

—ले लूँ ?

—ले लो, बापू। इतना कह रहे हैं। बाप के मित्र हैं, लेने से तेरे बाप का नाम छोटा नहीं होगा। ले ले।

—दीजिये।

—और कुछ ले लो माँ। एक-एक कर सब मूर्तियाँ—

—क्या करूँगा लेकर ? कहाँ रखूँगी ! मामा का कष्ट का परिवार-सिर्फ एक घर है। अगर देवता होता तो लक्ष्मी के साथ रखती।

—यही तो है माँ। मेरे पास देवताओं की मूर्ति नहीं है।

—बनाते क्यों नहीं ? एक सुन्दर लक्ष्मी की मूर्ति की मुझे बड़ी साध है। किन्तु अपनी रुचि के अनुसार कहीं नहीं पाती।

—मैं बना दूँगा माँ, तुम लोगी ?

—बना देंगे ? किन्तु दाम लेना पड़ेगा। लक्ष्मी की प्रतिमा भीख माँग

कर घर रखने से कुछ भी फल न होगा। भिक्षुकों पर लक्ष्मी दया नहीं करतीं और यह तो आपसे इसलिये ली है कि यह मेरे पिता के हाथ से बनाये हुए साँचे से बनायी हुई हैं और मैं नहीं ले सकती।

—लूँगा माँ। दाम लूँगा। तुम जो दोगी, लूँगा।

—अच्छा, तब बना दीजियेगा।

—बना दूँगा। एक सप्ताह में बना दूँगा। किन्तु कैसी लक्ष्मी लोगी माँ?

—जैसी लक्ष्मी होती हैं—

—मैंने बचपन में अपने देश में महालक्ष्मी की पूजा देखी है माँ, कमला! कमल-कामिनी। शतदल पद्म पर महालक्ष्मी कमल पर विराजमान हैं। दोनों ओर दो सफेद हाथी, दो घड़ों में क्षीर समुद्र का जल लेकर स्नान कराते हैं।

मलिना की आँखें सुनते-सुनते स्वप्नातुर हो उठीं।

मलिन करता गया बचपन में जाति-च्युत के समान उसी पेड़ पर चढ़ कर देखा हुआ महालक्ष्मी की प्रतिमा का वर्णन।

—बना दीजिये। ऐसी ही बना दीजियेगा। बड़ी अच्छी मूर्ति होगी। सात दिन बाद मैं—

—नहीं, नहीं-नहीं। मैं आऊँगा। मूर्ति लेकर मैं ही आऊँगा।

वैशाखी सूर्य उस समय पश्चिम में ढल गया था। धूप में तीसरे पहर की छाप पड़ गयी थी। रास्ते में मनुष्यों की भीड़ दिखाई पड़ने लगी।

मलिना बोली—आप आइयेगा।

—हाँ, मैं आऊँगा। मैं आऊँगा। तुम अब जाओ माँ। तुम्हारा मुँह

सूख गया है। कब स्नान किया है। मैंने तुम्हें अटका रखा है। अपना ठिकाना मुझे बता दो।

—नम्बर बलराम घोष स्ट्रीट। थोड़ा गली में, आप पूछियेगा—अमल भटचार्ज जो पुरोहिती करते हैं उनका मकान। मकान के दरवाजे पर मेरा ही नाम लेकर पुकारियेगा।

वे चली गयीं।

मलिन खड़ा रहा। उनके रास्ते की ओर देखता खड़ा रहा। दीर्घाङ्गी मलिना की केश-राशि खुल कर पीठ पर झूल रही है। वे मोड़ पर छिप गयीं। जनता की आड़ में हो गयीं। वह लौट आया।

आह! जीवन के सारे विष उसके लिये अमृत हो गये। जीवन की सारी शून्यता आज संगीत-पूर्ण होगयी। कुछ अच्छा न लगना आज सब कुछ अच्छा लगने में बदल गया; सब जैसे मधु होगया। आकाश में मधु, हवा में मधु, धूल में मधु। सब अग्नि-दाह शान्त सा होकर गिर रहा है—जैसे बरसने की इच्छा हो। इस वैशाख की धूप में वह ऐसा ही अनुभव कर रहा है। उसके जीवन की सब ग्लानियाँ, सब कलंक, सारी कालिमायें धोई-पोंछी जा रही हैं। माया ने गंगा में कूदते समय चिल्ला कर घोषणा की है—उसका स्वामी ब्राह्मण है। भगवान राय का पौत्र, ईश्वर राय का पुत्र—गोत्र बन्द्यघाटी।

मलिना कह गयी—उसके पिता ब्राह्मण हैं। शिल्पी हैं। देवता के समान रूप, देवता के समान गुण। जीवन आज भर गया है। पंकजिनी ने आज सब कलंकों से मुक्ति पा ली। पंकजिनी के गर्भ से अपरिचय के अंधेरे जगत में जन्म लिया था। वहाँ से प्रकाश कहाँ है, प्रकाश कहाँ है,

कहता हुआ पागल के समान दौड़ता-दौड़ता उस दिन घने अँधेरे में छाया-माया के आकर्षण से अँधेरी रात में मृत्यु के बन्द दरवाजे पर पछाड़ खाकर गिर पड़ा था। इतने दिन उसी दरवाजे पर सिर पीटता रहा—आज वही द्वार खोल कायामयी लक्ष्मी अमृतपात्र हाथ में लेकर आविर्भूत हुई है। मृत्यु द्वार से उसे कौन सुन्दर मधुर पृथ्वी पर लौटा लाया?

आह! वह अधिक आत्मसम्बरण नहीं कर पाता है। जीवन आज नेत्रों के जल में बह जाना चाहता है।

रोने में इतना सुख! इतनी तृप्ति! इतनी शान्ति!

हे भगवान! हे ईश्वर! हे पितामह! हे पिता!

वह रोते-रोते उठा। गंगा में स्नान करेगा। गंगा में स्नान कर मिट्टी ले आयेगा। महालक्ष्मी की प्रतिमा बनायेगा। बचपन में पेड़ पर चढ़ कर देखी हुई वह मूर्ति उसके मनमें जगमग कर रही है। वह इस बार मूर्ति नहीं प्रतिमा बनायेगा। वह ऐसी प्रतिमा बनायेगा, जैसी किसी ने कभी देखी नहीं।

मन ही मन परिकल्पना फूट रही है। वह उपवास करेगा और पवित्र होकर महालक्ष्मी की प्रतिमा बनायेगा। योगेशपाल के समान। किन्तु योगेशपाल की प्रतिमा की नकल नहीं। वह नयी प्रतिमा बनायेगा। पत्थर में खुदी हुई मूर्ति के समान शतदल पद्म पर दीर्घांगी देवी की मूर्ति खड़ी है, उसी युवती के समान आकार अवयव, उसीके समान मुँह का रूप किन्तु वह नहीं। उससे भी अपूर्व सुषमा—अपार्थिव। मिट्टी में नहीं, मन में है। सब रूप उसके मन में हैं।

वह रूप का समुद्र उसके अन्तर में उछल-उछल पड़ता है। जीवन के

आकाश में आज अमावस्या का अवसान होकर पूर्णमासी का चन्द्रमा उदय हो रहा है। सब जगमगा रहा है—जगमग कर रहा है।

वही प्रतिमा लेकर वह बलराम घोष स्ट्रीट की उस गली में जायगा। शायद अमल रहेगा। उसको पहचानेगा—पहचाने। वह किसी को कुछ उत्तर न देकर पुकारेगा—मलिना, माँ! माँ री!

इस समय केवल रोयेगा। हे भगवान्! हे ईश्वर! हे पितामह! हे पिता!